THE BOOK WAS DRENCHED

हमारे आराध्य

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रंथमाला संपादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मंत्री भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड बनारस १

प्रथम संस्करण ३०००
मार्च १९५२
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
जे. के. शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

क्रोपाटकिन

सोफी क्रोपाटकिन [धर्मपत्नी]

क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन

और

उनके कुटुम्ब

को

श्रद्धापूर्वक समर्पित

विषय-सूची

"Work to understand the great artists, the moralists, the powerful spirits and the heroes of ancient Europeon Society. Devote yourself to the mission of uniting Orient and Occident. We must create Universal Soul. It is not yet existing but it will exist.

[*Romain Rolland in a letter to Parmanand Pandeya of Lashkar, Gwalior*]

चार शब्द

"दीन क्या है, किसी कामिलकी इबादत करना।"

महाकवि चकवस्तकी इस पंक्तिमें धर्मकी जो परिभाषा की गई है, वह हमें अपने क्षुद्र साहित्यिक जीवनके लिए सर्वोत्तम जँचती है। समय-समयपर हमने अपनी श्रद्धाके पुष्प जिन विभूतियोंके चरणोंमें अर्पित किये हैं, उनकी संख्या काफ़ी अधिक है। इस पुस्तकमें केवल सोलह व्यक्तियों-का चित्रण आ सका है। शेषका वृत्तान्त हमारे अन्य दो-तीन सग्रहोंमें जो शीघ्र ही प्रकाशित हो रहे हैं, दे दिया गया है। उनके अतिरिक्त जो रेखाचित्र हमने खींचे हैं वे **'हमारे साथी'** तथा **'प्रकृतिके प्राङ्गण'**नामक दो किताबोंमें शामिल कर दिये गए हैं। इन सब पुस्तकोंके पढ़नेपर ही उस विस्तृत पटका अनुमान किया जा सकता है, जिसपर अपनी तूलिका चलानेका हमने प्रयत्न किया है। यद्यपि हम जानते हैं कि ए० जी० गार्डिनरकी तरहके रेखाचित्र तैयार करनेके लिये हमें अभी बीसियों वर्ष तक साधना करनी पड़ेगी, तथापि हमारे आदर्श वही रहे हैं।

'हमारे आराध्य' को देखकर एक सज्जनने आश्चर्यचकित होकर कहा, "अरे, ये तो सब-के-सब विदेशी हैं!" उनको हमने यही उत्तर दिया कि अपने श्रद्धेयोंका गुणगान करते समय देश-विदेशकी कोई विभाजक सीमा माननेके लिए हम तैयार नहीं। अपने जीवनमें हम जिनके सबसे अधिक ऋणी रहे हैं, वे एक अंग्रेज़ थे—दीनबन्धु सी० ऐफ० ऐण्ड्रूज़, और राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टिकोणसे हमारे हृदयका सर्वोच्च आसन जिनके लिए समर्पित रहा है—वे थे एक रूसी, अर्थात् प्रिंस

क्रोपाटकिन। अपनी उषाकालीन चायके साथ जिनके ग्रंथोंका स्वाध्याय हम बीस-पच्चीस वर्षसे करते रहे हैं, उनमें दो अमरीकन हैं--ऐमर्सन तथा थोरो और तीसरे अंग्रेज--ऐडवर्ड कारपेण्टर। किसी भी सजीव साहित्यिकके लिए देशी-विदेशीका सवाल ही नहीं उठ सकता। वह तो गैरीसनके शब्दोंमें यही कहेगा--

"Our country is the world, our countrymen are all mankind. We love the land of our nativity only as we love all other lands."

अर्थात्--"समस्त संसार ही हमारा स्वदेश है और सम्पूर्ण मानव-समाज हमारा देशबन्धु। हमारे हृदयमें जितना प्रेम अपनी जन्मभूमिके प्रति है, उतना ही दूसरे देशोंके प्रति भी।"

इसके सिवाय प्रकाशका, जहाँ कहींसे भी वह आवे, हमें स्वागत ही करना चाहिए। स्वयं ऐमर्सन और थोरो भारतीय विचारधारासे काफ़ी प्रभावित थे और उन्हें 'परमात्माकी भौगोलिक भूल' कहा जाता था। अपनी भावनाओंमें वे बहुत कुछ भारतीय थे।

और इन सबसे ऊपर बात यह है कि दूसरोंमें जो कुछ सर्वोत्तम है, उसके दुभाषिया बनना हमारे जीवनका एक उद्देश्य है। उस स्मरणीय गिलहरीकी तरह, जिसने भगवान् रामचन्द्रको सेतुबन्धके समय रेतीका कण अर्पितकर उनके महान यज्ञमें सहायता दी थी, हम भी अपनी तुच्छ शक्तिका सदुपयोग हार्दिक मिलनके कल्याणकारी कार्यमें करना चाहते हैं। रोमाँ रोलाँने अपने एक पत्रमें लश्करके एक विद्यार्थी श्री परमानन्द पाण्डेको लिखा था--

प्रिय पी० पाण्डे,

तुम्हारे पत्रने मेरे हृदयको बहुत गहराईसे स्पर्श किया है। मेरे भारतीय भाई, तुमने अपना जो हाथ मेरी ओर बढ़ाया है, उसे मैं स्नेहके

साथ ग्रहण करता हूँ। तुम्हें मालूम ही है कि तुम्हारे देशके ऋषियोंके प्रति मैं अपनेको कितना सम्बद्ध अनुभव करता हूँ। तुम भी यूरोपके महान कलाकारों, विचारकों और महान आत्माओंको समझनेका प्रयत्न करो। पूर्व और पश्चिमको एक-दूसरेके निकट लानेके कार्यको अपने जीवनका एक आदर्श बना लो। हमें एक विश्वात्माका निर्माण करना है। आज वह विद्यमान नही, पर एक-न-एक दिन अवश्य होगी।

सप्रेम तुम्हारा
रोमाँ रोलाँ

पूर्व और पश्चिमको निकट लानेके पुण्यकार्यमें हमारे-जैसे सहस्रों लेखकोंके जीवन खप सकते है। प्रारम्भके पाँचो व्यक्ति अराजकवादी है। प्रिंस क्रोपाटकिनके भक्त हम सन् १९१८से है, जब हमने पहले-पहल उनका आत्म-चरित Memoirs of a Revolutionist (एक क्रान्तिकारीके संस्मरण) पढ़ा था। महत्त्वमें वह महात्माजीके आत्मचरितसे किसी प्रकार घटकर नही। बाकुनिन क्रोपाटकिनके पथप्रदर्शक माने जा सकते है और शेष तीनों—मैलटेस्टा, लुई और ऐमा उनके अनुगामी।

तुर्गनेवकी रचनाओंसे हमारा प्रथम परिचय शान्तिनिकेतनमें सन् १९२०में हुआ और प्रथम दृष्टिमें ही हम उनके प्रेममें ऐसे फँसे कि आज-तक उनके बन्धनसे छुटकारा नही मिला। जिस प्रकार हम चेखवको संसारका सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक मानते है, उसी प्रकार तुर्गनेवको सर्वोत्तम उपन्यासकार।

जिन सम्पादक-सप्तर्षि मण्डलकी हम आराधना करते रहे हैं, उनमें सी० पी० स्कॉट और रामानन्द चट्टोपाध्याय अग्रगण्य हैं। महावीर-प्रसाद द्विवेदी, सी० वाई० चिन्तामणि और गणेशशंकर विद्यार्थी भारतीय हैं, नैविनसन अंग्रेज और होरेस ग्रीली अमरीकन।

इस पुस्तकमें वर्णित अपने आराध्योंमें केवल दोके साक्षात् दर्शन

करनेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था—आचार्यवर गीडीज़ और समाज-सेवी कागावा। हाँ, रोमाँ रोलाँसे कुछ पत्रव्यवहार अवश्य हुआ था और उनके हस्तलिखित तीन पत्र हमारे संग्रहालयकी अमूल्य निधि हैं। ए० ई० की प्रशंसा हमने दीनबन्धु ऐण्ड्रूजसे सुनी थी और उनकी पुस्तक 'राष्ट्रकी आत्मा' (National Being) वर्षोंसे हमारा स्वाध्याय-ग्रन्थ रही है।

स्टीफन ज़्विगने हमें गिरफ़्तार किया सन् १९३५में और तबसे हम उनके प्रचारक ही बन गये हैं ! क्या ही अच्छा हो यदि हमारे देशमें एक गोर्की-रोलाँ-ज़्विग परिषद स्थापित कर दी जाय, जो इस त्रिमूर्तिकी अमर रचनाओंको जनसाधारण तक पहुँचावे।

यूरोपके महान साहित्यकार और आलोचक जार्ज ब्राण्डीज़ने अपनी पुस्तक 'उन्नीसवीं शताब्दीके कलाकार' (Creative spirits of nineteenth Century) की भूमिकामें लिखा है—

"जब हम जीवनके भिन्न-भिन्न समयोंपर अपने अनेक दिनोंके परिश्रमसे लिखे गए लेखोंका संग्रह करने बैठते हैं तो उन्हें देखकर खेदपूर्वक हमें पता लगता है कि समयकी तराज़ूपर हमारी ये रचनाएँ कितनी हल्की उतरी हैं ! दूसरे व्यक्तियोंका अध्ययन अथवा चित्रण करते समय हम वस्तुतः अपनी प्रकृतिका ही चित्रण करते हैं—मानों हम अपने ही जीवनचरितके कुछ पृष्ठ जनताके सम्मुख उपस्थित कर रहे हों, अपने ही अस्तित्वके कुछ अंशोंको प्रदर्शित कर रहे हों। अन्य महानुभावोंका परिचय देनेके बहाने हम दरअसल आत्मपरिचय ही देते हैं—अपने कार्यका, अपनी आराधनाका, अपनी रुचिका, अपनी मैत्रीका और अपने यौवनका—थोड़ा-थोड़ा इन सबका। समय-सागरकी सतहपर क्षणभरके लिए हमारा यह आत्मपरिचय दृष्टिगोचर होता है और तत्पश्चात् वह रसातलमें विलीन हो जाता है—स्वप्नकी छायाकी भाँति।"

इस पुस्तकको जनताके सम्मुख उपस्थित करते समय हमारे मनमें कुछ इसी प्रकारके भाव उत्पन्न हो रहे हैं। चित्रकार वस्तुतः अपना ही

चित्रण करता है। इन रेखाचित्रोंमें यदि लेखककी सुप्त आकांक्षाएँ, अपूर्ण अभिलाषाएँ और भावी आशाएँ आंशिक रूपसे चित्रित हो गई हों तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। पुस्तककी पृष्ठभूमिको समझानेके लिए हमे धृष्ठतापूर्वक जो निजी बातें लिखनी पड़ी है, उनके लिए हम क्षमा-प्रार्थी है।

यद्यपि इस ग्रन्थमें जिनके चित्र खीचे गये है, वे सब महानकी कोटिमें आते है, तथापि इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि हम केवल महत्त्वके ही उपासक है। तथाकथित क्षुद्रोंका भी हमने चित्रण किया है और उनमें महत्त्वके दर्शन किये है। हम ऐसी तूलिकाकी तलाशमें है, जो सम्राटसे लेकर भिखारी तकका और महलसे लेकर झोंपड़ी तकका चित्रण कर सके। इस जन्ममे न सही, किसी अगले जन्ममे वैसी तूलिका हमें प्राप्त हो जायगी, और जन्म-जन्मान्तरों तक हमें साधना करनी पड़ेगी ऐसा हृदय प्राप्त करनेके लिए, जो भूकम्प-मापक यत्र—सीसमोग्राफ—की तरह दूरस्थ दुर्घटनाओसे स्पन्दित हो सके। और तब हम स्त्री-पुरुषोके साथ पशु, पक्षी, वृक्ष, सरोवर, सरिता इत्यादिका भी विधिवत् चित्रण कर सकेंगे।

अपनी रचनाओकी उपेक्षा हम प्रारम्भसे ही करते रहे है और इस प्रमादपर हमें पछतावा है। यह पुस्तक अभी वर्षो तक योंही पड़ी रहती, यदि बन्धुवर भानुकुमार जैन, श्रद्धेय नाथूरामजी प्रेमी, भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय, श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन और यशपालजीका विशेष प्रयत्न तथा आग्रह न होता। इनमें प्रथम सज्जनने आजसे कई वर्ष पहले हमारे लेखोंकी सहस्रों प्रतियाँ घाटा सहकर अल्प मूल्यमें वितरित की थीं। प्रेमीजीका कई वर्षोसे इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित करनेका अनुरोध रहा है। पर इस कार्यको पूर्ण किया है श्री गोयलीयजी तथा लक्ष्मीचन्द्रजीने, और अन्तिम प्रूफ देखनेका भार 'यथापूर्व' हमारे दाहिने हाथ यशपालजी पर ही पड़ा है। इन सबके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं।

पुस्तक प्रिंस क्रोपाटकिन तथा उनकी पत्नी और उनके अग्रज एलैग-ज़ैण्डरकी पवित्र स्मृतिमें समर्पित की गई है। वह दिन हमें कभी नहीं भूलनेका, जब हमने सजल नेत्रोंसे एलैगज़ैण्डरके आत्मघात की बात उनके अनुज क्रोपाटकिनके आत्मचरितमें पढ़ी थी। रूसी ज़ारने उन्हें साइबेरियाको निर्वासित कर दिया था, जबकि वे बिल्कुल निरपराध थे! ज़ारशाहीका ख़ातमा कभीका हो चुका, जबकि क्रोपाटकिनका क्रान्तिकारी कुटुम्ब अमर है।

भावी सतयुगको लानेमें निस्सन्देह क्रोपाटकिन तथा गान्धीजीके सिद्धान्तोंका उतना ही हाथ रहेगा, जितना कार्लमार्क्स और लैनिनके विचारोंका। गान्धीजी क्रोपाटकिनके उतने ही निकट हैं, जितने लैनिन मार्क्सके और पतिव्रता जयिनीकी वन्दना करके हमने मार्क्सके उत्तमांशको ही श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है।

सम्भव है, किसी पाठकको इन आराध्योंमें अपने किसी वन्दनीयके दर्शन हो जायँ और कोई भूला-भटका व्यक्ति इस पुस्तकसे अपने पथको यत्किंचित प्रकाशित पावे। तब यह विनम्र लेखक अपने परिश्रमको सफल समझेगा।

कुण्डेश्वर, टीकमगढ़
१ जनवरी १९५२

—बनारसीदास चतुर्वेदी

हमारे आराध्य

: १ :

महाप्राण माइकेल बाकूनिन

"Know Madame, that so long as your son lives, he can never be free."*

—Tsar Alexander II.

"श्रीमतीजी, एक बात आप अच्छी तरह समझ लें कि जबतक आपका लड़का ज़िन्दा है तबतक वह कभी जेलखानेसे नहीं छूट सकता।"

—(रूसी ज़ार) अलेक्ज़ेंडर द्वितीय

बात सन् १८५५की है। रूसके ज़ार निकोलसकी मृत्यु हो चुकी थी और उनकी गद्दीपर अलेक्ज़ेंडर द्वितीय बैठे थे। इस उत्सवकी ख़ुशीमें कितने ही राजनैतिक अपराधी छोड़े जानेवाले थे। जब इन क़ैदियोंकी सूची रूसी ज़ारके सामने लाई गई तो उसमें बाकूनिनका भी नाम था। ज़ारने सूचीको हाथमें लेकर उसमेंसे बाकूनिनका नाम अपने हाथोसे काट दिया! जब बाकूनिनकी पूज्य माताको यह दुःखद समाचार ज्ञात हुआ कि उनका लड़का नहीं छूटेगा तो उन्होंने ज़ारसे मिलनेकी प्रार्थना की। बड़ी मुश्किलसे यह आज्ञा मिली। ज़ारके पास जाकर बाकूनिनकी माने बहुत मिन्नत-आरज़ू की तब उनके उत्तरमें ज़ारने उपर्युक्त शब्द कहे थे।

---

* देखिये—Bertrand Russell की 'Proposed Roads to Freedom,' पृष्ठ ४३; Blue Ribbon Series, New York.

अराजकवादियोंके आचार्य माइकेल बाकूनिनका जीवन-चरित किसी उपन्याससे कम मनोरंजक नहीं है। यदि संसारके उन महापुरुषोंकी सूची तैयार की जाय, जिनका प्रभाव भविष्यमें बहुत वर्षों तक रहेगा, तो उसमें माइकेल बाकूनिन तथा उनके शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनके नाम मार्क्स तथा लेनिन और महात्मा गांधीके नामके साथ ही लिये जावेंगे। भावी संसारके निर्माणमें इन सबके विचारोंका काफ़ी हाथ रहेगा।

माइकेल बाकूनिनका जन्म सन् १८१४ ईस्वीमें रूसके एक धनी परिवारमें हुआ था। उनके पिता राजनीति-विभागमें सरकारी नौकर थे; पर जिस समय बाकूनिनका जन्म हुआ था, उस समय वे अपनी नौकरीसे रिटायर हो चुके थे और टारजक नामक स्थानमें रह रहे थे। पन्द्रह वर्षकी उम्रमें बाकूनिन पीटर्सबर्गके फौजी विद्यालयमें भर्ती हुए और वहाँपर तोप चलानेका काम सीखा। १८ वर्षकी उम्रमें वे एक रेजीमेंटके साथ मिंस्क नामक स्थानको भेज दिये गए। सन् १८३०में रूसी ज़ार-शाहीने पोलैण्डके निवासियोंके विद्रोहका जिस क्रूरताके साथ दमन किया था, उससे पोलैण्ड-निवासी अत्यन्त त्रस्त हो गये थे। उनकी इस दुर्दशाका नवयुवक बाकूनिनके हृदयपर अत्यन्त प्रभाव पड़ा और तानाशाहीके प्रति उनके हृदयमें घोर घृणा उत्पन्न हो गई। सन् १८३४में यानी दो वर्ष फ़ौजी नौकरी करके उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया और मास्को चले आये। छः वर्ष तक वहाँपर वे दर्शनशास्त्रका अध्यनन करते रहे। सन् १८४०में वे बर्लिन गये। उनका विचार था कि बर्लिनमें दर्शनशास्त्रकी उच्च-से-उच्च शिक्षा पाकर वे अपने देशको लौट आवेंगे और वहाँ किसी विद्यालयमें प्रोफ़ेसर बनकर अपनी ज़िन्दगी आरामसे व्यतीत करेंगे; पर उनके भाग्यमें प्रोफ़ेसरीकी आरामकुर्सीके बजाय कुछ और ही लिखा था! उस वक़्त कौन कह सकता था कि दर्शनशास्त्रका यह विद्यार्थी आगे चलकर कुछ ऐसा क्रान्तिकारी सिद्धान्त उपस्थित करेगा, जिससे संसारकी अनेक सरकारें थर-थर काँपने लगेंगी और अपना सबसे बड़ा शत्रु समझकर उसे

अधिक-से-अधिक दंड देनेमें अपना सौभाग्य समझेंगी ! बर्ट्रेंड रसेलने अपनी पुस्तकमें बाकूनिनका जीवन-चरित लिखते हुए ये शब्द कहे हैं—

"Now began a long period of imprisonment in many prisons and various countries. Bakunin was sentenced to death on the 14th of January 1850, but his sentence was commuted after five months and he was delivered over to Austria, which claimed the privilege of punishing him. The Austrians, in their turn, condemned him to death in May, 1851 and again his sentence was commuted to imprisonment for life. In the Austrian prisons he had fetters on hands and feet and in one of them he was even chained to the wall by the belt! There seems to have been some peculiar pleasure to be derived from the punishment of Bakunin, for the Russian Government in its turn demanded him of the Austrians, who delivered him up. In Russia he was confined first in the Peter and Paul fortress and then in Schluesselburg."

अर्थात्—"इसके बाद बाकूनिनके जीवनमें एक ऐसे युगका प्रारम्भ हुआ, जिसमें उन्हें विभिन्न देशोंके कितने ही जेलखानोंमें लम्बे-लम्बे समय तक रहना पड़ा। १४ जनवरी सन् १८५०को जर्मन सरकारने उन्हें फाँसीका हुक्म दिया था; पर पाँच महीने बाद यह सज़ा काट दी गई और जर्मन सरकारने बाकूनिनको आस्ट्रियन सरकारके सुपुर्द कर दिया। आस्ट्रियन सरकार बाकूनिनको दंड देनेके लिए पहलेसे ही तुली बैठी थी और उसने मई सन् १८५१में बाकूनिनको फाँसीका हुक्म दिया। पीछे यह सज़ा आजीवन जेलखानेके रूपमें बदल दी गई। आस्ट्रियन जेलखानोंमें

बाकूनिनके हाथ तथा पाँवोंमें बेड़ियाँ बँधी रहती थीं, और एक जेलख़ानेमें तो उनकी पीठमें साँकल डालकर वे दीवारसे बाँध दिये गए थे ! ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न सरकारोंको बाकूनिनको दंड देनेमें कुछ विचित्र मज़ा आता था । अबकी बार रूसी सरकारने आस्ट्रियन सरकारसे बाकूनिनको माँग लिया और पहले पीटर तथा पालके बदनाम क़िलेमें और फिर स्लूसलबर्गके जेलख़ानेमें बन्द रखा ।"

सन् १८४९से १८६१ तक बाकूनिनको जेलमें ही रहना पड़ा और इन बारह वर्षोंमें उन्होंने जो यातनाएँ सहीं, उनका वृत्तान्त पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । दूसरा कोई होता तो उसके प्राण पखेरू कभीके उड़ गये होते । यह महाप्राण बाकूनिनका ही काम था कि वे इस अग्नि-परीक्षा-में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए । प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें एक जगह लिखा है—"जब मैं पीटर और पालके क़िलेमें बन्द किया गया तब मुझे उन तमाम शहीदोंकी याद आ गई, जिन्होंने इस क़िलेमें अपने दिन बिताये थे । कितने ही मर गये, कितने ही पागल हो गये । उनकी छाया मेरी कल्पनाके सामने मानों नाच रही थी; पर मुझे ख़ास तौरसे ख़याल आता था बाकूनिनका । दो वर्ष तक वे पीठके बल आस्ट्रियन जेलमें बँधे रहे थे और फिर रूसी सरकारने उन्हें छः वर्ष तक इसी जेल-ख़ानेमें बन्द रखा । जब ज़ारकी मृत्युके बाद वे इस जेलके अन्दरसे निकाले गये तो उनका स्वास्थ्य अपने उन साथी-संगियोंसे, जो बाहर स्वतन्त्र रहे, कहीं अच्छा था ! उनमें अपने साथियोंकी अपेक्षा अधिक शक्ति थी, ज़्यादा ताज़गी थी । मैंने अपने मनमें सोचा—जब बाकूनिन इस यातनाको सह गये तो मैं भी सहूँगा । मैं यहाँ हर्गिज़ मरूँगा नहीं ।"

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, दर्शनशास्त्रके प्रोफ़ेसर बननेकी आकांक्षा रखनेवाले युवक बाकूनिनको १८४० ईस्वीमें यह स्वप्नमें भी ख़याल नहीं था कि आगे चलकर उनका जीवन-पथ कंकटाकीर्ण होगा । सन् १८४२में वे बर्लिनसे ड्रेसडन नामक स्थानमें पहुँचे । इस बीच

उनके विचार क्रान्तिकारी हो चुके थे। ड्रेसडनमें सरकारकी उनपर कुदृष्टि पड़ी, इसलिए उन्हें स्विटज़रलैण्ड जाना पड़ा। स्विटज़रलैण्ड सरकारके पास रूसी सरकारकी माँग आई कि बाकूनिनको पकड़कर हमारे यहाँ भेज दो, इसलिए बाकूनिनको वहाँसे भी भागकर पेरिस आना पड़ा और यहाँ वे १८४३ से १८४७ तक रहे। रूसी सरकारने उनकी जायदाद ज़ब्त कर ली। १८४७में फ्रांसकी सरकारने भी उन्हें देशनिकालेका दंड दे दिया, इसलिए वे ब्रुसेल्स चले गये। मई सन् १८४९में वे फिर ड्रेसडन आये। क्रान्तिकारियोंके साथ उन्होंने प्रशियाकी सरकारी फ़ौजका मुक़ाबला किया, पकड़े गये और जर्मन सरकारने, जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, १४ जनवरी सन् १८५०को उन्हें फाँसीका दंड सुनाया।

१८६१में बाकूनिन साइबेरियासे भागकर जापान पहुँचे और वहाँसे अमेरिका होते हुए लन्दन आ गये।

१८६१से १८७३ तक बाकूनिन अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते रहे और इसके लिए उन्हें साम्यवादके प्रवर्तक कार्ल मार्क्सका घोर विरोध करना पड़ा। मार्क्सके तथा बाकूनिनके सिद्धान्तोंमें ज़बरदस्त भेद यह था कि मार्क्स किसी-न-किसी प्रकारकी सरकारमें विश्वास रखते थे और बाकूनिन पूर्ण अराजकवादी थे। किसी भी प्रकारके शासनमें उनका विश्वास ही न था।

बाकूनिन और मार्क्समें इन दोनों में सिद्धान्तोंका मतभेद तो था ही, स्वभाव भी दोनोंका परस्पर-विरोधी था। बाकूनिन उदार तबीयतके आदमी थे और असंयत भावुकता उनमें कूट-कूटकर भरी थी; लेकिन मार्क्सने अपने भावोंपर काफ़ी क़ाबू कर लिया था। बाकूनिनके व्यक्तित्वमें अद्भुत आकर्षण था। जो कोई आदमी उनके संसर्गमें आता, वह उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हुए बिना न रहता; पर मार्क्स बिलकुल ज़ाहिदे ख़ुश्क थे और एक बार उनसे मिलनेके बाद दूसरी बार किसी सहृदय आदमीके मनमें उनके पुनर्दर्शनकी अभिलाषा न रहती थी।

सन् १८७१ में बाकूनिनने मार्क्सके विषयमें लिखा था—

"हम लोग एक दूसरेसे प्राय: मिला करते थे। मेरे हृदयमें मार्क्सके प्रति उनकी विद्वत्ताके कारण ग्रौर साधारण जनताकी सेवाके लिए उनके हृदयमें जो गम्भीर ग्रौर उत्साहपूर्ण भावना थी, उसकी वजहसे बड़ी श्रद्धा थी; लेकिन मार्क्सके सेवा-भावमें सदा ग्रहंभावका सम्मिश्रण हुग्रा करता था। मार्क्ससे बातचीत करनेके लिए मेरे मनमें बड़ी उत्कंठा रहा करती थी ग्रौर उनकी बातचीत सदा शिक्षाप्रद तथा चातुर्यपूर्ण होती थी, सिर्फ उन ग्रवसरोंको छोड़कर, जब उसमें क्षुद्र घृणा या विद्वेषकी प्रेरणा होती थी ग्रौर दुर्भाग्यवश उनकी बातचीत ग्रक्सर क्षुद्र विद्वेषसे प्रेरित होती थी। हम लोग दिल खोलकर कभी नहीं मिले। हम लोगोंके स्वभाव इतने ग्रधिक परस्पर-विरोधी थे कि हार्दिक मिलन सम्भव नहीं था। मार्क्स मेरे विषयमें कहते थे—'तुम भावुकतापूर्ण ग्रादर्शवादी हो', ग्रौर उनका कहना ठीक था, ग्रौर मैं उनसे कहता था—'तुम ग्रहंकारी, विश्वासघाती ग्रौर चालाक ग्रादमी हो', ग्रौर मेरा कहना भी ठीक था।"*

सन् १८४७ में बाकूनिनने मार्क्स ग्रौर ऐंजिल्सके विषयमें लिखा था—

"यदि संक्षेपमें इन लोगोंकी कार्यपद्धतिका वर्णन किया जाय, तो मैं कहूँगा, मूर्खता ग्रौर झूठ, झूठ ग्रौर मूर्खता। इन लोगोंके साथ रहते हुए स्वाधीनतापूर्वक साँस लेना ग्रसम्भव है। मैं इन लोगोंसे ग्रलग रहता हूँ। मैंने उन्हें निश्चयपूर्वक कह दिया है कि ग्रापलोगोंके समाजवादी कारीगरोंके समूहसे बिलकुल ग्रलग रहूँगा ग्रौर मैं उससे कोई ताल्लुक़ नहीं रखना चाहता।"

सन् १८६४ में बाकूनिनने इटलीमें एलाइंस ग्रॉव सोशलिस्ट

---

* He (Marx) called me a sentimental idealist, and he was right; I called him a vain man, perfidious and crafty, and I also was right.

रिवोल्यूशनरीज़ ('Alliance of Socialist Revolutionaries') नामक संस्थाकी स्थापना की। इसमें अनेक देशोंके प्रतिनिधि थे; पर जर्मनीका कोई प्रतिनिधि नहीं था। सन् १८६७ में स्विटज़रलैण्ड पहुँचकर बाकूनिनने इंटरनेशनल एलाइंस ऑव सोशलिस्ट डिमाक्रेसी ('International Alliance of Socialist Democracy') नामक संस्थाकी स्थापना की। इसके पूर्व सन् १८६४ में लन्दनमें इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसियेशन ('Internatioal Working men's Association') की स्थापना हो चुकी थी और इसके विधान तथा नियमोंकी रचना मार्क्सने की थी। थोड़े दिनोंमें ही इस संस्थाने बड़ी उन्नति की। भिन्न-भिन्न देशोंमें इसकी शाखाएँ फैल गईं और साम्यवादी विचारोंके प्रचारके लिए एक अच्छा साधन बन गईं। सन् १८६९ में बाकूनिन अपनी संस्थाको तोड़कर इस संस्थामें सम्मिलित हो गये।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इन दोनों व्यक्तियोंके स्वभावोंमें बड़ा अन्तर था और विचार-पद्धति भी दोनोंकी परस्पर-विरोधी थी। प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें लिखा है—

"मार्क्सके अनुयायियों और बाकूनिनके अनुगामियोंमें जो लड़ाई थी, वह कोई व्यक्तिगत कारणोंसे नहीं थी। बाकूनिनके अनुयायी संघके सिद्धान्तोंके पक्षपाती थे और मार्क्सके अनुयायी सारी शक्तिको एक संस्थामें केन्द्रित करनेके पक्षमें थे। बाकूनिन कहते थे कि संघ स्वतन्त्र रहने चाहिएँ और मार्क्स (State) राष्ट्रके पैतृक शासनमें विश्वास रखते थे। बाकूनिनका विचार था कि साधारण जनता सर्वथा स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना सुधार करे और मार्क्स क़ानूनों द्वारा पूंजीवादमें सुधार कराना चाहते थे। इन दोनोंमें अन्तर था लैटिन भावना तथा जर्मन मनोवृत्तिका। जर्मनीने जबसे फ्रान्सको युद्ध-क्षेत्रमें हराया था तबसे वह विज्ञान, राजनीति और दर्शनशास्त्रमें अपनेको सबसे ऊँचा समझने लगा था। यही नहीं, जर्मन लोग साम्यवादमें भी इसी भावनासे काम लेते थे और अपने 'साम्यवाद'

को वैज्ञानिक कहते थे और दूसरोंके साम्यवादको 'काल्पनिक'— 'हवाई' (utopian)।"

मार्क्सके अनुयायी इस कठोर शब्दके प्रयोगके लिए हमें क्षमा करें; पर यदि वे शान्तिपूर्वक उन कारंवाइयोंपर विचार करेंगे, जो मार्क्सने बाकूनिनके विरुद्ध कीं तो उन्हें इसी परिणामपर पहुँचना होगा कि दर-असल मार्क्सने ईमानदारीको धता बता दी थी। पहली अक़्लमन्दी जो मार्क्सने की थी कि अपने पत्र 'Neue Rhenische Zeitung' में यह सोलहआने असत्य अफ़वाह छाप दी कि बाकूनिन रूसी सरकारकी खुफिया पुलिसका एक आदमी है! यद्यपि पीछे जब इसका खण्डन किया गया, तो मार्क्सने वह भी छाप दिया था; पर इस भयंकर निराधार अफ़वाहसे बाकूनिनकी कीर्तिको बड़ा धक्का लगा था। इसके बाद मार्क्सने अपने जर्मन मित्रोंको एक गुप्त चिट्ठी भेजी, जिसमें लिखा था कि बाकूनिन पैन-स्लेविस्ट लोगोंका एजेण्ट है और उन लोगोंसे बाकूनिनको २५ हज़ार फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलते हैं।

बाकूनिनको इण्टरनेशनलसे निकालनेके लिए मार्क्सने जिस चालाकीका आश्रय लिया था, वह तो वास्तवमें सर्वथा निन्दनीय थी। उस घटनाको सुन लीजिए। बात सन् १८६८—७० की है। बाकूनिन उन दिनों लोकार्नो-में रहते थे। आर्थिक संकटके मारे विचारे तंग थे। उन दिनों एक रूसी पुस्तक-प्रकाशकको उन्होंने यह वचन दिया कि हम तुम्हारे लिए 'केपीटल' (Capital) नामक पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें कर देंगे और इसके लिए ३०० रूबल (क़रीब ४५० रु०) पेशगी ले लिये। क्रान्तिकारी कार्योंमें फँसे रहनेके कारण बाकूनिन अनुवाद-कार्यको हाथमें न ले सके। प्रकाशकने तक़ाज़ा करना शुरू किया। बाकूनिन बड़े तंग थे। बाकूनिनकी इस मनोव्यथाको देखकर उनके एक क्रान्तकारी साथीने, जिसका नाम नैचेव (Netchayeff) था, प्रकाशकके एजेण्ट लुबेबिनको धमकीकी एक चिट्ठी भेजी कि या तो तुम बाकूनिनको तंग करना छोड़ दो, वरना तुम्हारी

खैर नहीं। चूंकि नैचेव महाशय रूसमें एक आदमीका खून करके फ़रार हो चुके थे, इसलिए उनकी धमकी कारगर हो गई। इस धमकीपूर्ण पत्रकी खबर स्विटज़रलैण्डके प्रवासी रूसी समाजके कानों तक पहुँच चुकी थी और मार्क्सने भी इसे सुन रखा था। मार्क्सने इस चिट्ठीका उपयोग करनेकी ठान ली। आपने सन् १८७२में सोचा कि यदि कहीं यह चिट्ठी हमारे हाथ आ जाय, तो काम बन जाय ! फिर हम हेगकी इण्टरनेशनल-में लोगोंसे कह सकेंगे कि देखो, बाकूनिन कैसा बेईमान आदमी है कि पेशगी रुपये लेकर फिर धमकीकी चिट्ठी भिजवाता है ! इस उद्देश्यसे मार्क्सने एक चिट्ठी एक रूसी विद्यार्थीको, जिसका नाम डेनियल-सन था और जो मार्क्सका प्रशंसक था, लिख भेजी कि किसी प्रकार उस चिट्ठीको मेरे पास भेज दो तो काम बने। चिट्ठी निम्न-लिखित है—

"It would be of the highest utility for me, *if this letter was sent me* immediately. As this is a mere *commercial* affair and as in the use to be made of the letter no names will be used, I hope you will procure me that letter. But no time is to be lost. If it is sent, it ought to be sent at once, as I shall leave London for the Haag Congress at the end of this month."

अर्थात्—"यदि यह चिट्ठी फौरन मुझे भेज दी जाय तो वह मेरे लिए अत्यधिक उपयोगी हो सकती है। चूंकि यह खालिस व्यापारकी बात है, और चूंकि चिट्ठीका इस्तेमाल करते समय किसीके नामका उल्लेख न किया जायगा, इसलिए मुझे आशा है कि आप मेरे लिए यह पत्र प्राप्त कर देंगे; लेकिन इसमें रत्तीभर देर न होनी चाहिए। अगर वह भेजा जाय तो फ़ौरन भेजा जाय, क्योंकि इस मासके अन्तमें में हेग-कांग्रेसके लिए लन्दनसे रवाना हो जाऊँगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मार्क्सने यह चिट्ठी ए० विलियम्स नामसे लिखी थी । रूसी सरकारकी दृष्टिसे बचनेके लिए कार्लमार्क्स डेनियलसनके साथ इसी नामसे पत्र-व्यवहार किया करते थे ।

प्रकाशकके एजेण्ट लुबेबिनने तुरन्त ही यह चिट्ठी मार्क्सको भेज दी । साथ ही लुबेबिनने यह भी लिखा—"पहले तो मेरा खयाल था कि अवश्य ही इस धमकीकी चिट्ठीके भिजवानेमें बाकूनिनका हाथ रहा होगा; लेकिन अब शान्तिपूर्वक विचार करनेपर मैं इस परिणामपर पहुँचा हूँ कि इस चिट्ठीसे बाकूनिनके विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सम्भव है कि नैचेवने यह चिट्ठी बाकूनिनके बिना जाने लिखी हो ।"

इस चिट्ठीके द्वारा मार्क्सने हेगकी कांग्रेसमें बाकूनिनको बेईमान सिद्ध करनेका निन्दनीय प्रयत्न किया ! मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक Franz Mehring ने भी मार्क्सकी इस कार्रवाईको, बाकूनिनके सिर निराधार अपकीर्ति मढ़नेके प्रयत्नको, अक्षम्य बतलाया है । उन्होंने लिखा है—

"यद्यपि बाकूनिन बराबर यह बात स्वीकार करते रहे कि मैंने किताबके अनुवादके लिए ३०० रूबल पेशगी लिये थे और साथ ही वे बराबर यह वचन भी देते रहे कि जैसे होगा वैसे इस रुपयेको मैं वापस कर दूंगा; पर आर्थिक कठिनाइयोंकी वजहसे वे कभी इस रुपयेको लौटा नहीं सके । हमारे प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंमें कितने ऐसे न निकलेंगे, जिन्होंने प्रकाशकसे पेशगी रुपये ले लिये, जो खर्च हो गये और फिर जिस किताबके लिखनेका वचन उन्होंने दिया था, वह किताब वे न लिख सके ! निस्सन्देह यह कोई प्रशंसनीय बात नहीं है कि पेशगी रुपये ले लेना और फिर किताब न लिख सकना; लेकिन इस अपराधके लिए अपराधीका खातमा करनेका प्रस्ताव वास्तवमें अत्युक्तिपूर्ण है ।"

मार्क्सके एक अन्य जीवन-चरित-लेखकने लिखा है—

"Marx must bear most of the responsibility for a

report, which was not merely stupid, but fundamentally dishonest."

अर्थात्--"इस रिपोर्टकी ज़िम्मेवरी अधिकांशमें मार्क्सपर पड़नी चाहिए, क्योंकि यह रिपोर्ट बिलकुल मूर्खतापूर्ण ही नहीं थी, बल्कि दर-असल इसके मूलमें बेईमानी थी।"

बाकूनिनने अपनी एक चिट्ठीमें लिखा था—"ये लोग (मार्क्स प्रभृति) बुर्जुआ शब्दका इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि नाकों दम आ जाता है। बुर्जुआ शब्द इनका तकियाकलाम हो गया है, गोकि ये लोग खुद सिरसे पैर तक प्रान्तीय बुर्जुआ हैं।"

आज भी मार्क्सके कितने ही अनुयायी 'बुर्जुआ' शब्दका प्रयोग बेतरह करते हैं। हमारे एक साम्यवादी मित्र कहा करते हैं—"अराजकवादी तो बुर्जुआ लोग हैं, सिर नीचे, पैर ऊपर!"

मार्क्स तथा उनके साथियोंने बाकूनिनका पीछा नहीं छोड़ा। इन लोगोंने बाकूनिनके ख़िलाफ़ एक पाम्फलट निकाला, जिसमें कितनी ही ऐसी बातें लिख दीं, जो बिलकुल बेसिर-पैरकी और सोलहआने झूठ थीं—बाकूनिन खुफिया पुलिसका आदमी है, रूसी सरकारका एजेण्ट है, रिश्वत लेता है, पूंजीपतियोंका सेवक है, इत्यादि-इत्यादि। बाकूनिन उन दिनों हृद्रोगसे बीमार थे और निर्धनताकी दशामें अपने दिन काट रहे थे। उन्हें इस पाम्फ़लटको पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। उसका खंडन करते हुए उन्होंने लिखा था--

"मैं तो अब साठ वर्षका हो चुका और दिलकी बीमारीकी वजहसे मेरे लिए सार्वजनिक जीवनमें भाग लेना दिनों-दिन कठिन होता जाता है। जो नवयुवक हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे आगे बढ़ें। जहाँ तक मेरी बात है, सो न तो मुझमें अब इतनी शक्ति रह गई है और न इतना आत्मविश्वास कि चारों ओरकी प्रतिक्रियाको रोकनेके लिए निरन्तर उद्योग करता रहूँ। यह प्रतिगामीपन या अवनति सब तरफ़ विजयी प्रतीत

होती है । मैं तो इस युद्धसे विश्राम लेता हूँ और अपने सुयोग्य समकालीन कार्यकर्ताओंको अन्तिम प्रणाम करता हूँ। मैं अपने सहयोगियोंसे सिर्फ़ एक बात चाहता हूँ कि वे मुझे भूल जाएँ। अबसे मैं किसीको तंग न करूँगा, न कोई मुझे तंग करे ।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि बाकूनिन मार्क्सकी इस नीतिके घोर विरोधी थे कि उन्होंने इण्टरनेशनलपर कब्ज़ा करके उसे अपना बदला निकालनेका साधन बना लिया था, तथापि बाकूनिनने उक्त संस्थाकी स्थापनाके लिए मार्क्सकी सदा प्रशंसा ही की थी। जब बाकूनिनने अपने स्वास्थ्यके गिर जानेके कारण रिटायर होनेकी बात लिखी थी तो कितने ही लोगोंने इसका भी मज़ाक़ उड़ाया था ! पर दरअसल उनका स्वास्थ्य गिर गया था। बाकूनिनके अन्तिम दिन बड़े आर्थिक संकटमें और अत्यन्त कष्टमय परिस्थितिमें कटे। पहली जुलाई सन् १८७६ को बर्नमें उनका देहान्त हो गया।

बाकूनिनके आखिरी दिनोंकी स्थितिपर विचार करते हुए बार-बार मनमें यह ख़याल आता है कि क्या राजनीतिका अर्थ यही है कि अपने विरोधी को येनकेन-प्रकारेण नीचा दिखाया जाय ? क्या ईमानदारीका राजनीतिमें सचमुच कोई स्थान नहीं है ? जिस महापुरुषने अपने जीवनके तीस वर्ष संसारके ग़रीबोंकी सेवामें लगा दिये और जिसने अत्यन्त भयंकर पथपर अनन्त यातनाएँ सहीं, दो बार जिसे फाँसीका हुक्म हुआ, बारह वर्ष जो जेलमें रहा और जिसे जीवन-भर इधर-से-उधर मारे-मारे फिरना पड़ा, क्या उसको अन्तमें यह पुरस्कार मिलना चाहिए था ?

प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें एक जगह एक स्मरणीय घटनाका वृत्तान्त लिखा है—

"एक बार एक मीटिंगमें कुछ नवयुवक ऐसी बातचीत कर रहे थे, जो स्त्रियोंके प्रति शिष्टतापूर्ण नहीं थी। उस मीटिंगमें कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं । उनमेंसे एक स्त्रीने कहा—'Pity that

Michel is not here. He would put you in your place.' 'दुःखकी बात है कि आज यहाँ माइकेल बाकूनिन मौजूद नहीं हैं, नहीं तो वे तुम्हें बतला देते कि तुम्हारा स्थान कहाँ है।' इस घटनाका मुझपर इतना प्रभाव पड़ा कि मुझे अब भी उस जगहका जहाँपर और जिस परिस्थितिमें यह घटना घटी थी, पूरा-पूरा स्मरण है। उस पर्वतकाय महान् क्रान्तिकारी का उज्ज्वल आदर्श, जिसने क्रान्तिके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था और जिसकी क्रान्तिकी भावनाएँ सर्वोच्च तथा पवित्रतम थीं. अराजकवादियोंको बराबर उत्साहित किया करता था।"

बाकूनिनका जीवन इतना अधिक क्रान्तिमय रहा कि उन्हें अपने अराजकवाद-सम्बन्धी सिद्धान्तोंको ठीक तौर पर जनताके सम्मुख रखनेका अवकाश ही नहीं मिला। यह कार्य उनके सुयोग्य शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिनने किया। 'गुरु गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गये'—यह दृष्टान्त बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनपर चरितार्थ होता है। भविष्यके लिए मानव-समाजके कल्याणार्थ कौन-सी व्यवस्था ठीक होगी, इसका ज़िक्र करते हुए श्री बर्टेण्ड रसेलने अपनी पुस्तकमें लिखा है—

"From the point of liberty....I have no doubt that the best system would be not far removed from that advocated by Kropotkin but rendered more practicable by the adoption of the main principles of Guild Socialism."

अर्थात्—"स्वाधीनताके ख़यालसे मेरी समझमें सर्वोत्तम व्यवस्था वह होगी, जिसका प्रतिपादन प्रिंस क्रोपाटकिनने किया है; पर उसे अधिक व्यावहारिक रूप देनेके लिए 'गिल्ड सोशलिज़्म' के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तोंको ग्रहण करना पड़ेगा।"

बाकूनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवाद-सम्बन्धी विचारोंका ज़िक्र करते हुए महात्माजीका नाम लेना आश्चर्यजनक भले ही मालूम पड़े;

पर वह है सर्वथा प्रासंगिक। दरअसल महात्माजीके विचार प्रिंस क्रोपाटकिनके जितने निकट हैं, उतने कार्ल मार्क्सके नहीं। जहाँ तक नैतिकताका सम्बन्ध है, महात्माजी तथा प्रिंस क्रोपाटकिन क़रीब-क़रीब एक ही धरातलपर हैं। महात्माजी अपनेको अराजकवादी कहते भी हैं। महात्माजीके सत्याग्रह तथा अहिंसाको सिद्धान्तमें संसारके लिए जो महान् हितकारी शक्ति छिपी हुई है, उसका मूल्य हम लोगोंको अभी पूर्णतया नहीं मालूम हो सकता। बाकूनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन, मार्क्स और लेनिन हिंसाके द्वारा क्रान्ति लाना चाहते हैं; पर महात्माजी अहिंसा द्वारा। इस सिलसिलेमें हमें एक घटना याद आती है।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक एमर्सन अपनी द्वितीय इंग्लैण्ड यात्रापर गये हुए थे। एक दिन वे अंग्रेज मित्रोंके साथ बातचीत कर रहे थे। उन मित्रोंने कहा—"क्या आपके यहाँ अमेरिकामें कोई ऐसे भी आदमी हैं, जिनके विचार अमेरिकाके शासनके विषयमें निजी हों, मौलिक हों?"

एमर्सनने उत्तर दिया—"हैं तो अवश्य; पर जिन लोगोंके मौलिक विचार हैं, वे ऐसे स्वप्नदर्शी हैं कि यदि मैं उनके विचारोंका ज़िक्र करने लगूँ, तो वे आपके अंगरेज़-कानोंको बिलकुल ऊटपटाँग जँचेंगे; लेकिन उनका स्वप्न ही वास्तविक है।" इसके बाद एमर्सनने कहा—"हमारे यहाँ ऐसे पवित्र विचारवाले पुरुष हैं, जो No-government and non-resistance अराजकवाद तथा अहिंसामें विश्वास रखते हैं।" इसके बाद एमर्सनने निम्नलिखित शब्द कहे—

"It is true that I have never seen in my country a man of sufficient valour to stand for this truth, and yet is it plain to me, that no less valour than this can command my respect. I can easily see the bankruptcy of the vulgar musket-worship—though great men be musket-worshippers—and 'tis certain as God liveth,

the gun that does not need another gun, the law of love and justice alone can affect a clean revolution."

अर्थात्--ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं कि यदि **स्वच्छ क्रांति संसारमें हो सकती है तो 'प्रेम' और 'न्याय' के सिद्धान्तसे ही।** यदि एमर्सन आज जीवित होते, तो अवश्य वे महात्माजीमें उस व्यक्तित्वको पाते, जिसके लिए उनकी आँखें सन् १८४७ में भटक रही थीं। पर जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, संसारका उद्धार किसी एक व्यक्तिके सिद्धान्तोंसे नहीं होगा। दो अरब आदमियोंसे बने हुए इस मानव-समूहके रोगोंकी रामबाण औषधि किसी एक वैद्यके पास नहीं है। कठमुल्ले हैं वे, जो समझते हैं कि बस हमारा ही पथ ठीक है और सब रास्ते ग़लत हैं। मार्क्सके जो अनुयायी महात्मा गांधीजीको 'साम्राज्यवादके दोस्त' और 'प्रतिक्रियावादी' बतलाते हैं अथवा अराजकवादके सिद्धान्तकी खिल्ली उड़ाते हुए अराजकवादियोंको 'बुर्जुआ' और 'स्वप्नदर्शी' कहते हैं, वे अपनी अल्पज्ञताका ही परिचय देते हैं।

संसारके सामने अभी अनेक युग आनेवाले हैं। मार्क्सवादका युग ही अन्तिम युग नहीं है, और उन भावी युगोंके लानेका श्रेय जिन व्यक्तियोंको होगा, उनमें महाप्राण माइकेल बाकूनिनका नाम अग्रगण्य है।

: २ :

प्रिन्स क्रोपाटकिन

"Kropotkin lived what Tolstoy only advocated."

—Romain Rolland

अर्थात्—"क्रोपाटकिनने अपने जीवनमें उन सिद्धान्तोंको उतारा, जिनकी टाल्सटायने केवल शिक्षा ही दी थी।"—रोम्यां रोलाँ

अभी उस दिन एक बौद्ध सज्जनसे बातचीत हो रही थी। इन पंक्तियोंके लेखकने कहा कि भगवान् गौतम बुद्धने यह कहकर कि जो मांस खास तौरपर तुम्हारे लिए तैयार न किया हो, उसके भक्षण करनेमें कोई पाप नहीं है, अपने अहिंसाके सिद्धांतपर समझौता कर लिया, और आज चीन, जापान इत्यादिमें जितना मांस-भक्षण होता है, उतना शायद ही किसी देशमें होता हो। इस दृष्टिसे भगवान् महावीरकी पोजीशन कहीं अधिक तर्कयुक्त थी। इसमें सन्देह नहीं कि अहिंसाके सिद्धान्तपर अत्यन्त दृढ़ रहनेके कारण और आदर्शोंके विषयमें समझौता न करनेके कारण महावीरका धर्म अधिक नहीं फैला।

उक्त बौद्ध सज्जनने अपना पक्ष युक्तियों द्वारा समझानेका बहुत प्रयत्न किया; पर वह निर्बल था और कोई भी तर्क उसे प्रबल नहीं बना सकता था। जब हम मार्क्स अथवा लेनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्तोंकी तुलना करते हैं, तो हमें गौतम बुद्ध और महावीरके दृष्टान्तोंकी याद आ जाती है। महावीरके सिद्धान्तोंका बीज दो हजार वर्ष तक इस भूमिमें यों ही पड़ा रहा, फिर बम्बईके एक जैन राजचन्द्रके द्वारा वह प्रस्फुटित हुआ और उसका लहलहाता हुआ छोटा-सा पौधा उनके शिष्य

महात्मा गान्धीके आन्दोलनके रूपमें आज दीख पड़ रहा है। कौन कह सकता है कि वह कभी विशाल वट-वृक्षका रूप धारण न कर लेगा ? इसी प्रकार आजकल मार्क्सके सिद्धान्त संसारमें विजयकी ओर अग्रसर होते हुए प्रतीत हो रहे हैं और ऐसा दीख पड़ता है कि अराजकवाद बहुत पीछे पड़ गया है; पर यह स्थिति चिरकाल तक स्थायी नहीं रह सकती। लोग भले ही प्रिंस क्रोपाटकिनको 'स्वप्नदर्शी' कहें; पर इसमें सन्देह नहीं कि अन्तिम विजय उन्हींके सिद्धान्तोंकी होगी।

प्रिंस क्रोपाटकिन किसी भी प्रकारकी सरकारके घोर विरोधी थे और जीवनके अन्ततक वे अपने सिद्धान्तोंके लिए लड़ते रहे। उसपर उन्होंने समझौता नहीं किया। जहाँ तक आदर्श-रक्षाका प्रश्न है, यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि संसारके इतिहासमें प्रिंस क्रोपाटकिन-जैसे दृष्टान्त दो-चार भी मुश्किलसे मिलेंगे।

लाखोंकी धन-सम्पत्तिपर लात मारकर जिसने अत्यन्त ग़रीबीकी हालत में बढ़ईगीरी तथा जिल्दबन्दी करके अपनी गुज़र करना उचित समझा, ज़ारके पार्श्वद और गवर्नर-जेनरलके सेक्रेटरी होनेके बजाय जिसने किसानों तथा मजदूरोंका सखा होना अधिक गौरवयुक्त माना, संसारके वैज्ञानिकोंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान होनेपर भी जिसने वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके कार्यको भारतवर्षके एकान्तवासी मोक्षाभिलाषी संन्यासियोंकी तरह स्वार्थ-भावनाके समान समझकर तिलांजलि देदी और अराजकवादके प्रचारके लिए जिसने अपने जीवनको बीसियों बार ख़तरेमें डाल दिया, जिसने न केवल अपने देश रूसकी स्वाधीनताके लिए, वरन् फ्रान्स और इंग्लैण्ड आदि देशोंके मज़दूरोंके संगठनके लिए भी अपनी शक्ति अर्पित कर दी, जो ४२ वर्ष तक अपने देशसे निर्वासित रहा और जिसने न ज़ारकी सरकारसे समझौता किया और न लेनिनकी गवर्मेण्टसे और मरनेपर भी जिसके सगे-सम्बन्धियों तथा बन्धुओंने सरकारकी ओरसे अन्त्येष्टि-क्रिया (State funeral) को सर्वथा अस्वीकार कर दिया,

उन प्रिंस क्रोपाटकिनका जीवन-चरित प्रत्येक नवयुवकके लिए पठनीय है।

कहा जाता है कि सोवियट सरकारने क्रोपाटकिनसे कहा था कि वे अपनी पुस्तक 'फ्रान्सकी राज्य-क्रान्ति' का अधिकार बहुत-सा रुपया लेकर सरकारको दे दें, क्योंकि सोवियट सरकार उसे अपने स्कूलोंमें पाठ्यपुस्तककी भाँति नियत करना चाहती है; पर उन्होंने इस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वह एक सरकारकी ओरसे आया था। केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीने उन्हें भूगोल-शास्त्रकी अध्यापकीका काम करनेके लिए निमन्त्रण दिया; पर साथ-ही यह भी कह दिया था कि हमारे यहाँ अध्यापक होनेके बाद आपको अपने अराजकवादी सिद्धान्तोंका प्रचार बन्द कर देना पड़ेगा। आपने इस नौकरीको भी धता बता दी। जिन सिद्धान्तोंका उन्होंने प्रतिपादन किया था, ज़िन्दगी-भर उन्हींपर वे दृढ़ रहे। अराजकवादके प्रचारार्थ उन्होंने जो कार्य किया था, उसके बदलेमें एक पैसा भी उन्होंने किसीसे नहीं लिया। जब वे अत्यन्त ग़रीबीकी हालतमें इंगलैण्डमें रहते थे, उन दिनों लोगोंने उन्हें दान देना चाहा, किसी-किसीने उन्हें रुपया उधार देना चाहा; पर आपने उसे भी नामंज़ूर कर दिया। घोर आर्थिक संकटके समयमें भी जो लोग उनके पास आते थे, उन्हें वे जो कुछ उनके पास होता था, उसमेंसे दे देते थे।

रूसमें क्रान्ति हो जानेके बाद जब लेनिनका शासन प्रारम्भ हुआ, उन दिनों क्रोपाटकिन मास्कोके निकट डिमिट्रोव नामक ग्राममें रहते थे। गोकि उनका स्वास्थ्य ख़राब था—वे ७५ वर्षके हो चुके थे—तथापि उन्हें उतना ही भोजन सोवियट सरकारकी शाखाकी ओरसे दिया जाता था, जितना बूढ़े आदमियोंके लिए नियत था। उन्होंने एक गाय रख छोड़ी थी और अपनी स्त्री तथा पुत्रीके साथ वे इस कठिन परिस्थितिमें रहा करते थे। यार लोगोंने उनके गाय रखनेपर भी आक्षेप किया! ज़रा कल्पना कीजिए, जिसने अपने देशकी स्वाधीनताके लिए

५० वर्ष तक कार्य किया, उसके लिए बुढ़ापेमें बीमारीकी हालतमें एक गाय रखना भी आक्षेपका विषय समझा जाता है !

क्रोपाटकिन तो सरकारी शासन-प्रणालीके खिलाफ़ थे, इसलिए सरकारसे शिकायत करना उनके सिद्धान्तके विरुद्ध था, और शिकायत उन्होंने की भी नहीं; पर क्रोपाटकिनके मित्रोंको यह बात बहुत अखरी, और उन्होंने स्थानीय सोवियटके अधिकारियोंसे शिकायत कर ही दी; पर उसका परिणाम कुछ न निकला ! आखिरकार यह खबर लेनिनके कानोंतक पहुँचाई गई। लेनिन क्रोपाटकिनके प्रशंसक थे। उन्होंने तुरन्त स्थानीय सोवियटको हुकम लिख भेजा कि क्रोपाटकिनके भोजनकी मात्रा बढ़ा दी जाय और उन्हे गाय रखने दी जाय। क्रोपाटकिनकी पुत्री के पास लेनिनके हाथका लिखा हुआ यह पर्चा अब भी मौजूद है।

यह कहनेकी आवश्यकता नही कि लेनिन और प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्तोंमें जबरदस्त मतभेद था। लेनिनने एक बार प्रिंस क्रोपाटकिनसे मुलाक़ात भी की थी; पर उसका नतीजा कुछ भी नहीं निकला। एक लेखकने लिखा है—

"यद्यपि क्रोपाटकिन बोल्शेविक लोगोंके द्वारा क्रान्तिका जो विकास हो रहा था, उसमें व्यावहारिक रूपमे कोई भाग नहीं ले सकते थे, तथापि उन्हें इस बातकी चिन्ता अवश्य थी कि बोल्शेविक लोग दमनकी जिस नीतिका आश्रय ले रहे थे, वह स्वयं क्रान्तिके लिए हानिकारक थी और मनुष्यताकी दृष्टिसे भी वह अनुचित थी। लेनिनने अपने एक मित्रके द्वारा, जो प्रिंस क्रोपाटकिनके भी मित्र थे, क्रोपाटकिनके पास यह सन्देश भेजा कि मैं आपसे मिलनेके लिए उत्सुक हूँ और आपसे बातचीत करनेके लिए आपके ग्राम डिमिट्रोव आ भी सकता हूँ। क्रोपाटकिन राज़ी हो गये और दोनोंकी बातचीत हुई। यद्यपि लेनिन सहृदयतापूर्वक मिले और उन्होंने क्रोपाटकिनके विचारोंको सहानुभूतिके साथ सुना भी; पर इस बातचीतका परिणाम कुछ भी नहीं निकला।"

साम्यवादी (हमारा अभिप्राय मार्क्सवादीसे है) और अराजकवादीके दृष्टिकोणमें ज़बरदस्त मतभेद है। साम्यवादीके लिए मनुष्य शतरंजके एक निर्जीव पैदलकी तरह है, जिसे आप खेलते समय इधर-से-उधर रख सकते हैं, मनुष्यकी व्यक्तिगत स्वाधीनताका उसके लिए विशेष मूल्य नहीं, ख़ास तौरपर ऐसे मौक़ेपर जब कि देश या अपनी पार्टीके हितका प्रश्न उपस्थित हो; पर अराजकवादी व्यक्तिकी स्वाधीनताका सबसे प्रबल समर्थक है। प्रिंस क्रोपाटकिनने अपने निबन्धमें 'अराजकवादी नीति' में एक जगह लिखा है--

"हम व्यक्तिकी पूर्ण स्वाधीनताको मानते हैं; हम उसके लिए जीवनकी प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओंका स्वतन्त्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धान्त-पर पहुँचते हैं, जिस सिद्धान्तको फोरियर (Fourier) ने धार्मिक नीतिज्ञानके विरोधमें रखते हुए कहा था--'मनुष्यको बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म उनको बहुत कुछ अपंग--ज़रूरतसे ज़्यादा अपंग--बना चुका है। उनके मनोविकारोंसे भी मत डरो। स्वतन्त्र समाजमें ये ख़तरनाक नहीं होते।'

"यदि आप स्वयं अपनी स्वाधीनताका परित्याग न करें, यदि आप स्वयं अपने-आपको दूसरों द्वारा ग़ुलाम न बनने दें और यदि आप किसी व्यक्तिके प्रचंड और समाज-विरोधी मनोविकारका समान रूपमें अपने प्रचंड--समाजके लिए उपयोगी--जोश द्वारा विरोध करें, तो आपके लिए स्वतन्त्रतासे डरनेकी कोई बात नहीं रह जायगी।

"हम किसी भी आदर्शके नामपर व्यक्तिको अंगहीन करनेकी भावना-का परित्याग करते हैं। हम अपने लिए सिर्फ इतना ही सुरक्षित रखना चाहते हैं कि हमें जो कुछ अच्छा या बुरा मालूम हो, उसके प्रति हम स्पष्ट रूपसे अपनी सहानुभूति अथवा विरक्ति प्रकट करें। एक मनुष्य अपने मित्रोंको धोखा देता है। उसकी प्रवृत्ति ही ऐसी है, ऐसा करना उसका

स्वभाव है। अच्छा, तो यह हमारा भी स्वभाव है—हमारी यह प्रवृत्ति है कि हम झूठ बोलनेवालोंसे घृणा करें। चूंकि यह हमारा स्वभाव है, इसलिए हमें स्पष्ट रूपसे ऐसा करना चाहिए। हम दौड़कर उसे न छातीसे लगावें और न उससे हाथ मिलावें, जैसा कि आजकल कभी-कभी किया जाता है। हमें अपने सक्रिय मनोविकारके द्वारा उसके मनोविकारका प्रचंड रूपमें विरोध करना चाहिए।

"हमें सिर्फ इतना ही करनेका अधिकार है; समाजमें समानताके सिद्धान्तको अक्षुण्ण बनाये रखनेके लिए हमें केवल इसी कर्तव्यका पालन करना है। आचरण द्वारा समानताके सिद्धान्तको इसी प्रकार चरितार्थ किया जा सकता है।"

साम्यवादी और अराजकवादीका अन्तर सुप्रसिद्ध अंगरेज़ पत्रकार ए० जी० गार्डनरने बड़े सुन्दर ढंगपर बतलाया है। वे अपनी पुस्तक (Pillars of Society) 'समाजके स्तम्भ' में लिखते हैं—

"साम्यवादी मनुष्यको साकार न देखकर मनमें उसकी भावनामात्र करता है और समाजको वह क़ानून द्वारा परिचालित एक शरीरकी भाँति देखता है। इस कल्पनासे उसके मस्तिष्क पर तो असर पड़ता है; पर उसकी मनुष्यता बिलकुल प्रभावित नहीं होती। अराजकवादी, जो दर-असल व्यक्तित्ववादीकी चरमसीमा है, मनुष्यको साकार देखता है, और उसका हृदय मानों मनुष्यके लिए उमड़ पड़ता है—ऐसे मनुष्यके लिए, जिसे वह देख सकता, छू सकता और उसकी बात सुन सकता है। अराजकवादीको एक मनुष्यकी चिन्ता है और साम्यवादीको एक प्रणालीकी।"

प्रिंस क्रोपाटकिनका जीवन प्रारम्भसे अन्त तक एक अत्यन्त उच्च-कोटिके सन्त पुरुषका जीवन है, जिसने अपने सर्वस्व—धन-सम्पत्ति, समय, आराम और जीवन—को मानव-जातिके लिए अर्पित कर दिया। उनकी गणना संसारके सर्वोत्तम वैज्ञानिकोंमें की जाती थी;

पर उन्होंने वैज्ञानिक अनुसन्धानके आनन्दका अकेले ही उपयोग करना उचित न समझा। अपने आत्म-चरितमें एक जगह वे लिखते हैं––

"जिस किसीने अपने जीवनमें एक बार भी उस आनन्दका जो वैज्ञानिक अनुसन्धानके बाद प्राप्त होता है, अनुभव किया है, वह उस आनन्दको कदापि भूल नही सकता और वह निरन्तर इस बातकी इच्छा करेगा कि यह आनन्द मुझे जीवनमें अनेक बार मिले। पर एक बातसे उसे दुःख होगा, वह यह कि इस तरहका आनन्द कितने अल्पसंख्यक आदमियोंके भाग्यमें बदा है। यदि सर्वसाधारणको अवकाश मिलता और विज्ञानकी बातें उन्हें समझा दी जातीं तो थोड़े-बहुत अंशमें वे भी इस आनन्दका अनुभव कर लेते; पर दुर्भाग्यवश यह ज्ञान और अवकाश केवल मुट्ठीभर आदमियोंतक ही परिमित रहता है।"

प्रिंस क्रोपाटकिन फिनलैण्डमें भौगोलिक अनुसन्धान करनेके लिए भेजे गये थे। वहाँ जाकर उन्होंने देशके दीनहीन किसानोंकी हालत देखी, उससे उनका हृदय द्रवित हो गया। आत्म-चरितमें वे लिखते हैं–– "ये बेचारे मेहनत करते-करते मरे जाते हैं और फिर भी इन्हें पेटभर भोजन नहीं मिलता! अपने वैज्ञानिक अनुसन्धान करके मैं उन्हें यह बतलाऊँ भी कि तुम अमुक ज़मीनमें अमुक प्रकारका खाद दो और फलाँ कार्यके लिए फलाँ अमेरिकन मशीन मँगाओ, तो उससे फ़ायदा क्या होगा? सरकारी टैक्स बराबर बढ़ता जाता है और टैक्स देनेके बाद पेट-पूर्तिके लिए काफ़ी अन्न नहीं बचता। शरीर ढकनेके लिए कपड़े भी उनके पास नहीं। भला वह मेरे वैज्ञानिक अनुसन्धानोंको और सलाहोंको लेकर क्या चाटेगा? इस किसानको मेरी वैज्ञानिक सलाहकी ज़रूरत नहीं, उसे ज़रूरत है मेरी। यदि मैं उसके पास रहूँ और अपनी ज़मीनका मालिक बननेमें उसकी मदद करूँ, जब उसको भरपेट खाना मिलेगा; तब वह मेरी किताब भी पढ़ लेगा और उससे कुछ लाभ भी उठा लेगा, अभी नहीं।

विज्ञान बड़ी अच्छी चीज़ है। मैंने वैज्ञानिक अनुसन्धानोंके आनन्दका अनुभव किया है और उसका मूल्य मैं भलीभाँति जानता हूँ; पर मुझे क्या अधिकार है कि मैं अकेले ही उन सर्वोच्च आनन्दोंका मज़ा लूटूँ, जब मेरे चारों ओर एक-एक रोटीके टुकड़ेके लिए भयंकर जीवन-संग्राम चल रहा है? जो लोग गेहूँ उगाकर भी इतना नहीं बचा सकते कि खुद उनके बच्चे गेहूँकी रोटी खा सकें, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उनके मुँहकी रोटीके टुकड़े छीनकर स्वयं उच्च भावनाओंके संसारमें विचरण करूँ? मनुष्य-जाति जो कुछ उत्पन्न करती है, उसकी मिक़दार अभी बहुत थोड़ी है, इसलिए यदि मैं मज़ेमें रहता हुआ वैज्ञानिक अनुसन्धानोंमें मस्त रहूँ तो इसका ख़र्च भी तो किसी ग़रीबके मुँहकी रोटी छीनकर ही आवेगा। ज्ञान बड़ी भारी चीज़ है। मैं भी यह मानता हूँ। इससे इन्कार कौन करता है? मनुष्यको ज्ञान बढ़ाना चाहिए, बहुत ठीक। पर सवाल तो यह है कि जितना ज्ञान प्राप्त हो गया है, जितने वैज्ञानिक अनुसन्धान हो चुके हैं क्या वे सर्वसाधारण तक पहुँच गये? क्या आम लोग उन्हें जान गये? मेरी समझमें जितने ज्ञानका पता लग चुका है, वह बहुत काफ़ी है। यदि यही ज्ञान सर्वसाधारणकी सम्पत्ति बन जाय तो फिर विज्ञानकी कितनी ज़बरदस्त उन्नति हो? तब उत्पत्ति, आविष्कार और सामाजिक कार्योंकी गति इतनी तीव्र हो जायगी कि अभी हम उसका अन्दाज़ भी नहीं लगा सकते। साधारण जनता ज्ञान प्राप्त करना चाहती है। उसकी हार्दिक इच्छा है कि उसे ज्ञान मिले। उसमें ज्ञान प्राप्त करने की सामर्थ्य भी है,..पर उसे ज्ञान देता कौन है? उसके पास इतना अवकाश है कहाँ?"

क्रान्तिकारी मार्गका अनुसरण करनेसे क्रोपाटकिनको जीवनमें जो-जो कष्ट उठाने पड़े, उनका वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। किस प्रकार किसानों और मज़दूरोंको उन्होंने क्रान्तिकारी सन्देश सुनाया, किस प्रकार वे पकड़कर जेलमें डाल दिये गए और किस प्रकार वे वहाँसे निकल

भागे, इन घटनाओंका वृत्तान्त किसी उपन्याससे कम आश्चर्योत्पादक तथा रोचक नहीं है।

क्रोपाटकिनने अपने जीवनके बयालीस वर्ष स्वदेशसे, बाहर व्यतीत किये। फ्रांसमें रूसी सरकारके दबावके कारण वे जेलमें ठेल दिये गए। उनको मरवा डालने अथवा पकड़कर रूसको ले जानेके लिए रूसी सरकारने अनेक षडयन्त्र किये, जो विफल ही हुए।

विदेशोंमें रहते हुए प्रिंस क्रोपाटकिनने कितने ही ग्रन्थोंकी रचना की थी। उनमें मुख्यके नाम ये हैं:

(1) Memoirs, (2) Conquest of Bread, (3) Mutual Aid, (4) Pamphlets, (5) Fields, Factories and Workshop, (6) The Great French Revolution, (7) Modern Science and Anarchism, (8) Ideals and Realities in Russian Literature, (9) In Russian and French Prisons and (10) Ethics.

इनमें प्रथम ग्रन्थका भावानुवाद 'प्रताप' कार्यालयसे 'क्रान्तिकारी राजकुमार' के नामसे प्रकाशित हुआ है और द्वितीय तथा तृतीय पुस्तकके अनुवाद 'सस्तासाहित्य-मंडल' नई दिल्लीसे 'रोटीका सवाल' और 'संघर्ष या सहयोग?' के नामसे प्रकाशित हुए हैं। उनके पाम्फ़लटोंमेंसे कईके अनुवाद छप चुके हैं।

क्रोपाटकिन बीस भाषाएँ जानते थे। सात भाषाओंमें तो बड़ी खूबीके साथ बातचीत कर सकते थे और अपने ग्रन्थ उन्होंने तीन भाषाओं-में लिखे थे—रशियन, फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी। गणितज्ञ थे, भूगर्भ-विद्याके ज्ञाता थे, दार्शनिक थे, गान-विद्यामें अच्छी गति रखते थे और महान भूगोल-वेत्ताकी दृष्टिसे तीस वर्षकी उम्रमें ही उनकी कीर्ति रूस-भरमें फैल गई थी। इतने विद्वान् होते हुए भी प्रिंस क्रोपाटकिनको अभिमान छू भी नहीं गया था।

लेनिन, प्रिंस क्रोपाटकिन और महात्मा गांधी इन तीनोंके—आधुनिक जगतके इन ब्रह्मा, विष्णु, महेशके—चरितोंका तुलनात्मक अध्ययन वास्तवमें अत्यन्त मनोरंजक होगा। लेनिन प्रिंस क्रोपाटकिनके व्यक्तित्वकी बड़ी इज़्ज़त करता था और महात्मा गान्धी भी उनके ग्रन्थोंके प्रशंसक रहे हैं। हिंसा और अहिंसाके प्रश्नपर निस्सन्देह महात्माजीकी पोज़ीशन मानव-समाजके अन्तिम हितको ध्यानमें रखते हुए सबसे ऊँची है। लेनिन स्वयं हिंसाको दिलसे बहुत नापसन्द करता था। मैक्सिम गोर्कीको उसने एक पत्रमें लिखा था—

"Appasionata नामक गानको सुनकर मेरी तो तबियत फड़क जाती है। मनमें आता है कि हर रोज उसे सुनूं। यह गान आश्चर्यजनक है, स्वर्गीय है। जब कभी मै उसे सुनता हूँ तो मै अभिमानपूर्वक और शायद बच्चों-जैसी भोली-भाली सादगीके साथ कहने लगता हूँ कि मनुष्य कैसी बढ़िया चीज़ोंका निर्माण कर सकता है; पर मै गाने अक्सर नहीं सुन सकता, क्योंकि उनसे मेरे स्नायुओंपर असर पड़ता है। इन गानोंको सुनकर मेरे मनमें यह विचार आता है कि इस गन्दे नर्कमें रहते हुए भी जो महानुभाव ऐसी सुन्दर चीज़ोंकी सृष्टि कर सकते हैं, उन्हें मैं बधाई दूं, उनके मनको लुभानेवाली बातें कहूँ और उनके सिरको सहलाऊँ! पर आज तो लोगोंके सिर सहलानेका वक्त नहीं है, आज तो मेरे हाथ लोगोंकी खोपड़ी तोड़नेके लिए, उनके टूक-टूक कर देनेके लिए, आगे बढ़ते हैं, **यद्यपि सब प्रकारकी हिंसाका विरोध हमारा अन्तिम ध्येय है**—यह हिंसाकार्य वास्तवमें नारकीय तथा अत्यन्त कठोर है।"

प्रिंस क्रोपाटकिन भी हिंसाको नापसन्द करते थे। किसीकी जान लेना तो दूर रहा, उन्होंने जिन्दगी-भरमें किसीको पीटा भी हो, इसमें सन्देह है; पर राजनैतिक हिंसाओंका उन्होंने समर्थन ही किया था। महात्मा गांधी ही अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने हिंसाका स्थान प्रेमको दिया है। एमर्सनने अपने निबन्ध पालीटिक्स (Politics) में लिखा था—

"The Fower of the love as the basis of a State has never been tried. अर्थात्—"शासनकी नींवको प्रेमके आधारपर रखनेका प्रयोग कभी नहीं किया गया।" यदि एमर्सन जीवित रहते तो अवश्य ही वे महात्माजीका समर्थन करते।

जिस प्रकार मार्क्सके मतानुयायियोंकी दृष्टिमें प्रिंस क्रोपाटकिनके सिद्धान्त 'स्वप्नदर्शी' के ख़्वाब है, उसी प्रकार प्रिंस क्रोपाटकिनके अनुयायियोंकी दृष्टिमें महात्माजीके सिद्धान्त 'स्वप्नदर्शी' के सपने हो सकते हैं।

अन्तमें हमें क्रोपाटकिनके जीवनके आख़िरी दिनोंकी दो बातें और कहनी हैं। जिस ज़ारशाहीके नाशके लिए क्रोपाटकिनने जीवनके ५० वर्ष तक प्रयत्न किया था, वह सन् १९१७ में नष्ट हो गई और रूसमें बोल्शेविक लोगोंका शासन हो गया। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, प्रिंस क्रोपाटकिन शासनके सर्वथा विरोधी थे और अपने सिद्धान्तोंके लिए समझौता करनेके लिए बिलकुल तैयार न थे। पाठक पूछ सकते है कि फिर उन्हें अपने अन्तिम दिन कैसे व्यतीत करने पड़े? ७५ वर्षकी उम्रमें वे अपनी 'नीतिशास्त्र' (Ethics) नामक अन्तिम पुस्तक लिख रहे थे। किताबोंके ख़रीदनेके लिए उनके पास पैसा नहीं था। जब कभी मित्र लोग थोड़ा-सा पैसा भेज देते तो एक-आध आवश्यक पुस्तक वे ख़रीद लेते। पैसेकी कमीके कारण ही वे कोई क्लर्क या टाइपिस्ट नहीं रख सकते थे। इसलिए अपने ग्रन्थकी पाण्डुलिपि बनानेका और चीज़ोंके नक़ल करनेका काम उन्हें खुद ही करना पड़ता था। भोजन भी उन्हें पुष्टिकर नहीं मिल पाता था, जिससे उनकी कमज़ोरी बढ़ती जाती थी और एक धुंधले दीपककी रोशनीमें उन्हें अपने ग्रन्थकी रचना करनी पड़ती थी!"*

***प्रिंस क्रोपाटकिनके मित्र एन. लेबेडर** (N. Lebedar) **ने उनकी पुस्तक 'नीतिशास्त्र'की भूमिकामें ये बातें लिखी हैं।**

जिस ऋषिके सिद्धान्त कभी संसारके मानव-समाजके कल्याणका कारण बनेंगे उसे स्वदेशमें किस प्रकार अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने पड़े !

क्रोपाटकिनके अनन्य साथी एन० लेबेडरने 'नीतिशास्त्र' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है—

"In his 'Ethics,' Kropotkin, like the poet, gives to mankind his last message—

'Dear friend, do not with weary soul aspire
Away from the gray earth—your sad abode
No! throb with the earth, let earth your body tire—
So help your brothers bear the common load.'"

—"कविकी निम्नलिखित कविता ही क्रोपाटकिनके जीवनका अन्तिम सन्देश है—

'प्रिय मित्र ! अपनी थकी हुई आत्मासे यह आकांक्षा मत करो कि हमें कहीं इस दुःखमय पृथिवीसे दूर कोई विश्राम-स्थल (स्वर्ग इत्यादि) मिले। हर्गिज़ नहीं, बल्कि इस पृथिवीकी साँसके साथ तुम भी सांस लो, पृथिवीकी सेवा ही तुम्हारे शरीरको थकावे और अपने भाइयोंपर जो दुःखका भार है उसको बँटाने और उठानेमें मदद दो।'"

या यों कहिये—

"न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम् ॥"

अप्रैल १९३६]

: ३ :

अराजकवादी मैलटेस्टा

भूमध्यसागरके एक क्षुद्र द्वीप लम्पेडूसाके आसपास भयंकर तूफ़ान आ रहा है। चार निर्वासित आदमी उस द्वीपमें क़ैद हैं और उनपर कड़ा पहरा रखा जाता है। उधर तूफ़ानके कारण सन्तरी लोगोंने घरके भीतर जाकर शरण ली और इधर ये चारों क़ैदी भाग निकले! एक छोटी-सी नाव लेकर उन्होंने समुद्रमें डाल ही तो दी और लगे उसे खेने! उस समुद्र-में तूफ़ानके समय नौका डालनेका अर्थ था मृत्युका आलिंगन और सन्तरी इसीलिए बिलकुल निश्चिंत होकर विश्राम कर रहे थे; पर आज़ादीके मस्ताने उन क़ैदियोंने इसकी कोई चिन्ता न की। पाठक पूछेंगे कि ये दुस्साहसी क़ैदी कौन थे? ये थे सुप्रसिद्ध इटेलियन अराजकवादी मैल-टेस्टा और उसके तीन साथी।

मैलटेस्टाका जीवन प्रारम्भसे लेकर अभी तक अत्यन्त साहसिक जीवन रहा है। ऐरिको मैलटेस्टाका जन्म आजसे ८१ वर्ष पहले सन् १८५३ में इटलीके दक्षिण भागके एक नगरमें हुआ था। सन् १८७० में मैलटेस्टा नेपिल्सके विश्वविद्यालयमें डाक्टरीकी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उस समय इटलीमें विद्यार्थियोंकी हड़तालें खूब हो रही थीं। मैलटेस्टाने उन हड़तालोंमें भाग लिया, वे पकड़े गये और कालेजसे निकाल दिये गए। उस समय उन्होंने बिजलीके मिस्त्रीका काम सीख लिया और उसीके द्वारा वे जब-जब उन्हें ज़रूरत पड़ी है, अपनी जीविका निर्वाह करते रहे हैं।

मैलटेस्टाके जीवनके पिछले ६०—६२ वर्ष अराजकवादके सिद्धान्तोंके

प्रचारमें बीते हैं। यदि वे चाहते तो आज वे इटलीमें मुसोलिनीकी जगहपर होते; पर अराजकवादियोंका यह दृढ़ सिद्धान्त रहा है कि वे किसी प्रकारके राज्यमें विश्वास नहीं रखते और इसी सिद्धांतके अनुसार क्रान्तिकारी मैलटेस्टा इटलीका शासक होनेके बजाय आज रोममें अपनी पत्नी और लड़कीके साथ बिजलीके मिस्त्रीका काम करते हुए ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं। खुफ़िया पुलिसके तीन आदमी उनकी निगरानी किया करते हैं! जब इटलीके दम्भी नट मुसोलिनीका जन्म भी नहीं हुआ था, उस समयसे मैलटेस्टाको एक ही धुन रही है और वह है अराजकवादी समाजवादका प्रचार। अराजकवादियोंके आचार्य माइकेल बाकूनिन उन दिनों अपने देश रूससे निर्वासित होकर साइबेरिया भेज दिये गए थे। वहाँसे भागकर वे इटलीके फ्लोरेन्स नगरमें और फिर नेपिल्समें आकर रहे थे। उनके असाधारण त्याग तथा अद्भुत व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर कितने ही इटेलियन युवक उनकी शिष्य-मंडलीमें सम्मिलित हो गये थे। मैलटेस्टाने भी बाकूनिनके ही दलमें सम्मिलित होनेका निश्चय कर लिया और १९ वर्षकी उम्रमें शामिल हो गये। इसके थोड़े दिनों बाद वे स्विट्ज़रलैण्ड जाकर बाकूनिनसे मिले भी और उनके व्यक्तित्वसे अत्यन्त प्रभावित हो गये। बाकूनिनने उनका नाम बैंजमिन रख दिया।

उन दिनों इटलीके कुछ अनुभवहीन नवयुवकोंने किसानोंमें क्रान्ति करनेकी सोची और कुछ लोगोंको भड़काया भी; पर वे पकड़ लिये गए और कुछ परिणाम नहीं निकला। मैलटेस्टाको सालभर जेलमें रखा गया। फिर मुक़दमा चला, जिसमें ये लोग छोड़ दिये गए। जूरीने कहा कि ये नातजुर्बेकार छोकरे खेल कर रहे थे!

सन् १८७५में मैलटेस्टाने दो वर्ष इटलीके बाहर बिताये—कुछ दिन स्पेनमें और कुछ अन्यत्र। उन दिनों तुर्कोंने बालकनके किसानों-को अत्याचारोंसे पीड़ित कर रखा था। मैलटेस्टाके शरीरमें जवानीका खून जोश मार रहा था। उस समय उनकी उम्र कुल २३ वर्षकी

थी। वे किसानोंका पक्ष लेकर तुर्कोंसे लड़नेके लिए चल पड़े; पर आस्ट्रिया हंगरी प्रदेशकी सीमापर वे पकड़ लिये गए और वहाँसे इटलीको वापस भेज दिये गए।

सन् १८७७में मैलटेस्टा और उसके साथियोंने फिर किसानों द्वारा विद्रोह करानेकी ठानी। नेपिल्सके निकट बैनवेन्टो नामक स्थान इसके लिए चुना गया। कई सौ किसान विद्रोह करनेके लिए तैयार भी हो गए; पर इस षड्यन्त्रका भंडा फूट गया और विद्रोहकी तिथिके पहले ही तीन सौ किसान पकड़ लिये गए। मैलटेस्टा भी अपने २६ साथियोंके साथ गिरफ़्तार हुए और १६ महीने तक हिरासतमें रखे गए। इसके बाद उनपर मुक़दमा चला; पर जूरीने उन्हें छोड़ दिया।

सन् १८७८में मैलटेस्टाने इटली छोड़कर दूसरे देशोंमें भ्रमण करनेकी ठानी। उन्होंने अपने नगरको लौटकर सबसे पहला काम यह किया कि अपनी तमाम जायदाद—मकान इत्यादि—किरायेदारोंको दे डाली और खुद बिलकुल निर्धन हो गये! उस समय मैलटेस्टाके आचार्य बाकूनिनकी मृत्यु हो चुकी थी। अब उनके अराजकवादके सन्देशको देश-देशान्तरोंमें फैलाना उन्होंने अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया। इटली, स्पेन, फ्रान्स और इंग्लैण्ड जहाँ-जहाँ वे रहे हैं, जीवन-भर यही काम करते रहे हैं।

मैलटेस्टाके जीवनकी अन्य घटनाओंका वर्णन करनेसे पहले हम उनके व्यक्तित्वके विषयमें प्रिन्स क्रोपाटकिनकी सम्मति उद्धृत कर देना आवश्यक समझते हैं। प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने जीवन-चरितमें लिखा है—

"मैलटेस्टा जोश और जवानीसे परिपूर्ण हैं और उन्होंने कभी इस बातका ख़याल भी नहीं किया कि दिन-भर काम करनेके बाद रातको उन्हें कहीं रोटी भी खानेको मिलेगी या नहीं और वे सोवेंगे कहाँ? लन्दनमें उनके पास रहनेको कोई कमरा नहीं, जीविका-निर्वाहके लिए दिनभर वे

वहाँकी गलियोंमें शर्बत बेचते और रातके वक्त इटेलियन पत्रोंके लिए महत्वपूर्ण लेख लिखते ! आज फ्रांसमें वे क़ैद हैं, कल छूटते हैं और देश-निकालनेका उन्हें दंड दिया जाता है, फिर इटलीमें पकड़ लिये जाते हैं, एक द्वीपमें उन्हें नज़रबन्द किया जाता है, वहाँसे भाग निकलते हैं और दूसरे वेशमें फिर इटलीमें प्रवेश करते हैं, गरज यह कि जहाँ कहीं भी भीषण युद्ध हो, इटलीमें या कहीं और, आप मैलटेस्टाको वहीं उपस्थित पावेंगे। इस तरह उन्होंने लगातार तीस वर्ष बिताये हैं और जब कभी आप उनसे मिलें—चाहे वे किसी द्वीपसे भागकर आये हों या जेलसे छूटकर, उन्हें आप ज्यों-का-त्यों पावेंगे, फिर उसी उत्साहके साथ अपने संग्राममें जुटे हुए। उनके हृदयमें मानव-समाजके लिए वही उत्कट प्रेम है, अपने शत्रुओंको तथा जेल-भेजनेवालोंके प्रति भी वही विद्वेषका सर्वथा अभाव है, मित्रोंके लिए उनके चेहरेपर वही सहृदयतायुक्त मुस्कराहट है और बच्चोंके लिए वही प्रेमयुक्त पुचकार।"

सन् १८८३ में मैलटेस्टा इटलीमें फिर आये; लेकिन पकड़ लिये गए और तीन वर्षकी जेल कर दी गई। उनपर अपराध यह लगाया गया था कि वे 'जरायमपेशा गिरोह' के हैं ! उन दिनों गवर्मेन्ट अराजकवादियों-पर यही अपराध लगा-लगाकर जेलमें ठेल देती थी ! इनमें न तो लम्बे मुकदमेकी जरूरत पड़ती थी और न गवाहोंकी। सरकारी वकील कह देता था—"व्यक्तिगत रूपसे हमें इनके विरुद्ध कुछ नहीं कहना। वैसे ये लोग बिलकुल भलेमानस हैं, चरित्र भी इनका अच्छा है; पर हैं ये 'जरायमपेशा गिरोहके !" इस मुक़दमेकी अपील की गई और तबतक वे एक मकानमें नज़रबन्द कर दिये गए। पुलिस उनके विषयमें अत्यन्त सावधान थी; पर फिर भी वे भाग निकले ! एक सन्दूकमें वे बन्द किये गए और सीनेकी मशीनके बहाने अमेरिका जानेवाले एक जहाज़पर लाद दिये गए ! वे अर्जेन्टाइना पहुँचे। वहाँ रहकर उन्होंने सोनेकी खानके लिए ज़मीन लेकर खुदाई करानेका विचार किया, जिससे वे अराजकवादियोंके लिए

एक कोष स्थापित कर सकें। ज़मीन मिल तो गई; पर अर्जेन्टाइना-गवर्मेन्ट-को उनके इस विचारका पता लग गया और उसने मैलटेस्टा तथा उनके साथियोंकी ज़मीन छीन ली !

सन् १८८९ में मैलटेस्टा लन्दनमें वापस आ गये और सन् १८९७ तक वे वहीं रहे। इन दिनों उन्होंने बहुतसे पाम्फलेट निकाले। ये पुस्तिकाएँ इतनी लोकप्रिय हुई कि यूरोपकी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें इनके अनुवाद प्रकाशित हुए। मैलटेस्टाके जीवनके ये वर्ष उनके पूर्ण यौवनके थे और इन दिनों ही उन्होंने अपने अराजकवादी विचारोंके प्रचारके लिए बहुत कुछ कार्य किया। मैलटेस्टा बहुरूपियेकी कलामें पारंगत थे। बेलजियम, फ्रान्स, स्विट्ज़रलैण्ड और इटलीकी कितनी ही यात्राएँ उन्होंने इस बीच वेश बदलकर की थीं, क्योंकि इन देशोंमें उनका प्रवेश निषिद्ध था। उन दिनों इन देशोंमें कितनी ही हत्याएँ हुई थीं और कितने ही लोगोंका यह विश्वास था कि इन हत्याओंके जड़में मैलटेस्टाका हाथ है। चाहे इन हत्याओंमेंसे किसीकी पूर्व सूचना भले ही मैलटेस्टाको रही हो; पर उन्होंने किसीको हत्याके लिए उकसाया हो, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे व्यक्तिगत हत्याओंके सदा विरुद्ध ही रहे हैं। इन दिनोंमें मैलटेस्टाको बहुत काम करना पड़ा। उनका पहला काम तो था पूँजीपतियोंके विरुद्ध संग्राम, दूसरा था कार्ल-मार्क्सके अनुयायियोंका विरोध और तीसरा था स्वयं अपने दलवालोंको गृह-कलहसे बचाना। पर उन दिनों जवानीके जोशमें ये काम करना उनके लिए कुछ कठिन न था।

सन् १८९६ में दूसरा वेश धारण करके मैलटेस्टाने इटलीकी यात्रा की और अंकोना नामक स्थानसे उन्होंने एक पत्र प्रकाशित करना शुरू किया। उनके लेखोंका ज़बरदस्त प्रभाव पड़ने लगा। पुलिसवाले हैरान थे कि आख़िर वह कहाँ छिपा हुआ है। मैलटेस्टाके लेखोंका फैक्टरियोंके मज़दूरोंपर इतना अधिक असर पड़ा कि उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया,

आपसमें लड़ना बन्द कर दिया और वहाँ खून-खराबियां बन्द हो गईं ! पुलिस और कचहरीवाले हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते थे। पुलिसने बड़े ज़ोर-शोरके साथ मैलटेस्टाकी खोज करनी शुरू की और अंतमें उन्हें पकड़ ही लिया। उनपर मुक़दमा चला और छः महीनेकी क़ैद हो गई। सरकारी वकीलने बड़े भोलेपनके साथ कहा था—

"मैलटेस्टाकी वजहसे जुर्म ही बन्द हो गये हैं। इसमें मैलटेस्टाका बुरा उद्देश्य स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि इस तरह वह सरकारी कचहरियोंको ही बिलकुल निकम्मी बना देना चाहता है।"

जिन दिनों मैलटेस्टा छः महीनेकी क़ैद भुगत रहे थे, उन्हीं दिनों इटलीके दक्षिण भागमें विद्रोह हुआ। सरकारने बिना कुछ समझे-बूझे मैलटेस्टाको पाँच वर्षके लिए निर्वासनका दंड दे दिया और उन्हें भूमध्य सागरके लम्पेडूसा नामक निर्जन द्वीपमें रहनेके लिए भेज दिया। जैसा कि हमने इस लेखके प्रारम्भमें लिखा है, तूफानके समय, जबकि सन्तरी लोग बिलकुल निश्चित होकर घरके भीतर विश्राम कर रहे थे, मैलटेस्टा अपने तीन साथियोंके संग भाग निकले और उन्होंने अपनी नौका समुद्रमें डाल दी। खैरियत यह हुई कि उस समय एक जहाज़ वहाँसे कुछ दूरीपर जा रहा था। उसने इस नौकाके आदमियोंको बचा लिया और उन्हें माल्टामें ले जाकर उतारा। वहाँसे मैलटेस्टा लन्दनको भाग आये।

लन्दनमें कुछ महीने रहनेके बाद मैलटेस्टा संयुक्त-राज्य अमेरिकाको गये और वहाँसे उन्होंने इटेलियन भाषामें एक पत्र निकाला। उन दिनों अराजकवादियोंमें एक मतभेद उपस्थित हो गया था, वह यह कि अराजक-वादियोंको संस्था स्थापित करनी चाहिए या नहीं। इस विषयमें उनके विरोधी थे जी० सियानकै बिल्ला, जो संस्था स्थापित करनेके विपक्षमें थे। जब इन बिल्ला महाशयने देखा कि बहुमत मैलटेस्टाके पक्षमें होता जा रहा है तो उन्होंने आव न देखा ताव, तुरन्त अपनी पिस्तौल मैलटेस्टापर दाग़ दी और ख़ुद भाग गये ! बेचारे मैलटेस्टा पकड़े गये, क्योंकि घायल

होनेके कारण वे वहीं पड़े हुए थे। पुलिसने बहुत कोशिश की कि वे अपराधीका नाम बतलावें; पर मैलटेस्टाने नाम बतलानेसे इन्कार कर दिया! पुलिस उन्हें कुछ देरके लिए जहाँ-का-तहाँ पड़ा छोड़ गई, इस उम्मीदमें कि बिना मरहम-पट्टीके पड़े रहनेके भयसे ही वे अपने शत्रुका नाम बतला देंगे; पर उन्होंने तब भी नाम नहीं बतलाया। थोड़े दिनमें घाव भर जानेपर मैलटेस्टा भले-चंगे हो गये और कुछ दिनों बाद फिर लन्दन लौट आये।

सन् १९०० में मैलटेस्टा लन्दन आ पहुँचे और वहाँ उन्होंने एक छोटीसी दूकान लेकर मिस्त्रीका काम करना शुरू किया। जीविका-निर्वाहके बाद जो समय बचता था, उसे वे अपने विचारोंके प्रचारमें लगाते थे। सन् १९११-१२ में उन्हें लन्दनकी जेलकी हवा खानी पड़ी। बात यह हुई थी कि सन् १९११-१२ में इटलीने जब ट्रिपोली पर आक्रमण किया था तो इस विषयपर लन्दन-निवासी इटेलियन क्रान्तिकारियोंमें मतभेद हो गया—कोई आक्रमणके पक्षमें था तो कोई विपक्षमें। वाद-विवादमें मैलेटेस्टाने अपने विरोधीसे कह दिया—"तुम सरकारी जासूस हो।" उसने अदालतमें मानिहानिका दावा कर दिया। मैलटेस्टाको उस आदमीके विषयमें इटलीसे प्राइवेट तौरपर बहुत-सी बातोंका पता चल गया था और उन्हींके बल-बूतेपर उन्होंने उस आदमीको जासूस बतलाया था। मुक़दमा हुआ। ब्रिटिश न्यायालयोंके नियमानुसार अदालतमें मैलटेस्टाकी उन प्राइवेट बातोंको कहनेसे मना कर दिया गया। नतीजा यह हुआ कि उन्हें तीन महीनेकी जेल हो गई! न्यायाधीशने तो यहाँ तक लिख दिया था कि उन्हें देशसे निकाल बाहर किया जाय; पर प्रभावशाली मित्रोंके ज़ोर डालनेपर यह दंड उनको नहीं दिया गया।

जून सन् १९१४ में मैलटेस्टा फिर इटली चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने एक अराजकवादी पत्रका सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया।

थोड़े ही दिनोंमें उनके पत्रका कार्यालय क्रान्तिकारियोंका अड्डा बन गया। उन्हीं दिनों इटलीमें बड़ी ज़बरदस्त हड़ताल हुई। मैलटेस्टा और उनके साथियोंको आशा थी कि यह हड़ताल क्रान्तिकारी रूप धारण कर लेगी; पर मज़दूर-दलके नेताओंको बीचमें ही छोड़कर भागना पड़ा। सरकारने उन्हें पकड़नेके लिए बहुत कोशिश की; पर वे भाग निकले और लन्दनमें आ पहुँचे।

महायुद्धके दिनोंमें मैलटेस्टाको अपने साथियोंसे फिर प्रबल मतभेद प्रकट करना पड़ा। उस समय कितने ही अराजकवादियोंने जर्मनीके विरुद्ध लड़नेकी घोषणा की थी; पर मैलटेस्टाने अपनी राय इन लोगोंके खिलाफ़ ज़ाहिर की। युद्धके दिनोंमें मैलटेस्टाने इटली लौटनेके लिए बहुत प्रयत्न किया; पर वहाँकी सरकारने अनुमति नहीं दी। इटेलियन सरकारका कहना था—"इटलीके लिए मैलटेस्टा भयंकर रूपसे ख़तरनाक है, चाहे वह स्वतंत्र हो या जेलमें!"

युद्ध समाप्त होनेपर मैलटेस्टाने इटली वापस जानेके लिए फिर प्रयत्न किया; पर वहाँकी सरकारने फिर साफ़ इन्कार कर दिया। ब्रिटिश सरकारने भी यह आज्ञा निकाल दी कि कोई भी जहाज़ किसी ब्रिटिश बन्दरगाहसे मैलटेस्टाको न चढ़ावे। फ्रेंच सरकारने यह आज्ञा निकाली कि मैलटेस्टा फ्रान्समें होकर न जाने पावें। पर इन तीनों सरकारोंको चकमा देकर वे इटली पहुँच ही गये! एक इटेलियन जहाज़ जेनोवा जा रहा था। उसके कप्तानसे जोड़-तोड़ लगाकर वे उस जहाज़पर चढ़ गये और जेनोवामें उतरे।

इटलीकी साधारण जनताने मैलटेस्टाका दिल खोलकर स्वागत किया। उन दिनों मुसोलिनी एक पत्र निकालते थे। उस पत्रमें उन्होंने भी मैलटेस्टाका अभिनन्दन ही किया। मुसोलिनीने उस समय लिखा था— "यद्यपि मैलटेस्टासे हमारा मतभेद है, क्योंकि न तो हम किसी इलहाम (दैववाणी) में विश्वास करते हैं और न किसी स्वर्गमें; फिर भी हम किसी

भी ऐसे आदमीकी, जो निस्वार्थ भावसे अपने उद्देश्यमें निरन्तर लगा हुआ हो, प्रशंसा करना अपना कर्तव्य समझते हैं और इस दृष्टिसे हम मैलटेस्टाका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।"

मैलटेस्टाने फिर एक अराजकवादी पत्रका सम्पादन करना प्रारम्भ किया। उस समय उनका प्रभाव जनतापर बहुत काफ़ी था। उनकी पचास वर्षकी देश-सेवाके कारण उनके प्रति लोगोंके हृदयमें अत्यन्त श्रद्धा थी। यद्यपि वे कोई अच्छे व्याख्यानदाता नहीं हैं, फिर भी उनके भाषणों में हज़ारों आदमियोंकी भीड़ होती थी। कभी-कभी तो यहाँ तक हुआ कि सरकारी पुलिसके आदमी भी, जो उनकी मीटिंग देखनेके लिए भेजे गये थे, उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित हो गये और अपनी नौकरी खो बैठे!

इटलीमें एक बार फिर भयंकर हड़ताल हुई। उस समय मैलटेस्टाको यह आशा हुई कि क्रान्ति निकट ही है और पूँजीपतियोंके हाथसे इस समय शक्ति छीनी जा सकती है, पर यह आशा भी निराशामें परिणत हो गई, क्योंकि थोड़े दिनों बाद ही हड़तालियोंने कुछ थोथे वायदोंपर ही हड़ताल तोड़ दी। जब हड़ताल चल रही थी और जब कुछ मज़दूरोंने फैक्टरियों-पर कब्ज़ा कर लिया था, उस समय ६७ वर्षका यह युवक-क्रान्तिकारी बराबर मज़दूरोंके पास जा-जाकर उन्हें उत्साहित करता था। हड़तालके टूटनेपर सरकारने मैलटेस्टाको और उनके साथियोंको पकड़ लिया। छः महीने तक उनपर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया। इससे तंग आकर मैलटेस्टा और उनके अन्य साथियोंने भूख-हड़ताल कर दी। इस भूख-हड़तालका सरकारपर काफ़ी असर पड़ा रहा था कि इतनेमें कुछ नाममात्र-के अराजकवादियोंने अपनी बेवकूफ़ीसे सारा गुड़-गोबर कर दिया। २३ मार्च सन् १९२१ को उन्होंने एक थियेटरमें, एक बिजली घरमें और एक होटलमें, बम रख दिये, जिससे २१ निरपराध आदमियोंके प्राण चले गये और कितने ही अपाहिज बन गये। इस मूर्खतापूर्ण कार्रवाईका नतीजा यह हुआ कि मैलटेस्टा और उनके साथियोंको अपनी भूख-हड़ताल तोड़

देनी पड़ी, क्योंकि उस समय जनता इस पागलपनके सर्वथा विरुद्ध हो गई थी। मैलटेस्टाके लिए--भूख-हड़ताल तोड़ना तो ज़हरका कड़वा घूंट पीना था ही; पर उससे भी अधिक कठोर काम उन्हें दूसरा करना पड़ा। उन्होंने जनताके लिए एक बयान प्रकाशित किया, जिसमें इस आततायी कार्यकी घोर निन्दा की। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा कि जिन लोगोंने ये हत्याएँ की हैं, वे या तो पागल हैं, अथवा हमारे घोर शत्रुओंके उकसानेके कारण उन्होंने यह कारंवाई की है।

जैसा कि आगे चलकर साबित भी हुआ, इन हत्याकारियोंके दो मुख्य नेताओंमेंसे एक फौजी आदमी था, जो पागलपनकी वजहसे फ़ौजमेंसे निकाल दिया गया था और दूसरा एक कट्टर अराजकवादी था, जो घोर निराशाके कारण इस जघन्य कार्यमें शामिल हो गया था।

दस महीने हिरासतमें रखकर गवर्मेन्टने मुकदमा चलाया। उस मुकदमेमें मैलटेस्टाने जूरी लोगोंके सामने अपना भाषण देते हुए कहा था--"अब मैं अड़सठ वर्षका हो चुका। मेरा जीवन एक मामूली आदमीका क्षुद्र जीवन रहा है, पर इस तुच्छ जीवनमें अपनी परिमित शक्तियोंके अनुसार अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए मैंने भरसक प्रयत्न किया है। स्वाधीनता, न्याय और प्रेमके सिद्धान्तोंका मैं अपनी बाल्यावस्थासे ही प्रतिपादन करता रहा हूँ और अपनी मृत्यु-पर्यन्त करता रहूँगा। मेरे जीवनके दस-बारह वर्ष जेलमें बीते हैं। संग्राममें मुझे सफलता नहीं मिली, इसलिए सम्भवतः मेरे-जैसे आदमीके जीवनके लिए यही उपयुक्त होगा कि मैं अपने सिद्धान्तोंके लिए जेलमें ही प्राणत्याग करूँ और यह निरर्थक भी न होगा। मेरे सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए शायद यही सर्वोत्तम साधन हो कि मेरे जीवनके शेष वर्ष जेलके बाहर नहीं, बल्कि जेलके भीतर ही बीतें। बाहर रहकर शायद मैं इतना प्रचार कर भी न सकूँगा। लेकिन यदि मुझे केवल अपने उद्देश्य-पूर्तिकी ही चिन्ता होती तब तो मैं निर्दयतापूर्ण जेलके लिए ही उत्सुक होता, क्योंकि उससे मेरे सिद्धान्तोंका प्रचार होता। यद्यपि मैं

दृढ़ विश्वासका आदमी हूँ, पर मैं कोई वीर नहीं हूँ। जैसा कि रहस्यवादी लोग कहते हैं, आत्मा तो प्रबल है, पर शरीर अपनी कमज़ोरी प्रकट करता है। मुझे जीवित रहना पसन्द है। अनेक आदमियोंसे मैं प्रेम करता हूँ और बहुतसे आदमी मेरे प्रति भी हार्दिक स्नेह रखते हैं। इसलिए मेरी इच्छा यही है कि मैं छोड़ दिया जाऊँ। मैं अपने मित्रोंके बीचमें रहना चाहता हूँ; लेकिन यदि आप लोगोंका यही निर्णय हो कि मुझे जेलका दंड मिलना चाहिए तो इतनी मानसिक शक्ति मुझमें अभी है कि मैं गम्भीरतापूर्वक अपने दुर्भाग्यका सामना करूँ। चाहे मेरी मृत्यु जेलमें ही हो जाय; पर मैं गौरवमय मृत्यु चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि अपने आदर्शकी पवित्रताके भावोंके उज्ज्वल प्रकाशमें मेरा देहान्त हो। चाहे मेरा आदर्श भले ही कोरमकोर स्वप्न हो; पर है वह प्रेमका स्वप्न।"

न्यायाधीशने मैलटेस्टाको छोड़ दिया। सरकारी वकीलको सम्भवतः ऊपरसे आज्ञा मिल चुकी थी कि मामलेको आगे न चलाओ। सरकार जानती थी कि दस महीनेकी जेल तो मैलटेस्टा और उनके साथी भुगत ही चुके हैं। अगर ज़रूरत होगी तो इन्हें फिर पकड़ लेंगे।

जेलसे छूटकर मैलटेस्टाने फिर अपने अराजकवादी दैनिक पत्रका सम्पादन प्रारम्भ किया; पर मुसोलिनीके दलवालोंने उनके प्रेसको ही नष्ट-भ्रष्ट कर दिया! अक्टूबर १९२४ में उन्होंने फिर एक पाक्षिक पत्र निकाला, जिसमें अराजकतावादके सिद्धान्त-मात्र रहते थे; पर सन् १९२६ में सरकारने इस पत्रको भी बन्द कर दिया!

अराजकवादी लोग किसी प्रकारके शासनमें विश्वास नहीं करते, इसलिए वे रूसके बोल्शेविक शासनके भी विरुद्ध हैं। रूसी सरकारने सैकड़ों अराजकवादियोंको भयंकर समझकर जेलमें ठेल दिया है। जब लेनिनकी मृत्यु हुई, तो मैलटेस्टाने लिखा था—"Lenin is dead. Long live liberty."—"लेनिन मर गया, स्वाधीनता चिरजीवी हो।" जब मैलटेस्टाके साथियोंने कहा कि लेनिन जैसे महान

व्यक्तिकी मृत्युपर हर्ष प्रकट करना घोर अशिष्टता है तो मैलटेस्टाने उनके उत्तरमें कहा था—

"लेनिन एक ज़ालिम आदमी था और जब कोई ज़ालिम मरता है तो यह बिलकुल स्वाभाविक बात है कि वे लोग, जिनके मित्रों और घनिष्टतम बन्धुओंपर उसने जुल्म किया है, अथवा गोलीसे उड़वा दिया है, ख़ुशी मनावें। यह दूसरी बात है कि अपने जीवनके प्रारम्भमें वह ज़ालिम सच्चा क्रान्तिकारी रहा हो और इस कारण जनताके प्रेम तथा श्रद्धाका पात्र होनेपर भी मैं लेनिनकी ईमानदारी और सचाईपर अविश्वास नहीं करता; पर कोरमकोर सचाई तथा ईमानदारीके बल-बूतेपर कोई अपराधी इतिहासकी अदालतके सामने निरपराध कहकर बरी नहीं किया जा सकता!"

× × ×

आज ८० वर्षकी उम्रमें मैलटेस्टा मिस्त्रीका काम करते हुए अपनी जिन्दगी बसर कर रहे हैं। खुफिया पुलिस बराबर उनके पीछे रहती है। उनसे मिलनेवालोंपर मुसोलिनीकी सरकारकी कड़ी निगाह रहती है। वैसे डरके मारे उनसे मिलनेवाले भी मिलने नहीं जाते—कौन बैठे-बैठाये मुसोलिनीकी निरंकुश सरकार द्वारा निर्वासित होना चाहेगा?—और स्वयं मैलटेस्टा भी अपनी गलीके बाहर नहीं निकलते। हाँ, कभी-कभी पुलिसको चकमा देकर अपने अराजकवादी सिद्धान्तोंके पक्षमें एकाध पेम्फलेट ज़रूर छपा डालते हैं!

दुनिया सफलताकी पुजारी है, चाहे वह सफलता घोर-से-घोर अत्याचारों द्वारा प्राप्त हुई हो, मसलन वह मुसोलिनी-जैसे दम्भी नटोंके सामने दण्डवत् करनेको सदा उद्यत है; पर असफल आदमी उसके लिए सदा ही उपेक्षणीय और घृणाके पात्र होते हैं। लोग अपने सामनेकी चीज़ ही देखते हैं, दूरकी वस्तु देखनेके लिए जिस दूरदर्शिताकी आवश्यकता होती है, वह उनमें प्रायः नहीं पाई जाती। इसीलिए क्रोपाटकिन और

मैलटेस्टा-जैसे कार्यकर्ता जनतामें उचित सम्मान नहीं पाते। यद्यपि मैलटेस्टा असफल हुए; पर उनकी असफलता निरंकुश अत्याचारियोंकी सैकड़ों सफलताओंसे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मैलटेस्टाका जीवन त्याग और तपका जीवन है। उनके सिद्धान्तोंमें भले कोई विश्वास न करे; पर उनकी ६० वर्षकी कठोर साधनाके सम्मुख, 'स्वाधीनता, न्याय और प्रेम'के सिद्धान्तोंके लिए उन्होंने जो तप किया है, उसके सामने किसका मस्तक न झुकेगा? मार्क्सके अनुयायी साम्यवादी भले ही मैलटेस्टा-जैसे आदमियोंको स्वप्नदर्शी बतलाकर उनकी खिल्ली उड़ावें; पर कौन कह सकता है कि आजका स्वप्न कभी कार्यरूपमें परिणत न होगा?*

अप्रेल, १९४०]

---

*इस लेखकी सामग्री 'Rebels and Renegades' नामक अंगरेजी पुस्तकसे ली गई है। —लेखक

: ४ :

लुई माइकेल

"ऐसा मालूम होता है कि स्वाधीनताके लिए तड़पनेवाले हृदयोंको केवल एक ही अधिकार मिलता है, यानी गोलीकी शक्लमें शीशेका टुकड़ा ! यदि यह बात सच है तो मैं अपने अधिकार चाहती हूँ। अगर तुम मुझे ज़िन्दा छोड़ दोगे तो मैं जनताके सामने चिल्ला-चिल्लाकर इस बातकी घोषणा करती रहूँगी कि तुम लोगोंसे जरूर बदला लिया जाय, हाँ, तुमसे, जिन्होंने हमारे भाइयोंका ख़ून किया है . . . अगर तुम कायर नहीं हो तो मुझे मृत्यु-दण्ड दो।"

जब गम्भीर वाणीमें अराजकवादी फरांसीसी महिला लुई माइकेलने, जिसपर सरकारके विरुद्ध क्रान्तिमें शामिल होनेका अभियोग चल रहा था, जजोंके सामने यह ललकार और फटकार दी तो सारी कचहरीमें सन्नाटा छा गया। न्यायाधीश बगलें झाँकने लगे। लुई माइकेलने कहा—"इस मुक़द्दमेमें अपने पक्षमें मैं कुछ भी नही कहना चाहती और न मैं यह ही चाहती हूँ कि मेरी ओरसे कोई पैरवी करे। मैं पूर्णतया क्रान्तिके पक्षमें हूँ और जो-कुछ भी मैंने किया है, उसकी पूरी-पूरी ज़िम्मेवरी अपने ऊपर लेती हूँ। अपने उत्तरदायित्वको मैं बिना किसी लगालेसीके मंजूर करती हूँ।"

जज लोग सचमुच नामर्द निकले और जनताके आन्दोलनके डरके मारे उन्होंने इस वीर महिलाको मृत्युदण्ड न देकर केवल देश-निकाले तथा लम्बे कारावासकी सज़ा दे दी। न्यू केलेडोनिया, जहाँ फ्रांसके निर्वासित क़ैदी रखे जाते थे, वास्तवमें नरकके समान थी। जब लुई माइकेलसे पूछा गया, "आप अपील करेंगी ?" उसने कहा, "हर्गिज़

नहीं; पर इस निर्वासनकी बनिस्बत तो मुझे मौतकी सज़ा ज़्यादा पसन्द आती। मुझे इस बातका बड़ा दुःख है कि औरत होनेके कारण मेरी जान बख़्श दी गई है।"

लुई माइकेलको न्यू केलेडोनियामें आठ वर्ष तक किन-किन घोर यातनाओंको सहन करना पड़ा, उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता। संसारके इतिहासमें अनेक क्रान्तिकारिणी महिलाएँ हुई हैं; पर लेखिनी, वाणी और बन्दूक़ तीनों शस्त्रोंका बख़ूबी प्रयोग करनेवाली लुई माइकेल-जैसी वीर क्षत्राणी कम ही हुई होंगी। ऐसे अवसरपर जबकि हमारे देशकी अनेक महिलाएँ देश-सेवाकी दीक्षा ले चुकी हैं और वे आगे बढ़कर स्वाधीनता-संग्राममें भाग ले रही हैं, लुई माइकेलका जीवन-चरित उनके लिए एक ख़ास महत्त्व रखता है।

लुई माइकेलका जन्म २९ मई, सन् १८३० को ब्रानकोर्ट नामक ग्राममें हुआ था। उसकी माँ किसान-घरानेकी थी और एक उच्च फ़रांसीसी वकीलकी कोठीपर नौकरानीका काम करती थी। वकील साहबके सपूतका सम्बन्ध उस दासीसे हो गया और इस प्रकार लुई माइकेलका जन्म हुआ। पिताजी तो इस जारज सन्तानको छोड़कर खेती-बारी करनेके लिए अन्यत्र चले गए और बाबाने, जिनका नाम ऐटिनी चार्ली डेहमिस था, इस प्रतिभाशाली पौत्रीका लालन-पालन किया। बूढ़े वकील साहब बुद्धिवादी, मानव-समाजके सहृदय प्रेमी और मानवाधिकारोंमें दृढ़ विश्वास रखनेवाले थे। उन्होंने लुई माइकेलके पालन-पोषणमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं किया।

पितामह डेहमिस साहबको यह जाननेमें देर न लगी कि उनकी पौत्री एक असाधारण बालिका है। जब वह छः-सात वर्षकी ही थी तभीसे कविता करनेका उसे शौक़ हो गया था और १० वर्षकी उम्रमें उसकी आकांक्षा 'विश्वका इतिहास' लिखनेकी हुई थी! उस इतिहासका नाम उस महत्त्वाकांक्षी बालिकाने रखा था—Un Historie Universelle.

ज्य पितामहने सन् १७८९की फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिमें भाग लिया था और उसकी कहानियाँ वे अपनी पोतीको सुनाया करते थे। इन कहानियोंको सुनकर लुई चकित रह जाती थी और स्वयं उसके मस्तिष्कमें क्रान्तिकी भावना जागृत हो जाती थी। वह अपनी सखी-सहेलियोंके साथ क्रान्तिके ही खेल खेला करती थी। अक्सर वे घरके बाहरी चौकमें लकड़ियोंका ढेर इकट्ठा करतीं और उसपर बैठकर यह कल्पना करतीं कि अपने क्रान्तिकारी उद्देश्यके लिए हम जीती-जागती चितापर जलाई जा रही हैं! जिस समय इस कल्पित आगकी कल्पित लपटें ऊपर उठतीं, उस समय लुई अपनी सहेलियोंके साथ क्रान्तिकारी गाने गाती! लुई लिखती है—

"एक दिन ऐसा हुआ कि जब हम कल्पित फाँसीके तख़्तेपर गा-गाकर चढ़ ही रही थीं कि मेरे पितामह आ पहुँचे। उन्होंने कहा—'देखो बेटियो, फाँसीके तख़्तेपर बिलकुल चुपचाप शान्तिपूर्वक और गम्भीरताके साथ चढ़ना चाहिए।' हमने वैसा ही किया और जब हम उन लकड़ियोंके ढेरपर खड़ी हो गईं तब पितामहने फिर कहा—'अब एक बार तुम इस तख़्तेसे उन उद्देश्योंकी घोषणा करो, जिनके लिए तुम्हें फाँसी हो रही है।' इसके बाद जब कभी हमने फाँसीका खेल खेला तब पूज्य पितामहके आज्ञानुसार अपने उद्देश्योंकी घोषणा अवश्य की।"

बाल्यावस्थाके इन संस्कारोंने लुईके रोम-रोममें घर कर लिया और उन्हींके कारण आगे चलकर लुई बड़ी मर्दानगीके साथ युद्ध-क्षेत्रमें लड़ी। अपने ४१वें वर्षमें १८ मार्च सन् १८७१के दिन उसने जो-कुछ किया, उसका वृतान्त उसीके शब्दोंमें सुन लीजिए—

"उषःकाल था, झुटपुटेका वक़्त। ख़तरेका बिगुल बजा। बर्छी-भाले लेकर हम सब तैयार हो गये। अब समरमें जूझनेका वक़्त आ पहुँचा था। स्वाधीनताकी वेदीपर अपनेको बलिदान करनेके लिए हम सब उद्यत थे। उत्साह और उमंगका ठिकाना न था। हमारे पैर

ज़मीनपर लगते ही न थे।....इतनेमें देखती क्या हूँ कि मेरी पूज्य माताजी मेरी बग़लमें आकर खड़ी हैं! उनके लिए मेरे हृदयमें अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हो गई। माताजीको मेरी बड़ी फ़िक्र थी और वे तलाश करती-करती यहाँ फ़ौजी डेरे तक आ पहुँची थीं! ज्योंही सरकारी फौजके जनरलने हुक्म दिया—'गद्दारोंपर गोली चलाओ,' त्योंही गवर्नमेंटी सेनाके ही एक अफ़सरने सिपाहियोंको भड़काते हुए कहा—"सिपाहियो, विद्रोहका झंडा ऊँचा कर दो, क्रान्तिका आरम्भ हो गया था।"

सरकार तथा जनताके इस घोर युद्धमें लुईने सक्रिय भाग लिया। वह पूर्णतया शान्त थी। इस युद्धका वर्णन करते हुए उसने लिखा है—

"जब कोई मनुष्य पहले-पहल अपने उद्देश्यके लिए शस्त्र हाथमें लेकर लड़ने लगता है तब युद्धका वास्तविक रूप इस तेज़ीके साथ उसकी आँखोंके सामने आ जाता है कि वह स्वयं मानों बन्दूक़से निकली हुई गोली बन जाता है।"

इन दिनोंमें लुईको कई रात तक सोना नसीब न हुआ। जहाँ जिसको जगह मिल जाती, वहीं वह पड़ रहता। स्वाधीनताके उपासकोंने उसकी बलिवेदीपर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था।

यद्यपि विद्रोहियोंकी पराजय हुई और सरकारी फ़ौजने निष्ठुरता-पूर्वक २५ हज़ार पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चोंको तलवारके घाट उतार दिया, तथापि लुई निर्भयतापूर्वक अन्त तक डटी रही। अगर वह चाहती, तो युद्ध-क्षेत्रसे हटकर अपनी रक्षा कर सकती थी; पर लुईके दिलमें इस बातकी कल्पना ही नहीं आई थी। माण्टमार्टी तथा चौसीके मोर्चोंपर, जो सबसे अन्तिम थे, लुई बराबर विद्रोही भाइयोंके साथ थी।

एक गलीके भयंकर घमासान युद्धमें उसे धक्का लगा और वह ज़मीनपर गिर पड़ी; पर हिम्मत करके वह उठ बैठी और उसकी जान बाल-बाल बच गई। अब भी वह भाग सकती थी; पर वह जानती थी कि मेरे लापता हो जानेसे सरकार मेरी निरपराध माताको क़ैद कर लेगी और उस बुढ़िया-

को व्यर्थ ही कष्ट देगी। उसका अनुमान ग़लत न निकला। सरकारने ऐसा ही किया और माताके प्रेममें विह्वल लुईने उसे कष्टोंसे बचानेके लिए आत्म-समर्पण कर दिया! माँ छोड़ दी गई। लुईपर मुक़द्दमा चलाया गया और उसीके परिणामस्वरूप उसे निर्वासनका दण्ड मिला। इस लेखके प्रारम्भमें लुईके वे अमर शब्द उद्धृत किये गए हैं, जो मुकद्दमेके अन्तमें लुईने कहे थे। इसी अभियोगके कारण लुईको आठ वर्ष तक न्यू केलेडोनियाके कारावासमें नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ी थीं।

बालिका लुईकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वह अपने बाबासे सवाल-पर-सवाल करती जाती थी और वे भी बड़े धैर्यके साथ उनका उत्तर देते रहते थे। कितने ही ग्रन्थोंको बाबा अपनी पोतीके साथ-साथ पढ़ते थे। कठिन शब्दों तथा वाक्योंका अर्थ उसे बताते जाते थे। बाबाने उसे गान-विद्याका भी अभ्यास कराया था और जिस दिन लुई एक पुरानी लकड़ीपर किसी टूटे हुए सितारके तार लगाकर सारंगी बना लाई थी, उस दिन बाबाको हार्दिक हर्ष हुआ था। बाल्यावस्थासे ही उसे राजनैतिक विषयोंसे प्रेम हो गया था, वह सुप्रसिद्ध फरांसीसी लेखक विक्टर ह्यूगोकी भक्त बन गई और अपनी कविताएँ संशोधनार्थ उन्हींके पास भेज दिया करती थी। ह्यूगोने उसे कविता लिखते रहनेके लिए प्रोत्साहित किया था। लुईका घरपर बैठे-बैठे मन नहीं लगता था और वह आसपासके ग्रामोंकी ओर टहलती हुई दूर तक निकल जाती थी। बालिका लुईके हृदयमें देश-विदेश घूमनेकी भी प्रबल लालसा थी—ख़ास तौरपर समुद्र-यात्राके लिए वह लालयित रहती थी। विधिकी विडम्बना देखिये, पहली बार उसे समुद्र-यात्राका अवसर मिला अपने ४१वें वर्षमें और वह तब, जब उसे देशनिकालेका दण्ड दिया गया था और वह न्यू केलेडोनियाके कालेपानीको भेज दी गई थी!

जब लुई १६-१७ वर्षकी थी, उसके पिता लारेण्ट डेहमिस अपने ग्राम-को लौट आये और साथमें अपनी उच्च घरानेकी पत्नीको भी लेते आए। इन सौतेली माँने आते ही लुईको उसके जन्मका क़िस्सा बतलाना शुरू कर दिया, जिसका भावार्थ स्पष्ट शब्दोंमें यह था––"तू दासी-पुत्री है, जारज सन्तान है, होशमें रह, अपनी माताके नीच कुलकी याद मत भूल !" यही नहीं, इन देवीजीने लुईकी माताको नौकरोंकी कोठरियोंमें जाकर रहनेका भी आदेश दे दिया ! नतीजा यह हुआ कि लुई अपनी मातासे और भी अधिक प्रेम करने लगी। लुईका मातृ-प्रेम उसकी जीवनीका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। युद्ध-क्षेत्रमें, कालेपानीमें या जेलमें––जहाँ कहीं भी लुईको रहना पड़ा, सबसे अधिक उसे अपनी पूज्य माताकी ही चिन्ता रही।

जब लुईके पिता लारेण्टने देखा कि स्वाभिमानिनी लुई उनकी बदमिज़ाज पत्नीके व्यंग्योंको सहन नहीं कर सकती तो उन्होंने लुईको चौमण्ट नामक स्थानपर अध्यापिकाका काम सीखनेके लिए भेज दिया। वहाँपर उसने सब परीक्षाएँ बड़ी योग्यतापूर्वक पास कर लीं और अपने ग्रामके निकट ही एक स्कूलमें मास्टरनीका काम स्वीकार कर लिया, जिससे वह अपनी माताकी देखभाल कर सके। उन दिनों वह समाचारपत्रोंमें लेख इत्यादि लिखा करती थी। एक बार तो वह अपने लेखके कारण पुलिसके पंजेमें आते-आते बच गई !

यद्यपि पेरिसमें लुईको अध्यापिका-कक्षामें पढ़ने, प्राइवेट ट्यूशन करने, राजनैतिक प्रश्नोंको सिद्धान्त तथा व्यवहारकी दृष्टिसे अध्ययन करने, क्रान्तिकारी क्लबोंमें जाने तथा वैज्ञानिक ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे इतना अवकाश नहीं मिल पाता था कि वह विधिवत् ग्रन्थ-रचनाका काम कर सकती, तथापि अपने असाधारण परिश्रमसे उसने अनेक उपन्यास लिख डाले और कितनी ही कविताएँ भी लिख लीं। वह 'कला कलाके लिए' इस सिद्धान्तकी घोर विरोधी थी। उसका कहना था कि

गल्पों तथा उपन्यासोंका भी ध्येय क्रान्तिकारी होना चाहिए। उसने लिखा था—"Every artist must have a social mission, and every work of art must reflect political action." अर्थात्—'प्रत्येक कलाकारके जीवनका उद्देश्य कोई सामाजिक उद्धार होना चाहिए और प्रत्येक कलापूर्ण रचनाके विचार-सम्बन्धी धरातलपर राजनैतिक कार्यका प्रतिबिम्ब पड़ना चाहिए।' लुई बड़ी जोशीली वक्ता भी थी। उसके व्याख्यानोंको सुननेके लिए सहस्रोंकी भीड़ इकट्ठी हो जाती थी। इस प्रकार क्या लेखिनीसे, क्या वाणीसे और क्या बर्छी और बन्दूक़से, लुई अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए युद्ध करनेको सदैव उद्यत रहती थी।

× × ×

"डाक्टर साहब! बरायमहरबानी आप इस बातको याद रखिये कि मैं कोई औरत नहीं, बल्कि योद्धा हूँ।" ये शब्द लुई माइकेलने अपने सर्जनसे कहे थे, जो उनके घावकी मरहम-पट्टी करने आया था। बात यह हुई थी कि किसी पगले आदमीने साम्यवादियोंकी मीटिंगमें उसपर तमंचा दाग़ दिया था, जिससे कानके पास उसके ज़बरदस्त घाव हो गया था।

लुई शकलमें मर्दानी थी। छरहरे बदनकी, और जिस समय वह तनकर खड़ी होती थी, ऐसा प्रतीत होता था कि कोई पुरुष योद्धा खड़ा हुआ है! वह सदा काले रंगके कपड़े पहना करती थी। चलते समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानों गम्भीरता तथा विद्रोहकी कोई मूर्ति चली जा रही हो। दरअसल उसमें पौरुष था। इस प्रसंगमें एक घटनाका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। एक रातकी बात है। पेरिसकी गलीमें लुई चली जा रही थी कि किसी मनचले गुण्डेको उससे छेड़छाड़ करनेकी सूझी। वह पीछे हो लिया। ज्योंही लुईने देखा कि कोई धूर्त मेरा पीछा कर रहा है, वह मुड़ी और उसने मर्दानी आवाज़में उसे ऐसी

गालियाँ सुनाईं कि हज़रतके होश फ़ाख़्ता हो गए और यह समझकर कि यह तो कोई मर्द ज़नानी पोशाकमें चला जा रहा है, वे उल्टे पाँव वहाँसे भाग गये ! ७०वें वर्षमें लुईका जो चित्र खींचा गया था, उसे देखकर यही प्रतीत होता है कि यह किसी पुरुष योद्धाकी तसवीर है ।

लुई स्वभावतः कवियित्री थी । उसके हृदयमें सौन्दर्यके प्रति उत्कट प्रेम था और शायद उसके कवित्वका ही यह परिणाम था कि उसका हृदय वज्रसे भी कठोर होनेके साथ-साथ मक्खनसे भी अधिक कोमल था । इसका एक दृष्टान्त सुन लीजिए । जब विद्रोहके दिनोंमें चारों ओर भयंकर गोलाबारी हो रही थी, किसी गलीमें बिल्लीका एक बच्चा जाता हुआ दीख पड़ा । लुई उस वक़्त एक सुरक्षित स्थानमें छिपी हुई थी । वह बिना इस बातका ख़याल किए कि सड़कपर जानेसे उसके गोली लग सकती है, अपनी जगहसे निकल पड़ी और उस बिल्लीके बच्चेको उठा लाई ! उसके साथी-संगियोंने इस पागलपनके लिए उसे बहुत फटकारा; पर लुई अपनी आदतसे लाचार थी । अत्याचार-पीड़ितोंके प्रति उसके हृदयमें एक स्वाभाविक आकर्षण था । जब वह पशुओंपर हृदयहीन पुरुषोंका ज़ुल्म देखती तो उसका विद्रोही मन खौलने लगता । वह कहती थी, "क्या ही अच्छा हो, यदि जानवरोंमें अत्याचारी मनुष्योंसे बदला लेनेकी शक्ति आ जाय ! कुत्ता उस बेरहम आदमीको, जो उसे निर्दयतयापूर्वक पीटता है, भकभकाकर काट खाये और घोड़ा उस जंगली नर-पशुको, जो उसपर सवार होकर कोड़े चला रहा है, उलटकर दबोच दे !"

अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें जब लुई कुछ दिनोंके लिए इंग्लैण्डमें आकर रही थी तब उस बुढ़ियाके घरपर मरघिल्ले पिल्ले और बिल्लियाँ और चिड़ियाँ भी पाई जाती थीं ! लुईका मातृवत् कोमल हृदय किसी प्राणीके कष्टको सहन नहीं कर सकता था । दूसरी ओर समाजके शत्रुओंके प्रति वह कठोर-से-कठोर बर्ताव कर सकती थी ।

बात दरअसल यह थी कि लुईमें देवत्व और दानवत्व दोनों प्रबल मात्रामें पाये जाते थे। वह देवी भी थी, दानवी भी। लुईकी हिंसात्मक वृत्तिको हम अपने देशकी वर्तमान परिस्थितिमें अनुकरणीय नहीं समझते, क्योंकि उससे लाभ कम होगा, हानि बहुत ज़्यादा; पर उसके हृदयकी ज्वालाके हम क़ायल हैं। जब लुईसे किसीने पूछा, आप किस पार्टीकी हैं तो उसने उत्तर दिया—

"किस पार्टीकी? हम सब एक ही शत्रुसे लड़ रहे हैं, हमारे दुश्मन एक ही है, मैं तो इतना ही जानती हूँ। पार्टी-भेदोंकी मुझे कोई पर्वाह नहीं, क्योंकि मै तो उन सभी दलोंके साथ हूँ, जो भिन्न-भिन्न अस्त्रोंसे समाजके वर्तमान भवनको ढानेके प्रयत्नमें लगे हुए हैं, चाहे उनके हथियार फावड़े हों, बम हों या आग।"

यहाँ लुईका दानवी रूप ही बोल रहा है। 'बम और आग' कम-से-कम हमारे देशके लिए तो हानिकारक ही साबित होंगे।

वस्तुतः सामाजिक विषमताने लुईके मस्तिष्ककी तराजूको उलट दिया था। विवेकका स्थान क्रोधने ले लिया था और इस क्रोधने ही उसे चण्डीका रूप दे दिया था।

२६ वर्षकी उम्रमें (सन् १८५६में) उसे पेरिसकी एक कन्या पाठशालामें नौकरी मिल गई। वहाँ उसे जो वेतन मिलता था, वह बहुत ही कम था। यद्यपि उसके बाबाने मरते समय उसके लिए घरपर कुछ रुपया इसलिए छोड़ दिया था कि जब लुई ग्राममें आकर विवाह करे तब उसे वह दिया जाय; पर लुई तो क्रान्तिकारी आदर्शोंसे विवाह कर चुकी थी। जो कुछ वह अपने प्रबल परिश्रमसे कमा लेती, उसीसे अपनी तथा अपनी माँकी गुज़र करती थी।

पेरिसके जीवनने अध्यापिका लुईके हृदयमें विचारोंका संघर्ष उपस्थित कर दिया था। एक ओर लखपतियों-करोड़पतियोंके आलीशान महल थे तो दूसरी ओर ग़रीबोंकी झोपड़ियाँ। अमीरोंके घरोंमें चरित्रहीनताका

साम्राज्य था। उनके जीवनका आदर्श था 'खाओ पीओ, मौज करो। सट्टेबाज़ीका बोलबाला था। सेठ-साहूकार समाजके नेता बन बैठे थे। ग़रज़ यह कि पूंजीवाद अपना विकसित और विकराल रूप दिखला रहा था। पहले तो यह दृश्य देखकर लुईके मनमें बड़ी झुँझलाहट आई। फिर उसने इस सामाजिक विषमताका विश्लेषण शुरू कर दिया। उन दिनों पेरिसमें ऐसी भावुक औरतें बहुत-सी पाई जाती थीं, जो 'क्रान्ति-क्रान्ति' चिल्लाती तो थीं; पर जिनके दिमाग़में कोमलताके साथ-साथ उलझे हुए विचारोंका कूड़ा-करकट काफ़ी मात्रामें मौजूद था। लुई ऐसी महिलाओंके सम्पर्कसे अपनेको दूर ही रखना चाहती थी। उसने रसायन शास्त्र तथा भौतिक विज्ञानका अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों लुई प्रायः रिपब्लिकन क्लबोंमें भी जाया करती थी। जब कार्ल मार्क्सने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघकी स्थापना की थी तो इस समाचारसे लुईको अत्यन्त हर्ष हुआ था। इन तमाम कार्योंमें व्यस्त रहनेपर भी लुईने साहित्य-सेवाको भुलाया नहीं था और उन्हीं दिनोंमें, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, उसने अनेक कविताएँ तथा उपन्यास रचे थे।

पर बीच-बीचमें उसे अपने साहित्यिक कार्योंको ताक़में रख देना पड़ता था। एक बार जब पेरिसके प्रजातन्त्रवादियोंने होटल डी विले (Hotel de ville)पर चढ़ाई करनेकी ठानी थी तो लुई भी कहींसे पैदल सवारोंकी पोशाक माँग लाई थी और भीड़के साथ बराबर निश्चित स्थान तक गई थी। लुई एक पुराना रिवाल्वर अपने पास रखती थी और कई बार उसने इस तमंचेकी धमकीसे पुलिसवालोंको अपने कमरेमें आनेसे रोका था! जब पेरिस दो महीनेके लिए क्रान्तिकारी संघ (Commune) के शासनके अधीन रहा था तब लुई उसके प्रधान कार्यकर्ताओंमें थी और निरन्तर सिपाहीकी हैसियतसे मुस्तैदीके साथ काम करती रही। संघके पराजय और क्रान्तिकी विफलताके बाद उसे देशनिकालेका जो दण्ड मिला, उसका ज़िक्र हम प्रारम्भमें ही कर चुके हैं।

न्यू केलेडोनियाकी जेलमें लुईको देशनिकालेके आठ वर्ष बिताने पड़े। वहाँ रहते हुए वह शासनमात्रसे घृणा करने लगी और उसके हृदयमें माइकेल बाकूनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिनके अराजकवादके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई। आठ वर्ष बाद जब उसे फिर स्वाधीनता मिली, तो उसने फिर क्रान्तिकारी कार्य शुरू कर दिया। फ्रांस-भरमें घूम-घूमकर मीटिंग करना और मज़दूरोंका संगठन करना उसका काम था। उसमें ग़ज़बकी भाषणशक्ति थी। क्या मजाल कि कोई उसे व्याख्यानके बीचमें टोक दे! टोकनेवाला करारा जवाब पाकर चुप हो जाता था। उसके मारे फ्रेंच सरकारके अधिकारियोंकी नाकों दम था। जो मनुष्य अपनी जानको हथेलीपर लिए घूमता हो, उससे सरकारोंका डरना स्वाभाविक ही है। सन् १८८२में एक क्रान्तिकारीकी वर्षगाँठके उत्सवमें भाग लेनेके कारण उसे दो महीने जेलमें रहना पड़ा। सन् १८८३में पेरिसमें जब भूखे लोगोंकी भीड़ बाज़ारमें मार्च करती हुई निकली तो लुई माइकेल उनके साथ थी। इस भीड़ने रोटियोंकी कितनी ही दूकानें लूट ली थीं। फिर क्या था, पुलिसने लुईको पकड़कर उसपर अभियोग चला दिया और छः वर्षकी जेल कर दी! मुक़द्दमेके दौरानमें लुईने कहा—

"यद्यपि दूकानोंको लूटनेकी प्रेरणा भीड़को ख़ुफ़िया पुलिसके आदमियोंने दी थी, फिर भी मेरी समझमें भूखे आदमियोंका यह हक़ है कि वे जहाँ रोटी मिले, वहाँसे ले लें!" जजोंने अन्यायपूर्वक लुईको कठोरतम दण्ड दिया। इन ६ वर्षोंमें उसने जेलमें निरक्षरोंको पढ़ाया और जेलियोंके लिए कपड़े भी सिये। उसकी कठोर उँगलियाँ जितनी ख़ूबीके साथ बन्दूक़ पकड़ सकती थीं, उतनी ही योग्यतापूर्वक कपड़े भी सी सकती थीं!

इसी बीचमें सन् १८८५में लुईकी माताका स्वर्गवास हो गया। यह उसके जीवनकी सबसे बड़ी दुर्घटना थी। लुईने लिखा था—"अब मेरे घरेलू जीवनका ख़ातमा ही हो गया। क्रान्तिके सिवाय दुनियामें

और कोई चीज़ नहीं, जिसके लिए मैं ज़िन्दा रहूँ। मेरा भविष्य भी समाप्त हो चुका और अब भूतकालकी बातोंको याद करके मैं जीवित नहीं रहना चाहती।"

जेलख़ानेके गवर्नरने रहम खाकर १४ जुलाई सन् १८८५को, जब दूसरे क़ैदियोंको सरकारकी ओरसे मुक्ति मिली थी लुई माइकेलको भी छोड़ना चाहा; पर लुईने छूटनेसे इन्कार कर दिया। जब मुक्तिका समाचार लेकर जेलख़ानेका आदमी उसके पास पहुँचा तो उसने कहा—"उन आदमियोंसे, जो इस समय मेरे देशका शासन कर रहे हैं, मैं कोई रियायत नहीं चाहती।"

जेलके गवर्नर साहबका ख़याल था कि अब लुई ५५ वर्षकी बुढ़िया हो चुकी है और माँकी मृत्युसे यह इतनी निराश और निरन्तर जेल-निवास-से इतनी निर्बल हो गई है कि सरकारको भविष्यमें इससे कुछ ख़तरा नहीं हो सकता; पर गवर्नर साहब भ्रममें थे। लुईके हृदयमें अब भी वही आग सुलग रही थी। उसने लिखा था—

"मैं यह नहीं चाहती कि मेरी पूज्य माताके मुर्दे शरीरपर रहम खाकर अधिकारी लोग मुझे क्षमा करें। यह दयाकी भीख मुझे स्वीकार नहीं।"

उसके चार वर्ष बाद सन् १८८९में जब लुई अपनी अवधि समाप्त करके छूटी तो फिर उसने तुरन्त कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। जेलसे छूटते ही वह साम्यवादियों और अराजकवादियोंकी मीटिंगको चल दी। दो हज़ार आदमियोंकी भीड़ थी। वहाँ किसी आदमीने, जो ख़ूब शराब पिये हुए था, उसपर गोली दाग़ दी, जो उसके कानको भयंकर रूपसे घायल करती हुई सन्से निकल गई। लुई जानती थी कि इसमें उस बेचारेका दोष न था, क्योंकि वह तो किसी दूसरेका उकसाया हुआ था! लुईने उस आदमीके पक्षमें पैरवी की और उसकी दुःखित पत्नीकी सहायता भी की! जजोंसे उसने यही निवेदन किया कि मुझपर आक्रमण

करनेवाला यह आदमी निर्बलताका अपराधी है, दुष्टताका नहीं। उसी वक्त अपने सर्जनसे लुईने कहा था—"डाक्टर साहब, इस बातको न भूलिये कि मै तो योद्धा हूँ, कोई औरत नहीं; और कृपाकर जजोंसे कह दीजिए, मुझे कोई गहरी चोट नहीं लगी, थोड़ी-सी खुरसट ही आ गई है!"

इसके दूसरे वर्ष ही, यानी सन् १८९०में, जब वह ६० वर्षकी थी, लुईने वाइन ज़िलेके हड़तालियोंका साथ दिया और फ़ैक्टरियोंपर आक्रमण करते हुए वह उनके साथ-साथ रही। जहाँ कहीं मज़दूर-आन्दोलन प्रबल होता, लुई मर्दोंके साथ नेतृत्व करती हुई मौजूद रहती। वह लाइन्समें फिर पकड़ ली गई। यहाँपर हवालातमें उसके साथ घोर अन्याय किया गया। जेलके अधिकारियोंने षड़यंत्र करके एक सिपाहीकी मार्फ़त उस साठ वर्षकी बुढ़ियाको तेज़ शराब पिला दी। सिपाहीने मुक़द्दमा पेश होनेके पहले उसकी कोठरीपर आकर बड़े भोले-भाले चहरेसे कहा था—"इस गिलासमें बहुत हल्की-सी शराब है और बस पानी-ही-पानी है। इससे तुम्हारी थकावट दूर हो जायगी।" लुईने विश्वास करके उसे पी लिया। नतीजा यह हुआ कि मुक़द्दमेके लिए कचहरीमें आते हुए उसके पैर लड़खड़ाने लगे और मुँहसे आँय-बाँय शब्द निकलने लगे! जजोंको मौक़ा मिल गया। वे बोले—"इस बेहूदी ग़ैर-ज़िम्मेवार औरतको कचहरीसे बाहर निकाल दो।" लुईको पता भी न था कि आख़िर मामला क्या है। होश आनेपर भेद खुला। उसी समय इस षड़यंत्रका भी भंडा-फोड़ हुआ कि सरकार उसे डाक्टरसे पागल क़रार दिलाकर पागलखाने भिजवानेकी सोच रही थी!

उस समय लुईने अल्पकालके लिए हथियार रख दिये और फ्रांस छोड़-कर इंग्लैण्ड जानेका निश्चय कर लिया। इंग्लैण्डमें वह फेबियन सोसाइटी तथा अराजकवादियोंकी मीटिंगमें बराबर आया-जाया करती थी।

सन् १८९६ में फिर लुई स्वदेशको लौटी और ९ वर्ष तक फिर अपने

प्रिय क्रान्तिकारी कार्य करती रही। बड़े-बड़े जवान कार्यकर्ता ६५–६६ वर्षकी उस बुढ़ियाकी शक्तिको देखकर दंग रह जाते थे। थकना तो वह जानती ही न थी। अन्तिम दिन तक वह कार्य करती रही। जिस दिन वह बीमार पड़ी, उसके पहले दिन वह रूसी 'क्रान्ति' पर भाषण दे चुकी थी। ८ या ९ जनवरीको उसने अपने एक सहयोगी बन्धुसे कहा था–– "रूसपर नज़र रखना। गोर्की और प्रिंस क्रोपाटकिनकी उस मातृभूमिमें अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाएँ घटेंगी। मुझे ऐसा दीख रहा है कि रूसमें क्रान्ति होगी, जो ज़ारको निकाल बाहर करेगी और मास्को, पीटर्सबर्ग इत्यादि नगरोंमें फौज़ क्रान्तिकारियोंका साथ देगी। मुझे अन्तमें यही कहना है कि किसान-मज़दूर इस बातको भलीभांति समझ लें कि अन्यायों से उनका छुटकारा यों ही नहीं हो जायगा। भीख माँगनेके बजाय उन्हें अपने बलसे अपनी मुक्ति प्राप्त करनी होगी।"

मृत्युके समय लुईके पास कुल जमा पाँच फ्रांक थे। उसे निमोनिया हो गया था और ये तीन चार रुपये डाक्टरको आक्सीजन देनेके लिए दे दिये गए। अपरिग्रहके ऐसे दृष्टान्त संसारके इतिहासमें कम ही मिलेंगे। लुई जैसे खाली हाथ इस दुनियामें आई थी, वैसे ही खाली हाथ इस संसारसे विदा हो गई। उस दिन सन् १९०५ की १०वीं जनवरी थी। लुईने जीवनकी कलाको समझा था। वह क्रान्तिके लिए मरना जानती थी और क्रान्तिके लिए जीना भी, और पहलेकी अपेक्षा दूसरी बात कठिन है। उसके लिए विश्राम नामकी कोई चीज़ थी ही नहीं। 'सुख' की परिभाषा उसके शब्दोंमें सुन लीजिए––

"सुख किसी दूरस्थ नक्षत्र मंडलपर रहनेवाली कल्पना है। इस संसार में तो 'सुख' प्राप्त नहीं हो सकता।" पर निरन्तर संघर्षमें जो 'सन्तोष' है, किसीपर शासन न करने और किसीके द्वारा शासित न होनेमें जो 'सजीवता' है और किसी दूरस्थ आदर्शके लिए जीने और मरनेमें जो आनन्द है, उसे लुईने जाना था और खूब जाना था।

अपने मूढ़ पतियोंसे रंग-बिरंगी साड़ियों और विभिन्न आभूषणोंके लिए लड़ने-झगड़नेवाली महिलाएँ उस 'सन्तोष', उस 'सजीवता' और उस 'आनन्द' को क्या कभी जान सकेंगी ?

आलीशान होटलोंमें बीस-बीस रुपये रोज़के कमरेमें रहकर देशका नेतृत्व करनेवाली महिलाएँ हमने देखी हैं, शासनकी शौकीन देवियोंके भी कारनामे सुने हैं और तफ़रीहन कभी-कभी देश-भक्तिके गाने गानेवाली कोकिलबैनियोंके स्वर भी हमारे कानोंतक पहुँचे हैं, थोड़े-से त्यागकी पूंजीपर देश-भक्तिका व्यापार करनेवाली महिलाओंकी भी कमी नहीं; पर लुई माइकेलकी-सी लगनवाली, ६० वर्ष तक निरन्तर तप और त्याग युद्ध और जेल तथा देश-निकालेसे परिपूर्ण विद्रोही जीवन व्यतीत करनेवाली वीर क्षत्राणी इस देशमें आधुनिक कालमें नहीं दीख पड़ी ।*

अप्रैल १९३९]

---

* 'Seven Women Against the World' नामक पुस्तकके आधारपर ।

: ५ :

ऐमा गोल्डमेन

ऐतरेय ब्राह्मणमें एक जगह बड़े महत्वपूर्ण वाक्य आये हैं—

'चरैवेति चरैवेति'—'चले चलो, चले चलो ।'

'चलनेवालेकी आत्मा फलग्राही होती है और उसके सभी पाप मार्गमें ही नष्ट हो जाते हैं । चले चलो, चले चलो ।'

'सोनेवाला कलियुग है, जगनेवाला द्वापर, उठ खड़े होनेवाला त्रेता और चलते रहनेवाला सत्ययुग होता है—चले चलो, चले चलो ।'

किसी भी प्रगतिशील व्यक्तिके लिए ये शब्द 'मोटो' (आदर्श-वाक्य) का काम दे सकते हैं । अभी उस दिन अराजकवादी महिला ऐमा गोल्डमेनका आत्म-चरित पढ़ते हुए हमें ऐतरेय ब्राह्मणके ये शब्द याद आ गये । अराजकवादकी सारी ख़ूबी उसकी निरन्तर प्रगतिशीलतामें है; पर जो लोग दूसरोंपर शासन करनेकी महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, वे तो जमकर बैठ जाते हैं और उन्हें 'स्थायी' समझना चाहिए, बल्कि प्रतिक्रियावादी ।

यदि आपको प्रगतिशीलताके सजीव उदाहरण देखने हों तो आप महाप्राण बाकूनिनका जीवन-चरित पढ़िये, जिनकी सारी ज़िन्दगी भिन्न-भिन्न सरकारोंसे संघर्ष करते हुए बीती और जेलख़ाने, देशनिकाले तथा फाँसीके दण्ड जिसे अपने पथसे विचलित न कर सके । प्रिंस क्रोपाटकिनके चरित्रमें भी आप वही निराली आन-बान-शान पायेंगे । ४२ वर्ष तक विदेशमें अपनी मातृभूमिकी स्वाधीनताके लिए घोर तप और अनुपम

त्यागका जीवन व्यतीन करनेके बाद जब वे अपने देशको लौटे तो स्वयं स्वदेशी सरकारके सामने भी हाथ पसारना, उससे किसी प्रकारकी रियायत लेना, उन्होंने अस्वीकार कर दिया। लेनिनकी सरकार उनकी पुस्तकोंके अधिकार २॥ लाख रूबलमें खरीदना चाहती थी; पर वे अपने सिद्धान्तोंपर अटल रहे, और उन्होंने यह रक़म अस्वीकार करके वृद्धावस्थामें भोजनतकका कष्ट उठाना मंजूर किया! दिनभर लन्दनमें शर्बत बेचकर शामको इटैलियन पत्रोंके लिए ज़ोरदार लेख लिखनेवाले अराजकवादी मैलटेस्टाका वृत्तान्त इसी पुस्तकमें अन्यत्र दे दिया गया है और क्रान्तिकारी लुई माइकेलकी रामकहानी भी इसी ग्रन्थमें प्रकाशित है। आज ऐमा गोल्डमेनकी कथा सुन लीजिए।

ऐमा गोल्डमेनका जन्म सन् १८६९ में रूसमें हुआ था और शायद वे अभी जीवित हैं। १९३४ में उन्होंने लिखा था—"दुनिया जिसे सफलता कहती है—यानी धन-संग्रह, उच्च पद-प्राप्ति अथवा समाजमें गौरवमय स्थान पाना—उसे मैं घोर असफलता मानती हूँ। मैंने हमेशा इस बातकी कोशिश की है कि मै निरन्तर प्रगतिशील बनी रहूँ और कभी आत्म-सन्तोष के चक्करमें पड़कर पत्थरकी तरह ठोस न बन जाऊँ। अगर मुझे फिर दूसरी बार जीवन व्यतीत करनेका मौक़ा मिले तो दो-चार छोटी-मोटी बातोंमें भले ही परिवर्तन कर दूँ; परंतु जीवनके महत्वपूर्ण कार्योंमें मैं अपने पिछले जीवनको दुहराना ही पसन्द करूँगी। अवश्यमेव मैं अराजकवादके प्रचारके लिए उसी धुन, उसी लगनसे कार्य करूँगी और अराजकवादकी अन्तिम सफलताके विषयमें मेरा विश्वास भी उतना ही दृढ़ रहेगा।"

जिस दिन हमने ऐमा गोल्डमेनका एक हज़ार पृष्ठका आत्म-चरित समाप्त किया, उस दिन मनमें नाना प्रकारके विचार उठने रहे। खयाल आया कि हमने किताब पढ़ी है या सिनेमा देखा है! ज़िन्दगीके सच्चे

नाटक कल्पित नाटकोंसे कहीं अधिक मनोरंजक तथा हृदयबेधक होते हैं, और ऐमा गोल्डमेनकी ज़िन्दगी भी क्या गज़बकी चीज़ है !

× × ×

'ताड़, ताड़, ताड़' ११–१२ वर्षकी लड़कीकी पीठपर कोड़े पड़ रहे हैं। लड़कीका छोटा भाई आकर अपने पिताकी पिंडुरीमें काट खाता है। बड़ी बहन आकर पिताजीसे उसे बचाती है, अपने छोटे-से कमरेपर ले जाती है, पीठकी सिकाई करती है और उसे छातीसे लगा लेती है। दोनों बहनें मिलके रोती हैं, दोनोंके आँसू मिल जाते हैं ! पिताजी कह रहे हैं, "मैं इस मुंडीको मार डालूंगा, छोड़ूंगा नहीं। यह मेरा कहना क्यों नहीं मानती ?"

यह है हमारी चरित्-नायिका ऐमा गोल्डमेनकी बाल्यावस्थाका एक दृश्य ! पिताजी प्रायः कहते थे, "मैं नहीं चाहता था कि मेरे यह लड़की हो। मैं तो इसके बजाय लड़का चाहता था; पर इस सुअरनी (पत्नी) ने लड़की ही जन कर दी !"

× × ×

"लो, यह पानी भरा हुआ ग्लास लो और इसे लेकर उस कोने तक जाओ और उल्टे पाँव लौटो। ख़बरदार, एक बूंद पानी अगर छलका तो खाल उधेड़ दूंगा !"

वह देखिए, निर्दय पिताकी आज्ञासे ऐमा यह कठिन कार्य कर रही है और उसके बाद मानसिक श्रमके कारण घंटोंतक पड़ी-पड़ी छटपटा रही है ! सुनिए ! वह गरीब बेचारी क्या कह रही है—"अगर मैं बहुत बीमार पड़ जाऊँ, मरनेके करीब हो जाऊँ तो शायद पिताजीका दिल पिघल जाय और वे मुझे प्यार करने लगें !"

सन् १८८५

आज १६ वर्षकी ऐमा अपने माता-पिताको और अपने देश रूसको छोड़कर अपनी बहन हेलेनाके साथ अमरीकाको जा रही है। एक बहन

वहाँ पहलेसे पहुँच चुकी है। रोचेस्टरमें दर्जिनका काम करते हुए उसे देखिए। साढ़े दस घंटे परिश्रम करनेके बाद एक रुपया मिलेगा, जो अमरीकामें गुज़र करनेके लिए बहुत कम है।

× × ×

फरवरी १८८७ की एक रात है। ऐमाका विवाह जेकब कार्शनरके साथ हो चुका है।

"My feverish excitement of that day, my suspense and ardent anticipation gave way at night to a feeling of utter bewilderment. Jacob lay trembling near me; he was impotent."

अर्थात्—"दिन-भर एक अजीब तरहकी बुखारकी-सी उत्तेजना रही, मनमें अद्भुत दुबिधा, आशंका तथा आशाके भाव उदित होते रहे; पर रातको ये सारे भाव घोर आश्चर्यमें बदल गये। मैं स्तम्भित थी। जेकब मेरे पास पलंगपर पड़ा हुआ काँप रहा था। वह नपुंसक था।"

इसके बाद तलाक़।

ऐमाके अन्तर्द्वन्दका जीवन एक अद्भुत चीज़ है और उससे भी अधिक अद्भुत है उनकी स्पष्टवादिता। अपने आचार्य प्रिंस क्रोपाटकिनसे सेक्स (Sex) के विषयमें गरमागरम बहस करनेवाली, लेनिनके मुँहपर करारा जवाब देनेवाली और अपने सिद्धान्तोंके लिए हर वक्त हथेली पर जान लिए घूमनेवाली ऐमा भला अपने जीवनके विषयमें दुराव-छिपावकी नीतिसे क्यों काम लेने लगी?

कहा जाता है कि एक बार उद्दालक ऋषि अपनी माताके पास गये थे और उनसे पूछा था, "माँ, लोग मुझसे पिताका नाम पूछते हैं। तू बता दे।" माताने जवाब दिया था, "बेटा, मैं अनेक ऋषियोंके साथ रमण करती रही थी। किसका नाम बतलाऊँ?" यह विवाह-संस्थाके व्यवस्थित होनेके पूर्वकी बात है। ऐमा गोल्डमेनमें उद्दालक ऋषिकी पूज्य मातासे भी

अधिक स्पष्टवादिता है। उनके पुरुष-प्रसंगोंका वृत्तान्त पढ़कर प्रश्न उठता है, "क्या ऐमा वैदिक कालके पहलेकी स्त्री है ? अथवा क्या किसी भावी युगकी नारी ? या क्या कोई महिला मंगल ग्रहसे उतरकर इस लोकका निरीक्षण कर रही है ?"

प्रत्येक नारीके जीवनमें पुत्रवती होनेकी इच्छा स्वाभाविक ही होती है, ऐमाके जीवनमें भी थी और बड़े प्रबल रूपसे। जब वह चार वर्षकी थी तब उसके भाई हर्मनका जन्म हुआ था। तबतक वह गुड्डे-गुड़ियोंसे खेलनेकी बड़ी इच्छुक रहती थी, पास-पड़ोसकी लड़कियोंके पास खिलौने देखकर ईर्ष्या करती थी; पर उस गरीबको ये मुअस्सर न होते थे, अब गुड्डा-सा छोटा भाई खिलानेके लिए आ गया !

माँ एक दिन बच्चेको ऐमाके पास सुलाकर कहीं चली गई। ऐमा अपने जीवन-चरितमें लिखती हैं—"माताजीके जाते ही बच्चा रोने लगा। मैंने सोचा कि ज़रूर यह भूखा होगा। फिर मुझे ख़याल आया कि जब भैया रोता है तो अम्मा किस तरह अपना दूध पिलाकर इसे रखती है। मैंने भैयाको उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया और उसके छोटे-से मुखड़ेको अपने स्तनसे चिपटाकर कहने लगी, 'ले बेटा, पी ले !' पीना तो दूर रहा, वह तो रोने-चिल्लाने लगा, नीला-पीला पड़ने लगा और उसका दम घुटने लगा, ! माँ आवाज़ सुनकर दौड़ी आई और बोली—"तूने भइयाको क्या नोंच लिया है ?' मैंने सारा किस्सा कह सुनाया। माँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई, उसने दो चपत मेरे गालोंपर लगाईं और कहा, 'चल पगली !' मैं ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगी, चपतोंकी वजहसे नहीं, बल्कि इस वजहसे कि मेरे स्तनोंमेंसे भइयाके लिए दूध क्यों नहीं निकला ! मैं उस समय पाँच वर्षकी थी।"

इसके बहुत वर्षों बाद पाँव और रीढ़की हड्डियोंमें असह्य पीड़ा होनेके कारण जब अमरीकामें ऐमा एक डाक्टरके पास गई तो उसने कहा—"तुम्हें आपरेशन कराना होगा, बिना उसके यह दर्द जड़से दूर नहीं हो

सकता। अगर तुम आपरेशन करा लोगी तो गर्भ धारण कर सकोगी, नहीं तो नहीं। क्या तुम नहीं चाहती कि तुम बच्चेकी माँ बनो ?"

बात यह हुई थी कि विवाहके पूर्व एक बार रजस्वला होनेके दिन ही उसे जर्मनीसे रूसको लुक-छिपकर आना पड़ा था और एक बर्फीली नदी पार करनी पड़ी थी और तभीसे उसे यह रोग लग गया था।

ऐमा पुत्रवती होना चाहती थी और खूब चाहती थी; पर उसने सहस्रों बच्चोंका संकटमय जीवन देखा था और उसकी अपनी बाल्यावस्था-की स्मृतियाँ भी काफी कटुतापूर्ण थी। वह गरीब थी, और ग़रीबोंकी दाने-दानेको तड़पनेवाली सन्तानें उसने देखी थी। क्या ऐसे दीन-हीन बच्चोंकी संख्यामें वृद्धि करना उचित होगा ? ऐमाने सोचा, और जब यह आपरेशन की बात चली थी, ऐमा २०–२२ वर्षकी हो चुकी थी और अराजकवादके सिद्धान्तोंके लिए जीवन अर्पण कर चुकी थी। उसने मनमें कहा, "मेरी आकांक्षा है कि मैं अपना सम्पूर्ण समय अपने आदर्शोंके प्रचारमें लगाऊँ और इसके लिए मुझे पुत्रवती होनेकी इच्छाको दमन करना होगा। बहुतसे आदमी अपने सिद्धान्तोंके लिए शहीद हो गये हैं। क्या मैं इतना भी न कर सकूँगी ? ध्येयकी प्राप्ति मुफ्तमें नहीं होती, उसके लिए क़ीमत चुकानी पड़ती है। मैं भी मूल्य चुकाऊँगी। भले ही जीवन-भर दर्द सताता रहे, भले ही मनमें पुत्रवती होनेकी अदम्य लालसा बनी रहे। सभी बच्चे तो अपने बच्चे हैं। बस, मैं आपरेशन नहीं करा-ऊँगी।"

ऐमाने आपरेशन नहीं कराया !

इतवारका दिन था। न्यूयार्कसे एक सुप्रसिद्ध महिला व्याख्यान देनेके लिए आनेवाली थीं। उनका नाम था जोहन्ना ग्रेई। ऐमा उस भाषणको सुननेके लिए गई। पाँच अराजकवादियोंको, जो हड़तालियोंके अगुआ थे, फाँसीकी सज़ा होनेवाली थी और ग्रेई उन्हींके विषयमें भाषण देने आई थी। भाषण समाप्त होनेपर ग्रेईने ऐमाकी ओर इशारा किया।

ऐमाके पैर काँपने लगे। ग्रेईने उसका हाथ अपने हाथमें लेते हुए कहा--"तुम्हारे चेहरेपर भाव जितनी प्रबलताके साथ झलक रहे थे, उतनी ज़ोरके साथ किसीके चेहरेपर भावोंका प्रतिबिम्ब मैंने नहीं देखा। मालूम होता है कि भावी दुर्घटना का तुम्हारे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा है? क्या तुम उन हड़तालियोंको जानती हो?"

काँपते हुए ऐमाने जवाब दिया—"मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उन्हें नही जानती! पर मेरा रोम-रोम इस दुर्घटनासे प्रभावित हो गया है और आपका भाषण सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानों वे लोग मेरे चिर-परिचित हों।"

ग्रेईने ऐमाके कंधेपर हाथ रखकर कहा--"मुझे विश्वास है कि जब तुम उन आदमियोंके आदर्शको समझ जाओगी तो उन आदमियोंसे भी भलीभाँति परिचित हो जाओगी और तब तुम उनके ध्येयको अपना ध्येय बना लोगी।"

ऐमा लिखती हैं--"मैं घरके लिए चल दी। मानों मैं स्वप्न-सा देख रही थी। पाँव रखती कहीं थी, पड़ते कहीं थे। बड़ी बहन हेलेना उस वक्त सो रही थी और मेरे मनमें इतनी अधिक उत्कंठा अपने अनुभव किसीको सुनानेकी थी कि मैंने बहनको लकलकाकर जगा दिया और शुरूसे आखिर तक सारी कहानी कह सुनाई। व्याख्यानका शब्द-शब्द मैंने बहनको सुना दिया। हेलेना मानों कोई नाटक देख रही थी। अन्तमें लम्बी उसाँस भरकर उसने कहा, 'अब मैं किसी दिन सुनूंगी कि मेरी छोटी-सी प्यारी बहन ऐमा भी खतरनाक अराजकवादी बन गई!'"

इसके कुछ दिनों बाद उन अराजकवादियोंको फाँसी हो गई। "मेरी बहन इस समाचारको पढ़ते ही फूट-फूटकर रोने लगी; पर मेरे आँसू न निकले। चोट उतनी जोरकी थी कि आँसू निकलना असम्भव था। फिर मैं खाटपर पड़कर खूब रोई और फिर खूब सोई। दूसरे दिन सवेरे उठकर मैंने देखा कि मुझे नई ज़िन्दगी मिल गई है। मैंने दृढ़ निश्चय

कर लिया कि उन अराजकवादियोंका ध्येय मेरा ध्येय होगा और उनके तेजस्वी जीवनकी रामकहानी मैं संसारको सुनाऊँगी।"

आज इस घटनाको ५० वर्ष हो गये। उन पचास वर्षोंमें ऐमाने जो महान कार्य किया है, वह संसारके इतिहासमें एक महत्वपूर्ण अध्यायका काम देगा। वह है ऐमा गोल्डमेनके पुनर्जन्मकी कहानी। जब कोई उनसे उम्र पूछता है तो वे बीस वर्ष कम करके बताती हैं! वे कहती हैं—"ज़िन्दगीके प्रथम बीस वर्ष तो मैं घास-फूसकी तरह उगती रही। उन्हें शामिल थोड़े ही करूँगी।"

थोड़े दिन बाद ऐमाका परिचय बर्कमेन नामक अराजकवादीसे हो गया और दोनोंमें घनिष्ट मित्रता हो गई। बर्कमेनका भी जन्म रूसमें ही हुआ था। ये दोनों मानों एक प्राण दो शरीरकी भाँति हिल-मिल गये। हाँ, ऐमाके विषयमें इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि उसने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व कभी नही खोया।

सन् १८९२ में कार्नेगी स्टील कम्पनी, पिट्सबर्गके मजदूरोंने हड़ताल कर दी और उस समय कम्पनीके मैनेजर हेनरी क्ले फ्रिकने उनके साथ बड़ा हृदयहीनतायुक्त बर्ताव किया। बर्कमेनने निश्चय कर लिया कि मैं इस अत्याचारपूर्ण नीतिका बदला लूंगा। आप अपने नगरसे पिट्सबर्गके लिए रवाना हुए, मैनेजरके कमरेपर पहुँचे और धाँय-धाँय तीन गोलियाँ उनपर दाग दीं। खैरियत यह हुई कि फ्रिक साहब बच गये। हाँ, घायल तो वे बेतरह हो गये। इसके बाद मुकद्दमा चला। बर्कमेनको २२ वर्षकी जेल हो गई!

ऐमाको इसका पता था और वह भी बर्कमेनके साथ जानेके लिए अत्यन्त उत्सुक थी; पर बर्कमेनने साफ मना कर दिया था। उसने कहा था—"तुम जीवित रहो और अमरीकन जनताको यह बतलाना कि मैं कोई मामूली हत्यारा नहीं था, बल्कि आदर्शवादी था। मैं फ्रिकको मार डालूंगा और फिर आत्म-हत्या कर लूंगा।"

बर्कमेनको १४ वर्ष जेलमें व्यतीत करने पड़े; पर ऐमाने इस बीचमें विश्राम नहीं लिया। पुलिसने ऐमाके घरकी तलाशी ली थी; पर इसके पूर्व ही उसने सब चीजें अपने कमरेसे दूसरी जगह पहुँचा दी थीं! पुलिसको कोई खतरनाक चीज़ न मिल सकी। पर तबसे पुलिस ऐमाके विषयमें अत्यन्त सतर्क हो गई। वह 'लाल ऐमा' (Red Emma) के नामसे पुकारी जाने लगी।

ऐमाके दिलमें लगन थी और प्रकृतिने उसकी ज़बानमें जादूका असर दिया था। सहस्रोंकी मीटिंगको वह अपनी वाणीसे प्रभावित कर सकती थी। जहाँ कहीं मज़दूरोंकी हड़ताल होती, वहाँ ऐमा बोलनेके लिए पहुँच जाती। पुलिसके दिलमें तहलका मच जाता। लोगोंने कितने ही किस्से उसके बारेमें गढ़ लिये थे। कोई कहता था कि बम बनाती है, कोई कहता था कि वह हत्याओंका प्रचार करती है!

सन् १८९४ में पुलिसने उसे पकड़कर मुकद्दमा चला दिया और साल-भरके लिए जेलमें ठेल दिया!

जेलसे छूटकर ऐमाने नर्सका काम सीखनेका निश्चय किया। राजनैतिक कार्यके लिए समय चाहिए था और ऐमाको आमदनी कुछ थी नहीं। कभी-कभी भोजनके भी लाले पड़ जाते थे, आरामकी बात तो रही दूर। मित्रोंकी सहायतासे वह नर्सका काम सीखनेके लिए वायना गई और वहाँ गुमनाम रहकर (मिसेज़ ई० जी० ब्रेडीके कल्पित नामसे) वह नर्सका काम सीखती रही। अमरीका लौटकर उसने अपनी जीविकाके लिए यही काम करना प्रारम्भ कर दिया। फिर भी उसके समयका अधिकांश तो राजनैतिक कार्योंमें ही व्यतीत होता था।

ऐमाने अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए क्या-क्या नहीं किया! फ़ैक्टरीमें मज़दूरीकी, घरपर शाल-दुशाले बुने, मालिश की दूकान खोली, दर्जिनका काम किया और नर्सका पेशा अख्तियार किया। एक वक्त ऐसा आया कि डाक्टर लोग उसके नामसे डरने लगे और जो पहले मरीज़ोंसे उसके

नामकी सिफारिश करते थे, वे अब उसका नाम लेनेमें भी भय खाने लगे ! परिणाम यह हुआ कि उसका धन्धा खतम हो गया और फिर उसे दर्जिनका काम करना पड़ा !

सन् १९०६ में बर्कमेन जेलसे छोड़ दिए गए। उनका स्वास्थ्य बिल्कुल खराब हो गया था और उनका मस्तिष्क पागलपनकी सीमा तक पहुँच चुका था ! उस समय ऐमाकी ही सेवाने उनके प्राण बचाये।

मार्च सन् १९०६ में ऐमाने एक मासिक पत्रिकाको जन्म दिया, जिसका नाम था 'मदर अर्थ' यानी धरती माता। सन् १९१७ में, युद्धके दिनोंमें सरकारने इस पत्रिकाका असमय ही अन्त कर दिया।

जून सन् १९१७ में संयुक्त राज्य अमरीकाकी सरकारने ऐमा और बर्कमेन दोनोंको पकड़ लिया, क्योंकि इन दोनोंने युद्ध-विरोधी भाषण दिये थे। मुकदमा चलाया गया और दोनोंको दो-दो वर्षकी जेल और १० हज़ार डालर जुर्माने हुए।

जेल जानेके पहले दोनोंने अपने बन्धुओंके नाम निम्नलिखित पत्र भेजा—

"मित्रो और बन्धुओ ! खूब खुश रहो। हम दोनों प्रसन्नतापूर्वक जेल जा रहे हैं। हमारे लिए बाहर रहकर मुँह बन्द रखनेकी अपेक्षा जेलखानेकी सींखचोंके भीतर रहना कहीं अधिक सन्तोषजनक है। हमारी भावनाको कोई दबा नहीं सकता और हमारी दृढ़ इच्छाशक्तिको कोई तोड़ नहीं सकता। समय आनेपर हम दोनों अपने प्रिय कार्यपर लौट आवेंगे।

अभी हमारा प्रणाम ! इस वक्त स्वाधीनताका प्रकाश अवश्य मन्द हो गया है; पर मित्रो, नाउम्मेदीकी कोई बात नहीं। चिनगारीको बुझने नहीं देना। सदा ही रात नहीं बनी रहेगी। शीघ्र ही इस अन्धकारके

बीजसे प्रकाशकी रेखा फूट पड़ेगी और इस देशमें नवीन दिनका उदय होगा। क्या ही अच्छा हो, यदि हममें से प्रत्येक यह अनुभव करे कि हमने भी उस महान् जागरणके लिए अपना कर्तव्य पालन किया है!

ऐमा गोल्डमेन,
एलेग्ज़ेण्डर बर्कमेन।"

सितम्बर सन् १९१९ मे दोनों साथी जेलसे छोड़ दिये गए; पर २० दिसम्बर सन् १९१९ को दोनोंको संयुक्त राज्यकी सरकारने देशनिकालेका दण्ड दे दिया। २८ दिनकी लम्बी यात्राके बाद वे रूस पहुँचे। ऐमा अब ५० वर्षकी थी और उसके जीवनका अधिकांश यानी ३४ वर्ष अमरीकामें बीते थे, इतने वर्ष बाद वह अपनी जन्मभूमिको वापस आई थी। फिर भी उसमें उतना ही उत्साह था, जीवनको नये सिरेसे प्रारम्भ करनेकी उत्कण्ठा थी और थी नवीन रूसकी सेवा करनेकी आकांक्षा।

रूसमें आकर जो-कुछ इन दोनोंने देखा, उससे उनकी आँखें खुल गई। स्वाधीन रूसके विषयमें जो स्वप्न वह देखती रही थी, वे सब भंग हो गये। अमरीकामें इतने वर्ष रहने और अँग्रेज़ी बोलनेके कारण पहले तो उसे अपनी बाल्यावस्थाकी भाषा याद करनेमें बड़ी कठिनाई हुई; पर धीरे-धीरे वह रूसी भाषामें बोलने लगी। रूसमें ये दोनों करीब दो वर्ष तक रहे। इस बीचमें उन्हें लेनिन, लिटवीनॉफ और गोर्कीसे तो मिलनेका अवसर मिला ही, पर और भी अनेक व्यक्तियोंसे ये मिले। उनमें प्रिंस क्रोपाटकिनकी मुलाकात सबसे अधिक महत्व रखती है। रूसकी बोल्शेविक खुफिया पुलिस चैकाके कारनामे ज़ारकी पुलिसके अत्याचारोंकी याद दिलाते थे। कितने ही अराजकवादी लेनिनकी जेलमें पड़े सड़ रहे थे। स्पिरीडोनोवा भी जेलमें थी और उससे भी ऐमा मिली।

जब ऐमाने प्रिंस क्रोपाटकिनसे कहा—"क्या इस अभागी भूमिमें

कोई ऐसा नही है, जो बोल्शेविकोंके अत्याचारका विरोध कर सके, कोई ऐसा नहीं, जिसके विरोधका लेनिनकी सरकारपर कुछ प्रभाव पड़ सके ? प्यारे कामरेड, तुम क्यों नहीं लिखते ?" तो ७७ वर्षका वह बुड्ढा तपस्वी मुस्कराया; पर मुस्कराहटके साथ ही खेदकी एक रेखा उसके चेहरेपर दौड़ गई। उसने कहा—"दुनियाके किसी हिस्सेमें स्वाधीन विचारोंका गला इतने ज़ोरसे नहीं घोंटा गया, जितने ज़ोरके साथ रूसमें घोंटा जाता है। मैंने विरोध किया था, वीरा फिगनरने विरोध किया था और मैक्सिम गोर्कीने भी किया था; पर कौन सुनता है ! हर मौकेपर खुफिया पुलिस दरवाज़ेपर खड़ी रहती है। साथी-संगियोंके फंसनेका हर वक्त खतरा है। भयके कारण नहीं, पर इस भावनाकी वजहसे कि वर्तमान परिस्थिति-में रूससे बाहर अपने विचार भेजना बिल्कुल असम्भव है, हम लोग चुप हैं ! सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि यदि हम बोल्शेविक सरकारका विरोध करते है तो रूसके चारों ओर जो दुश्मन हैं, वे उसका फायदा उठानेके लिए तैयार बैठे हैं। हम किसी भी हालतमें रूसके दुश्मनोंका साथ नही दे सकते। हम अराजकवादियोंके लिए इधर खाई है, तो उधर खन्दक। इसलिए हमने यही उत्तम समझा है कि साधारण जनताका जो हित हमसे हो सके, वह करते रहे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोपाटकिन उन दिनों अत्यन्त कष्टमें अपनी जिन्दगी बिता रहे थे। भोजन भी उन्हें पुष्टिकर नहीं मिल पाता था और ७७ वर्षके उस तपस्वीको एक धुँधले दीपककी रोशनीमें अपने अन्तिम ग्रन्थ 'इथिक्स' (नीतिशास्त्र) की रचना करनी पड़ी थी। (Reference) सन्दर्भ की किताबोंके खरीदनेके लिए पैसा पास नही था। इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध मज़दूर नेता जार्ज लैन्सबरी उसी दिन, जिस दिन ऐमा प्रिंस क्रोपाटकिनसे मिलने गई थी, वहाँ पहुँचे थे। उन्होंने क्रोपाटकिनकी हालत देखकर कहा था—

"It is impossible that the big people in the Soviet

Government would let so great a personality as Peter Kropotkin want for the necessaries of life. We in England would not stand for such an outrage."
—"यह असम्भव है कि सोवियट सरकारके उच्चपदाधिकारी क्रोपाटकिन जैसे महापुरुषको ज़िन्दगीके लिए जरूरी चीजों—भरण-पोषणकी आवश्यकताओं—से वंचित रखेंगे। हम लोग इंग्लैण्डमें इस प्रकारका अत्याचार सहन नहीं कर सकते।"

पर क्या शासकोंके कभी दिल भी होता है? शासकोंको, चाहे वे मार्क्सवादी हों या गांधीवादी, हृदयहीन बनना ही पड़ता है।*

क्रोपाटकिन अपनी आनपर अन्ततक अडे रहे, और ८ फरवरी १९२१ को सवेरे चार बजे संसारका वह महान वैज्ञानिक, भविष्यका दृष्टा और निर्माता इस संसारसे चल बसा! मरनेके दो घंटे पहले उन्होंने ऐमा गोल्डमेनको याद किया था कि वह आई या नहीं! ऐमा, जो उन्हें अपना आचार्य, अपना गुरु, मानती थीं, मृत्युके दो घंटे बाद वहाँ पहुँच सकीं।

रूसके दमघोंटू वायुमंडलमें रहना ऐमा और बर्कमेनके लिए अत्यन्त कठिन हो रहा था और वे ज्यों-त्यों करके वहाँसे निकल भागे! दोनोंको एक देशसे दूसरे देशमें इधर-से-उधर टकराते घूमना पड़ा! कोई देश इन अराजकवादियोंका स्वागत करनेके लिए तैयार नहीं था! फिर जर्मनीमें रहनेकी आज्ञा मिली और जुलाई १९२४ तक वे जर्मनी रहे और तत्पश्चात् इंग्लैण्ड लौट आये।

---

* "And with the best will no one can be an official and a man."—**अर्थात्—"कोई भी आदमी, चाहे वह कैसा ही भलामानस क्यों न हो, अफ़सरी करते हुए मनुष्य नहीं रह सकता।" इब्सनने ठीक ही कहा था।**

५५ वर्षकी उम्रमें ऐमाको विवाह करना पड़ा। बिना विवाह किये उसे किसी देशमें रहनेका अधिकार नहीं था! मातृभूमि रूससे वह निकल चुकी थी, अमरीकासे उसे देशनिकालेका दण्ड मिल चुका था, अब किसी देशका नागरिक बननेके लिए उसे विवाह करना क़ानूनन ज़रूरी हो गया और वेल्सके एक सज्जन जेम्स कॉल्टनसे उन्होंने विवाह कर लिया, जिससे वे ब्रिटिश नागरिक बन गई!

इसके बाद उन्हें संयुक्त राज्य अमरीकामें आनेकी आज्ञा मिल गई और उनका स्थायी निवास-स्थान कनाडा बन गया। आजकल शायद वे वहीं रह रही हैं।

अब भी ऐमाके जीवनमें वही आशा है, वही उत्साह है। वे कहती हैं—"यद्यपि इस समय संसारमें उन्हीं लोगोंका बोलबाला है, जो शासनमें, गवर्मेण्टमें, विश्वास करते हैं और अराजकवादियोंके सिद्धान्त इस समय पिछड़-से गये हैं, तथापि मैं निराश नहीं हूँ। यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि बहुत-से देश अपने यहाँ अराजकवादियोंको घुसने भी नहीं देते! सभी पार्टियाँ, चाहे वे दक्षिणपक्षी हों अथवा वामपक्षी, अराजकवादको अपना जानी दुश्मन समझती हैं।"

कोई-कोई कल्पनाहीन पाठक यह प्रश्न कर सकते हैं—"ऐमा गोल्ड-मेनका जीवन सफल हुआ या विफल?" उनसे हम यही कहेंगे कि अराजकवाद धनिये-पोदीनेकी तरहकी चीज़ नहीं, जो महीने-दो-महीनेमें उग आवे, उसमें मिनिस्ट्रीके मुलायम गद्दे नहीं हैं, जिनपर कलके क्रान्तिकारी आज आसन जमा लें। वह कोई छोटा-मोटा टीला नहीं, जिसपर चाहे जो ऐरे-ग़ैरे चढ़ जायँ। गौरीशंकरकी तरह वह संसारका सर्वोच्च लक्ष्य है। लेनिन भी अराजकवादको साम्यवादकी चरमसीमा मानते थे और महात्मा गांधी भी अराजकवादी हैं; पर अपने जीवनमें जिन्होंने अराजक-वादको यथासम्भव पूर्णरूपसे चरितार्थ किया है, उनकी संख्या अत्यल्प है। अराजकवाद वस्तुतः सतयुग है और मानव-समाज जिस भावी

सतयुगकी कल्पना सहस्रों वर्षोंसे कर रहा है, उसके निर्माताओंमें ऐमा गोल्डमेनका भी नाम गौरवपूर्वक लिया जायगा। समय आवेगा जब संसार ऐमाका नाम उसी तरह स्मरण करेगा, जिस प्रकार आज भारतीय तारा, मन्दोदरी, अहिल्या आदि पंचकन्याओंके नाम स्मरण करते हैं।

जून १९३९]

: ६ :

एमर्सन—१

इक्का वृन्दावनसे मथुरा चला जा रहा था। सड़क टूटी-फूटी थी और कभी-कभी दचके भी लग जाते थे; पर उनकी ओर हमारा ध्यान नहीं था, क्योंकि हम आचार्य गिडवानीकी स्फूर्तिमय वाणी सुन रहे थे। वे 'प्रेम'का डिक्लेरेशन दाखिल करनेके लिए मथुरा जा रहे थे और साथमें मुझे भी ले लिया था। इक्केमें चढ़ते समय मैंने स्वप्नमें भी यह ख़याल नहीं किया था कि आज मेरा परिचय एक ऐसे व्यक्तिसे कराया जायगा, जो वर्षोंतक मेरे हृदयमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करेगा, पर आचार्य गिडवानीजीने वही किया। बातचीतके सिलसिलेमें उन्होंने कहा—"मेरे अनेक मित्रोंने मुझसे पूछा है कि मैं वास्वानीजीकी तरह कोई आश्रम क्यों नहीं स्थापित करता ? आप भी शिकायत करते हैं कि मैं वृन्दावन-जैसी अस्वास्थ्यकर जगहमें क्यों आया हूँ ? आप लोगोंके लिए मेरा उत्तर यही है कि 'हमारा कर्तव्य-स्थल वही है, जहाँ हम हैं, न कि वहाँ, जहाँ हम रहना चाहते हैं', और आपने यहाँका सूर्यास्त तो देखा ही नहीं। जमनाजीकी रेतीमें से देखनेसे बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है और वह मेरी अस्वस्थताकी क्षतिपूर्ति कर देता है। इसके सिवा बापू (महात्माजी)का कहना है कि आदमी थोड़ी-सी सावधानी और भोजनमें यथोचित परिवर्तन कर देनेसे चाहे जैसी आबहवामें स्वस्थ रह सकता है। रही आश्रम क़ायम करनेकी बात, सो मैं जल्दीमें नहीं हूँ। मैं किसीकी नक़ल नहीं करना चाहता। एमर्सनने एक जगह कहा है—

"There is a time in every man's education when

he arrives at the conviction that envy is ignorance; that imitation is suicide; that he must take himself for better, for worse, as his portion; that though the wide universe is full of good, no kernel of nourishing corn can come to him but through his toil on that plot of ground which is given to him to till."

—"प्रत्येक मनुष्यकी शिक्षामें एक ऐसा समय आता है, जब वह इस दृढ़ विश्वासपर पहुँच जाता है कि किसीसे ईर्ष्या करना अज्ञानका सूचक है और किसीकी नक़ल करना मानों आत्मघात करना है। तब उसे यक़ीन हो जाता है कि चाहे बुरे हों या भले, हमारे भाग्यमें हमीं बदे थे, और भले ही दुनियामें अच्छीसे अच्छी चीज़ोंका अखंड भंडार पड़ा हो; पर पुष्टि-कारक अन्नका एक भी दाना तबतक हमें नहीं मिल सकता, जबतक हम उस भूमिखंडको, जो हमें मिला है, अपने परिश्रमसे जोतें-बोएँ नहीं।"

मैंने एमर्सनका नाम तबतक नहीं सुना था; पर उपर्युक्त बात इतने अच्छे ढंगपर कही गई थी कि वह मेरे मनमें प्रवेश कर गई। इसके बाद बातचीतमें ही गिडवानीजीने फिर एमर्सनका नाम लिया और कहा—"An institution is the lengthened shadow of one man."

—"संस्था किसी एक मनुष्यकी विस्तृत छायाका नाम है।" संस्थाकी इतनी सच्ची परिभाषा मैंने पहले कभी नहीं सुनी थी। तुरन्त ही मनमें खयाल आया कि बात बड़े पतेकी कही है। साबरमती-आश्रम महात्माजीकी विस्तृत छाया है, शान्तिनिकेतन कवीन्द्रकी और हिन्दू-विश्वविद्यालय मालवीयजीकी। अबकी बार मुझसे न रहा गया और मैं पूछ ही बैठा—"एमर्सन कौन थे ?"

गिडवानीजीने उत्तर दिया—"एमर्सनको नहीं जानते ? वे अमेरिकाके सर्वश्रेष्ठ लेखक थे—Greatest contribution of America to

world civilisation (संसारकी सभ्यताके लिए अमेरिकाकी सर्वश्रेष्ठ देन)। प्रत्येक भारतीय नवयुवकको उनका निबन्ध 'आत्म-निर्भरता' ('Self-reliance') अवश्य पढना चाहिए।"

वृन्दावनसे लौटकर आगरेमें मैंने एमर्सनके निबन्ध तलाश किये, और 'स्काट लाइब्रेरी' नामक पुस्तकमालाकी एक पुस्तक मुझे मिल गई। घर पहुँचकर मैंने 'आत्म-निर्भरता' पढ़ना शुरू किया। ऐसे अवसरपर, जबकि मुझमें आत्म-विश्वासकी बहुत कमी थी, एमर्सनके इस निबन्धने बड़ी सान्त्वना दी और बहुत हिम्मत बँधाई। यह बात सन् १९२६की है और पिछले नौ वर्षोंमें बहुत ही कम दिन ऐसे बीते होंगे, जब मैंने प्रातःकालमें एमर्सनका सत्संग घंटे-डेढ़-घंटेके लिए न किया हो। उन्होंने निराशाकी अन्धकारपूर्ण निशाओंमें विद्युत्का काम किया है, दुर्घटनाओंमें सान्त्वना दी है, थकनेपर उनके निबन्ध सबसे बड़े 'टानिक' साबित हुए हैं और जीवनमें उत्साह लानेके लिए उनके विचारोंने वही काम किया है, जो क्षयके रोगियोंके लिए कोई सुन्दर सेनेटोरियम करता है। इस बीचमें मैंने अन्य लेखकोंके भी ग्रन्थ पढ़े हैं; पर सूत्ररूपमें आध्यात्मिक बातोंको इतनी ख़ूबीके साथ कहनेवाला कोई दूसरा लेखक नही मिला, इसीलिए वे मेरे हृदयमें सर्वोच्च स्थान रखते हैं। यदि कोई दूसरा उनसे योग्यतर व्यक्ति मिल जायगा तो एमर्सनकी जगह उसे दे दूँगा। एमर्सनका कोई भी प्रेमी कभी किसीका अन्धभक्त नहीं हो सकता—स्वयं एमर्सनका भी नहीं! वह अपने दिमाग़के द्वार प्रकाशके लिए सदा खुले रखता है—यह प्रकाश चाहे जहाँसे आवे। सुना है कि जब महात्माजी भारत-सरकारके एक उच्च पदाधिकारीसे बातचीत ख़त्म करके चलने लगे तो उन्होंने कहा, "But Mr. Gandhi, you haven't been able to throw much light on these intricate problems."—"मि० गांधी, आप गहन प्रश्नोंपर अधिक प्रकाश नहीं डाल सके।"

हाज़िरजवाब महात्माजीने फ़ौरन ही कहा—"Your Lordship should keep your mind open and there will be a flood of light."—"लाट साहब, आप अपने मस्तिष्कके कपाट खुले तो रखें, फिर वहाँ प्रकाशकी बाढ़-सी आ जायगी।"

महात्माजीका यह क़िस्सा कहाँ तक सत्य है, इसकी गारंटी हम नहीं कर सकते; पर इन शब्दोंमें जो सत्यतापूर्ण सन्देश छिपा हुआ है, उससे कौन इन्कार कर सकता है ?

एमर्सनका सन्देश आशाका सन्देश है, वह शक्तिप्रद है, जीवनदाता है और यदि आप आध्यात्मिक शराब पीना चाहते हैं तो मैं कहूँगा कि वह एमर्सनकी दूकानपर मिलती है, फ़र्क़ इतना ही है कि दुनियवी शराब उतारके वक़्त थकान लाती है, एमर्सनका सोमरस सर्वथा स्वास्थ्यप्रद ही है, क्योंकि उसमें गीता-रूपी कल्पवृक्षकी पत्तियोंका रस बड़ी अच्छी मात्रामें विद्यमान है !

सबसे पहले इसी विषयको लेते हैं कि साहित्यिक आदमियोंके लिए एमर्सन क्या सन्देश देते हैं। उनका 'अमेरिकन विद्वान्' ('American Scholar') नामक भाषण, जो सन् १८३७में दिया गया था, अमेरिकाके साहित्यिक इतिहासमें युगान्तरकारी कहा जाता है। डा० जे० टी० सण्डरलैण्डने अपनी पुस्तक 'प्रमुख अमरीकन' ('Eminent Americans') में इस भाषणके विषयमें लिखा है—"जब यह भाषण दिया गया था, उस समय उसका बड़ा प्रभाव पड़ा था। अमेरिकाके साहित्यिक इतिहासमें इस प्रकारके दूसरे भाषणका, जिसका इतना प्रभाव पड़ा हो और जिसने इतनी जागृति की हो, नाम बतलाना मुश्किल है। यदि किसीने एमर्सनके ग्रन्थ न पढ़े हों और वह अब पढ़ना चाहते हों तो मैं उनसे कहूँगा कि वे इस भाषणसे प्रारम्भ करें।"

इस भाषणके कितने ही वाक्य-रत्न ऐसे हैं, जो स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य हैं— "And man shall treat with man as a

sovereign state with a sovereign state."--"एक मनुष्यका बर्ताव दूसरे मनुष्यके साथ वैसा ही होना चाहिए, जैसा कि एक सर्वथा स्वाधीन राज्यका दूसरे सर्वथा स्वाधीन राज्यके प्रति होता है।"

यद्यपि इस उपदेशको पूर्णतया कार्य-रूपमें परिणत करना उतना ही कठिन है, जितना पूर्ण रूपसे ब्रह्मचर्य धारण करना; पर हम लोगोंका--साहित्यिकोंका--आदर्श यही होना चाहिए। इस संसारमें अनेक बीभत्स दृश्य देखे जाते है, पर यदि कोई हमसे पूछे कि संसारका सबसे अधिक बीभत्स दृश्य क्या है तो हम यही उत्तर देंगे कि किसी सच्चे साहित्यिक पुरुषका वह पतन, जब वह पापी पेटके लिए ('अस्य दग्धोदरस्यार्थे') किसी आदर्शहीन धनाढ्यके सामने झुकता है।

एमर्सनके मतानुसार प्रत्येक साहित्यिकके लिए सबसे ज़रूरी चीज़ है अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करना और अपना व्यक्तित्व अलग कायम रखना।

"Is it not the chief disgrace in the world, not to be a unit; not to be reckoned one character,—not to yield that peculiar fruit which each man was created to bear, but to be reckoned in the gross, in the hundred, or the thousand, of the party, the section, to which we belong; and our opinion predicted geographically, as the north, or the south? Not so, brothers and friends—please God, ours shall not be so. We will walk on our own feet; we will work with our own hands; we will speak our own minds."

--"क्या दुनियामें सबसे बड़ी शर्मकी बात यह नहीं है कि आदमी एक इकाई न हो, यानी उसका व्यक्तित्व अलग न हो, उसकी गिनती एक पृथक् व्यक्तित्वके तौरपर न की जाय? प्रत्येक मनुष्यकी रचनाका

उद्देश्य यही है कि वह वृक्षोंकी तरह अपना अलग ही फल दे। क्या यह शर्मकी बात नहीं है कि कोई मनुष्य अपने व्यक्तित्वको विचित्र रूपसे सफल न बनावे ? हमारे लिए क्या यह लज्जाका विषय नहीं है कि हम किसी पार्टीके सैकड़ों-हज़ारों अनुयायियोंमें एक गिने जायँ और हमारी सम्मतिको कोई पहलेसे उसी प्रकार बतला दे, जिस प्रकार भूगोलमें उत्तर-दक्षिण बतला दिये जाते हैं ? भाइयो और मित्रो ! ईश्वर कृपासे हम लोग इस प्रकारके नहीं बनेंगे। हम लोग अपने पैरों खड़े होंगे, अपने हाथोंसे काम करेंगे और अपने ही विचारोंको प्रकट करेंगे।"

एक वाक्य और लीजिए--

"If the single man plant himself indomitably on his instincts, and there abide, the huge world will come round to him."

--"यदि अकेला एक आदमी भी दृढ़तापूर्वक जमकर बैठ जाय और अपनी अन्तरात्माकी प्रेरणाके अनुसार काम करने लगे तो यह विशाल संसार उसके निकट आ जायगा।"

एमर्सनका यह कथन था कि प्रत्येक मनुष्यको अपने प्रकाशसे अपना मार्ग प्रकाशित करना चाहिए। भगवान् गौतम बुद्धने निर्वाणके समय अपने शिष्योंको 'आत्मदीप' अपना प्रकाश स्वयं बननेका जो उपदेश दिया था, वह केवल भिक्षुओंके लिए ही नहीं था, सभी प्राणियोंके लिए था और लेखकोंके लिए तो वह एक अनिवार्य चीज़ है।

"Be content with a little light, so it be your own. Explore and explore. Be neither chided nor flattered out of your position of perpetual inquiry."

--"यदि प्रकाश थोड़ा ही हो, तो कोई मुज़ायक़ा नहीं। अभी उसीसे सन्तोष कर लो, बशर्ते कि प्रकाश तुम्हारा निजी हो। निरन्तर खोज करते

रहो, खोज। चाहे कोई तुमपर कटाक्ष करे, चाहे कोई तुम्हारी खुशामद करे; पर निरन्तर जाँच करनेकी अपनी प्रवृत्तिको मत छोड़ो।"

एमर्सनने लिखा था—"यदि कोई मस्तिष्क अपने मार्गका द्रष्टा स्वयं नहीं बनता, अपने सत्यको किसी दूसरी जगहसे ग्रहण करता है—चाहे इस सत्यका प्रकाश धाराप्रवाह रूपमें आवे—तो बिना एकान्तवास, आत्म-निरीक्षण और बिना आरोग्य-प्राप्तिके यह दूसरी जगहसे प्रकाशका आना मस्तिष्कके लिए विघातक साबित होता है, प्रतिभा स्वयं प्रतिभापर अत्यधिक प्रभाव डालनेके कारण उसकी शत्रु बन जाती है। प्रत्येक राष्ट्रका साहित्य मेरे इस कथनका गवाह है। उदाहरणार्थ, अंगरेजीके नाटककार कवि दो सौ वर्षमें शेक्सपियरकी नकल कर रहे हैं।"

पुस्तकोंके विषयमें एमर्सन कहते हैं—"यदि पुस्तकोंका सदुपयोग हो तो वे सर्वोत्तम चीज़ हैं। यदि दुरुपयोग हो तो वे सबसे खराब हैं। पुस्तकोंका मुख्य उद्देश्य है स्फूर्ति प्रदान करना; पर यदि कोई पुस्तक अपने आकर्षणसे मुझे अपने निर्दिष्ट पथसे अलग फेंक दे और मैं ग्रह-मंडल बननेके बजाय उसका उपग्रह बन जाऊँ—उसके आसपास चक्कर काटने लगूँ—तो इससे तो यही बेहतर होगा कि मैं उक्त पुस्तकको पढ़ूँ ही नहीं।"

एमर्सन लेखकोंके जीवनमें कार्यशीलता लानेके पक्षपाती थे। वे कहते थे कि यद्यपि लेखकका प्रधान कर्तव्य विचार करना है और कार्य करना उसके लिए गौण है, तथापि कार्य करना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है। बिना कार्य किये वह पुरुष नहीं बन सकता। बिना कार्यशील बने उसके विचार पककर सत्य नहीं बन सकते। अकर्म कायरता है।....मुझमें उतनी ही ज़िन्दगी है, जितनी कि मेरी अनुभूति है।

साहित्य-सेवियोंके लिए उनका यही सन्देश था—"जो कुछ तुम्हें, केवल तुम्हें ही, ज्ञात है, वही लिखो। अपने अनुभव बतलाओ, अपने व्यक्तित्वको प्रकट करो, अन्य किसीकी प्रतिध्वनि मत बनो।"

उनके ये निम्न-लिखित शब्द प्रत्येक आदर्शवादी साहित्य-सेवीको अपने कमरेमें लिखकर टाँग लेने चाहिए--

"Truth shall be policy enough for him. Let him open his breast to all honest inquiry and be an artist superior to tricks of art. Show frankly as a saint would do, your experience, methods, tools, and means. Welcome all comers to the freest use of the same. And out of this superior frankness and charity you shall learn higher secrets of your nature, which gods will bend and aid you to communicate.'

अर्थात्--"सत्य ही उसके (साहित्य-सेवीके) लिए पर्याप्त पालिसी होगी। साहित्य-सेवीका कर्तव्य है कि वह प्रत्येक ईमानदार जिज्ञासुके सामने अपना दिल खोलकर रख दे और कलाकारोंकी चालाकियोंसे ऊपर उठकर कलाकार बने। सन्त पुरुषकी भाँति अपने अनुभव, अपने तरीक़े, अपने अस्त्र-शस्त्र और साधनोंको सबको दिखलाओ और जो आदमी तुम्हारे पास जिज्ञासाके भावसे आवें, उन्हें इनका भरपूर प्रयोग करने दो। इस ऊँचे दर्जेकी स्पष्टवादिता तथा उदारतासे तुम्हें खुद अपनी प्रकृतिकी उच्चकोटिकी भीतरी बातोंका पता लग जायगा और देवता लोग झुककर उन बातोंके प्रकटीकरणमें तुम्हारी मदद करेंगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि एमर्सनके उपर्युक्त सिद्धान्तको प्रयोगमें लाना खतरनाक है। आदमियोंको पहचानना आसान नहीं। कौन आदमी धूर्त है और कौन 'ईमानदार जिज्ञासु', इसका पता लगाना आसान काम नहीं; पर जो साहित्य-सेवी दरअसल ऊँचे उठना चाहते हैं, उन्हें इन खतरोंमें पड़ना ही होगा।

यदि कोई आदमी धोखा दे भी दे तो उससे साहित्य-सेवीकी वास्तविक हानि नहीं हो सकती। एमर्सनने एक जगह लिखा है--

"Every man takes care that his neighbour shall not cheat him. But a day comes when he begins to care that he does not cheat his neighbour. Then all goes well. He has changed his market-cart into a chariot of the sun."

अर्थात्—"हरएक आदमी इस बातकी चिन्ता करता है कि मेरा पड़ोसी मुझे धोखा न दे दे; लेकिन एक दिन ऐसा भी आता है, जब वह इस बातकी फ़िक्र करना प्रारम्भ करता है कि वह खुद अपने पड़ोसीको धोखा न दे। तब सब काम ठीक बन जाता है, तब उसकी बाज़ारू गाड़ी सूर्यके रथमें परिवर्तित हो जाती है।"

एमर्सनके उपर्युक्त कथनकी तुलना कबीरके निम्न-लिखित दोहेसे कीजिए—

**"कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोइ;
आप ठगे सुख ऊपजे और ठगे दुख होइ।"**

साहित्य-सेवीके लिए एमर्सनका एक और भी सन्देश है—"Snares and bribes abound to mislead him; let him be true nevertheless." "साहित्य-सेवीको पथभ्रष्ट करनेके लिए जाल बिछेंगे और रिश्वतोंकी भी भरमार होगी; फिर भी उसे सत्य-पथपर ही आरूढ़ रहना चाहिए।"

कभी-कभी तो एमर्सनके विचार पढ़ते-पढ़ते यह शक होने लगता है कि कहीं हम गीताकी टीका तो नहीं पढ़ रहे। निम्न-लिखित वाक्य लीजिए—

"The Buddhists say—'No seed will die,' every seed will grow. Where is the service which can escape its remuneration? What is vulgar, and the essence of all vulgarity, but the avarice of reward? It is the

difference of artisan and artist, of talent and genius, of sinner and saint. The man whose eyes are nailed not on the nature of his act, but on the wages—whether it be money, or office, or fame—is almost equally low."

यह 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'की विस्तृत व्याख्या नहीं है, तो क्या है ? 'Gita is an Empire of thought.' ('गीता विचारोंका साम्राज्य है')—एमर्सनके इस वाक्यको श्री टी० एल० वास्वानीने अपने एक लेखमें उद्धृत किया था।

एमर्सनके निबन्ध खाँडकी उस रोटीकी तरहके हैं, जो जहाँसे तोड़ो, वहींसे मीठी निकलती है। एमर्सनका कथन था, "जो विचार आज आपकी समझमें आते हैं, उन्हें आज लिख दो, और जो कल समझमें आवें, उन्हें कल लिख दो; और यदि आज तथा कलके विचारोंमें परस्पर विरोध हो तो कोई मुज़ायक़ा नहीं। इससे ग़लतफ़हमियाँ उत्पन्न होंगी, लोग तुम्हें कुछ-का-कुछ समझेंगे; पर इससे क्या हुआ ? क्या कुछ-का-कुछ समझा जाना कोई बड़ी ख़राब बात है ? पिथेगोरसको लोगोंने कुछ-का-कुछ समझा, सुकरातको कुछ-का-कुछ समझा, और ईसा मसीहको, लूथरको, कापरनीकस, गैलिलियो और न्यूटनको लोगोंने ग़लत समझा। यही क्यों, प्रत्येक पवित्र तथा बुद्धिमान शरीरधारीको लोगोंने कुछ-का-कुछ समझा है। महान् होनेका अर्थ ही है ग़लतफ़हमीका शिकार होना !"

'पहले हम यह बात कह चुके हैं, अब इसका विरोध कैसे करें ?' यह विचार अनेक आदमियोंको तंग किया करता है; पर एमर्सनको इसकी कुछ परवा नहीं। वे कहते हैं, "पहले जैसा हम कह चुके हैं, हमें तदनुसार ही कहना चाहिए, किसी प्रकार उसका खंडन न करना चाहिए, यह मूर्खतापूर्ण भूत तो क्षुद्र मस्तिष्कवालोंके ही सिरपर सवार होता है और निम्नकोटिके राजनीतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक पुरुष इस भूतकी पूजा करते हैं; पर किसी महान् आत्माको इस भूतसे कुछ भी सरोकार नहीं।

किसी महान् आत्माके लिए वह विचार उतना ही महत्त्व रखता है, जितना दीवारपर उसकी छाया।"*

एमर्सनके विचार पढ़ते-पढ़ते आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है और बार-बार मुँहसे यह निकल पड़ता है—"खूब ! बात तो हमारे मनमें भी थी; पर एमर्सनने कितने बढ़िया ढंगसे उसे कहा है।" किसी उर्दू कविका वह पद्य हमें इस समय याद नही आ रहा, जिसके अन्तमें आता है—"गोया ये भी मेरे दिलमें था।" यही एमर्सनकी प्रतिभाका प्रमाण है। उन्होंने एक जगह लिखा है—"In every work of genius we recognise our own rejected thoughts."

अर्थात्—"प्रतिभापूर्ण ग्रन्थोंमें हमें ऐसे कितने ही विचार मिलते है, जो हमारे मस्तिष्कमें भी आये थे, पर जिनको हमने थोथा समझकर छोड़ दिया!'

एमर्सनको पढ़नेके बाद अन्य छोटे-मोटे उत्साहप्रद ग्रन्थ कुछ भी

---

* "A foolish consistency is the hobgoblin of little minds, adored by little statesmen and philosopher and divines. With consistency a great soul has simply nothing to do. He may as well concern himself with his shadow on the wall. Speak what you think now in hard words, and to-morrow speak what to-morrow thinks in hard words again, though it contradicts everything you said to-day—'Ah, so you shall be sure to be misunderstood.'—Is it so bad, then, to be misunderstood? Pythagoras was misunderstood, and Socrates, and Jesus, and Luther, and Copernicus, and Galileo, and Newton, and every pure and wise spirit that ever took flesh. To be great is to be misunderstood."

नहीं जँचते। जो लोग एमर्सनके प्रेमी हैं, वे इस बातकी साक्षी हो सकते हैं। एमर्सनने एक जगह लिखा है—

"Who hears me, who understands me, becomes mine—a possession for all time."

अर्थात्—"जो आदमी मेरा सन्देश सुनता है, जो मुझे समझता है, वह मेरा हो जाता है, सदाके लिए उसपर मेरा अधिकार हो जाता है।"

और सुनिये—"Let the soul be assured that somewhere in the universe it should rejoin its friend and it would be content and cheerful alone for a thousand years."

अर्थात्—"यदि किसी आत्माको दृढ़तापूर्वक यह विश्वास दिला दिया जाय कि इस विश्वमें कहींपर अपने पूर्वपरिचित मित्रसे उसका मिलन अवश्य हो जायगा तो वह एकाकी अवस्थामें एक हज़ार वर्ष तक प्रसन्न और सन्तुष्ट रह सकती है।"

पर एमर्सन अपने व्यक्तित्त्वके पूर्ण और स्वाधीनतायुक्त विकासके इतने अधिक पक्षपाती हैं कि वे मित्रोंके मोहको उसके बीचमें बाधक नहीं होने देना चाहते। वे कहते हैं कि जिस प्रकार वृक्षोंमें पुराने पत्तोंकी जगह नये पत्ते आते रहते हैं, उसी प्रकार प्रगतिशील मनुष्योंके मित्रोंमें परिवर्तन होता रहता है। हाँ, यदि मित्र भी उसी प्रकार प्रगतिशील हों तब दूसरी बात है। जब आत्माकी पुकार आती है, उस समय एमर्सन अपने माता-पिता, भाई-बहन, मित्र इत्यादिको छोड़कर उसकी ओर अग्रसर होते हैं। यदि कोई उनसे कहता है—"इससे तो आपके मित्रोंको दुःख होगा।" तो वे जवाब देते हैं—"Yes, but I cannot sell my liberty and my power to save their sensibility."—"हाँ, पर मैं इसका क्या करूँ? उनकी भावुकताको बचानेके लिए मैं अपनी स्वाधीनता अथवा शक्तिको बेच थोड़े ही सकता हूँ।"

एमर्सनके अनुयायीको सर्वथा निर्मोही होना चाहिए। यदि एमर्सन-का कोई मित्र उनके नैतिक तथा सत्य-सम्बन्धी धरातलपर नहीं है तो वे उससे यही कहते हैं—"जनाब, आप अपने रास्ते जाइये, मैं अपने मार्गपर जाऊँगा। दम्भ करनेसे कोई फ़ायदा नहीं। यदि हम अपने मतानुसार सत्य मार्गका अनुसरण करते रहे तो कभी-न-कभी आगे चलकर मिल जायँगे।"

एमर्सन न तो अपने किसी मित्रकी प्रतिध्वनि बनना चाहते हैं और न वे किसीको अपनी प्रतिध्वनि बनाना चाहते हैं। एमर्सन कहते हैं—"हमें लोगोंसे मिलना ज़रूर चाहिए, पर अपनी शर्तोंपर, और क्षुद्र-से-क्षुद्र कारणपर किसीका प्रवेश या बहिष्कार करनेका हमें अधिकार होना चाहिए।"

एमर्सन अपने प्रेमियोंसे मानो कहते हैं—"यदि अपने लक्ष्यपर जानेमें तुम्हारे मित्र छूटते हैं तो छूट जाने दो। उनसे बढ़िया मित्र तुम्हें आगे चलकर मिल जायँगे। ये पुरानी चीज़ोंकी मूर्ति-पूजा कैसी? तुम समझते हो कि तुम्हारा भूतकाल बड़ा मनोहर था; पर मैं तुमसे कहता हूँ कि वर्तमानमें वह शक्ति है कि तुम्हारा भविष्य उससे भी अधिक उज्ज्वल बना सके। इस पुराने खेमेमें पड़े-पड़े क्यों पछता रहे हो कि यहाँ पहले हमें भोजन मिला था, आश्रय मिला था और मिला था प्रेम? क्यों इस बातपर विश्वास नहीं करते कि आत्मामें वह क्रियात्मक शक्ति है कि वह भविष्यमें हमारा भरण-पोषण कर सकती है और हमें ताक़त दे सकती है? क्यों व्यर्थ ही पश्चात्ताप कर रहे हो कि भविष्यमें हमें ऐसी प्यारी, ऐसी मधुर, ऐसी शिष्ट चीज़ नहीं मिलेगी? पर इस तरह बैठकर रोना ठीक नहीं। यह बिलकुल व्यर्थ ही है। सर्वशक्तिमानका सन्देश है—'आगे बढ़े चलो, निरन्तर बढ़ते रहो।' छोड़ो जी, इन पुराने खंडहरों-को। पीछे मुड़कर क्यों देखते हो? बाज़-बाज़ राक्षसोंकी आँखें पीठकी ओर होती हैं। क्या तुम भी राक्षस हो?"

अपनी गार्हस्थिक दुर्घटनाओंमें हमें एमर्सनके 'क्षतिपूर्ति' (Compensation) नामक निबन्धसे जितनी सान्त्वना मिली है, उतनी किसी दूसरी पुस्तकसे नहीं। आकस्मिक दुःखोंके कारण जिन महानुभावोंकी आत्मा सन्तप्त हो, उन्हें एमर्सनके निम्न-लिखित वाक्योंपर ध्यान देना चाहिए—

"And yet compensations of calamity are made apparent to the understanding also, after long intervals of time. A fever, a mutilation, a cruel disappointment, a loss of wealth, a loss of friends, seems at the moment unpaid loss, and unpayable. But the sure years reveal the deep remedial force that underlies all facts. The death of a dear friend, wife, brother, lover, which seemed nothing but privation, somewhat later assumes the aspects of a guide or genius; for it commonly operates revolutions in our way of life, terminates an epoch of infancy or of youth, which was waiting to be closed, breaks up a wanted occupation, or a household, or style of living, and allows the formation of new ones more friendly to the growth of character. It permits or constrains the formation of new acquaintances, and the reception of new influences that prove of the first importance to the next years; and the man or woman who would have remained a sunny garden-flower, with no room for its roots and too much sunshine for its head, by the falling of the walls and the neglect of the gardener, is made the banian of the forest, yielding shade and fruit to wide neighbourhoods of men."

इसका भावार्थ यह है—"मनुष्योंके जीवनमें जो दुर्घटनाएँ आती हैं, उनकी भी क्षतिपूर्ति होती है; पर वे बहुत दिनों बाद हमारी समझमें आती हैं। बुखार आना, अंगभंग हो जाना, निर्दयतापूर्ण निराशा, धनकी हानि, मित्रोंका विनाश आदि दुर्घटनाएँ जब हमारे जीवनमें घटती हैं, उस समय तो ऐसा मालूम होता है कि यह बिलकुल घाटा-ही-घाटा रहा, इस क्षतिकी पूर्ति कभी हो ही नहीं सकती। पर सब वास्तविक तथ्योंके बीचमें एक स्वास्थ्यप्रद शक्ति निहित रहती है, जिसका परिचय हमें वर्षों बाद लगता है, और निश्चयपूर्वक लगता है। जिस समय हमारे किसी प्रिय मित्रकी, पत्नीकी, भाईकी अथवा प्रेमीकी मृत्यु होती है, उस समय तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम हमेशाके लिए वंचित कर दिये गए; लेकिन आगे चलकर यही दुर्घटना हमारे लिए स्फूर्तिदायक बन जाती है, हमारे रहनुमाका काम करती है। इस दुर्घटनाके कारण हमारे जीवनमें एक प्रकारकी क्रान्ति आ जाती है। हमारे बचपनके अथवा बाल्यावस्थाके युगका अन्त हो जाता है, हमारे चिर-अभ्यस्त कार्यक्रमका विच्छेद हो जाता है, गृहस्थावस्था या जीवनक्रम टूट जाता है, और उसके परिणाम-स्वरूप नवीन जीवनक्रमका निर्माण होता है, जो हमारे चरित्रके निर्माणके लिए अधिक उपयुक्त साबित होता है। इन दुर्घटनाओंके कारण हमारा नवीन व्यक्तियोंसे परिचय होता है, हमारे जीवनमें नवीन प्रभावोंको ग्रहण करनेकी शक्ति आती है—ऐसे प्रभाव, जो आगामी वर्षोंमें हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्ध होते हैं। और वह स्त्री या पुरुष, जो इस दुघटनाके न आनेपर उद्यानका एक कोमल पुष्प बना रहता (उसकी जड़ोंको फैलनेकी जगह ही न होती और सूर्यके प्रकाश—वैभव-विलासका उसे ज़रूरतसे ज्यादा भाग मिलता), दीवारोंके गिर जानेसे या मालीकी उपेक्षासे वही कोमल पुष्प वनके वटवृक्षका रूप धारण कर लेता है, जो दूर-दूर तक मानव-समाजको फल और छाया प्रदान करता है।"

जिस प्रकार तुलसीदासजीकी रामायणके प्रेमियोंको समय-समयपर—

दुःखमें, सुखमें—उसीसे सान्त्वना मिलती है, सन्तोष मिलता है और शक्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार एमर्सनके भक्तोंके लिए उनके ग्रन्थ रामायणका काम देते हैं।

किसी देश-विशेषने ऋषित्वका पट्टा नहीं लिखा लिया है और न इस संसारमें देवदूतोंका आना ही बन्द हो गया है। यदि दक्षिण-भारत हमें शंकराचार्य प्रदान कर सकता है, बंगाल रामकृष्ण और राममोहन, गुजरात दयानन्द तथा गांधी, तो अमेरिका हमें एमर्सन, रूस क्रोपाटकिन, टाल्सटाय और लेनिन क्यों न प्रदान करें? कठमुल्ले हैं वे, जो अपने दिमाग़के द्वारको बन्द कर लेते हैं।

जब हमारे एक सहयोगीको यह पता लगा कि हमारे आराध्य पुरुषों और प्रिय लेखकोंमें अधिकांश पश्चिमके हैं तो उन्होंने कुछ व्यंगात्मक ढंगसे कहा—"तुम तो बिलकुल पाश्चात्य हो!"

मालूम नहीं कि इसे हम निन्दा समझें या प्रशंसा। क्या ज्योतिपर किसी देश-विशेषने एकाधिकार जमा लिया है? यद्यपि एमर्सनने स्वयं ही कहा है—"Europe has always owed to Oriental genius its divine impulses."—"यूरोप सदासे अपनी दैवी भावनाओंके लिए पूर्वीय देशोंकी प्रतिभाका ऋणी रहा है।" तथापि नदीके स्रोतका जितना माहात्म्य है, उतना ही आगे उसके आगेके तीर्थोंका हो सकता है।

यद्यपि गंगोत्रीका जो निर्मल जल सुदूर हिमालयके दुर्गम स्थलमें प्राप्य है, वह बनारसमें नहीं मिल सकता; पर पुण्यसलिला भागीरथीमें जो काशी-तीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें क्या आप अपराधी कह सकते हैं? वयोवृद्ध प्रिन्सिपल हेरम्बचन्द्र मित्रने, जो एमर्सनके बड़े भक्त हैं, हारवार्डके एक मासिक पत्रमें लिखा था—

"I recognize a close affinity between the thought

of Emerson and that of the Orient. Emerson's teachings breathe a new life into our old faith. They assure its stability and its progress, by incorporating with its precious new truths revealed or brought into prominence by the wider intellectual and ethical outlook of the modern spirit."

अर्थात्—"मुझे एमर्सनके विचारोंमें और पूर्वीय देशोंके विचारोंमें घनिष्ट साम्यता दीख पड़ती है। एमर्सनकी शिक्षाएँ हमारे प्राचीन विश्वासोंमें नवीन जीवनका संचार करती हैं। उन शिक्षाओंके कारण हमारे ये विश्वास स्थिरता प्राप्त करते है और उन्नतिशील बनते हैं, क्योंकि एमर्सनकी इन शिक्षाओंमें वर्तमान कालके विस्तृत बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टिकोणके कारण नवीन सत्योंका या तो प्रकटीकरण हुआ है, या वे महत्त्व धारण करके प्रकाशमें आ गये हैं।"

बन्धुवर गर्देजीने हमें अपने एक पत्रमें लिखा था—"कभी-कभी गीताके समझनेमें हमें एमर्सनसे मदद मिल जाती है।" निस्सन्देह एमर्सन उपनिषदोंके मौलिक टीकाकार है। एमर्सनके ग्रन्थोंका हिन्दीमें भावानुवाद होना चाहिए और शीघ्र ही होना चाहिए।

सुप्रसिद्ध भारत-हितैषी डा० जे० टी० सण्डरलैण्डने लिखा है—"If you can read only one writer of the West, my word is, read Emerson."

अर्थात्—"यदि आप पश्चिमके केवल एक ही लेखककी रचना पढ़ना चाहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि एमर्सनको पढ़िये।"

जब जर्मनीके सुप्रसिद्ध संस्कृतज्ञ विद्वान् डाक्टर पाल ड्यूसन भारत-यात्राके लिए आये थे तो उन्हें अयोध्यामें किसी पुजारीने भगवान् रामके मन्दिरमें प्रवेश करनेसे रोक दिया था। उन्होंने बहुत समझाया कि वर्षोंसे मैं रामका भक्त हूँ, दिन-रात संस्कृत पढ़ता हूँ, मुझे भीतर जाने दो;

पर उस कठमुल्लेने न जाने दिया, न जाने दिया ! उस समय वे यह कहकर चले गये—"क्रुद्धोऽस्मि ।" आज उसी प्रकार एमर्सन हमारी राष्ट्र-भाषाके सरस्वती-मन्दिरके द्वारपर खड़े हैं । क्या हम उनका स्वागत न करके उस भूलको दुहरावेंगे ?

सितम्बर १९३५]

: ७ :

एमर्सन—२

बसन्त ऋतुका समय है। सरोवरका तट। सप्तपर्ण वृक्ष की छाया। सामने कमल और कमलिनी खिली हुई हैं पीछे कोयल बोल रही है। सुगन्धि लिए हवाका झोंका आ जाता है। दृष्टि उठानेपर बौरसे लदा हुआ आमका पेड़ दीख पड़ता है। एमर्सनके निबन्ध और जीवन-चरित पासमें हैं। और क्या चाहिए? जिन्होंने ऋषिवर एमर्सनके विचारोंका स्वाद चखा है, वे कह सकते हैं कि उनमें विचित्र मादकता है, अजीब आध्यात्मिक नशा है, प्याले-पर-प्याले चढ़ाते जाइए, कभी तृप्ति नहीं होगी। एमर्सनके पढ़नेमें वही आनन्द आता है, जो किसी महान् विद्वान्के साथ वन-उपवनकी सैरमें। एमर्सनका सन्देश आशाका सन्देश है। उसमें यौवन है, उत्साह है और आत्म-विश्वास है। प्राचीन भारतीय ऋषियोंकी तरह उनके वाक्य क्या हैं, मानों गम्भीर अर्थप्रद सूत्र हैं।

एक अंग्रेज़ लेखकने एमर्सनके निबन्धोंकी भूमिका लिखते हुए कहा है—"Emerson's alliance with the "brooding East" is (always remembering his strain of Western energy and practicality) more than emotional; he is in certain higher reaches of his thought, almost a Brahman; so that a cultured Hindoo may write, 'He seems to some of us to have been a geographical mistake. He ought to have been born in India.'"

अर्थात्—"यद्यपि एमर्सनमें पाश्चात्य शक्ति और व्यावहारिकताकी

मात्रा काफ़ी अंशोंमें पाई जाती है, तथापि 'चिन्ताशील पूर्व' से उनका सम्बन्ध केवल भावुकतामय ही नहीं है। कभी-कभी उनके विचार इतनी ऊँचाई तक पहुँचते हैं कि हम उन्हें प्रायः ब्राह्मण कह सकते हैं, इसलिए कोई शिक्षित हिन्दू कह सकता है—'एमर्सन तो एक भौगोलिक भूल थे। उनका जन्म तो अमेरिकाके बजाय भारतवर्षमें होना चाहिए था।' "

अंग्रेज़ी विश्वकोषमें लिखा है—"Emerson was an intellectual Brahmin." अर्थात्—"एमर्सन बौद्धिक दृष्टिसे ब्राह्मण थे।"

अपने निबन्धोंमें कहीं वे गीतासे उद्धरण देते हैं, तो कहीं वेदसे; कहीं हितोपदेशसे, तो कहीं विष्णुपुराणसे !

जब सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक एडवर्ड कार्पेण्टर अमेरिका गये थे तो वे एमर्सनके दर्शनार्थ उनके घरपर पधारे थे। उस समय एमर्सनने उन्हें बड़े प्रेमपूर्वक उपनिषदोंका अनुवाद दिखलाया था और अपनी 'ब्रह्म' शीर्षक कविता भी बतलाई थी।

जिस महापुरुषके विचारोंमें इतनी भारतीयता पाई जाती हो, उसके जीवन-चरितके विषयमें अधिकाधिक जाननेकी उत्कंठा प्रत्येक सुसंस्कृत भारतीयके हृदयमें उत्पन्न होगी, इसमें सन्देह नहीं। आइये, पहले हम उनके माता-पिता, जन्म, बाल्यावस्था इत्यादिके विषयमें दो-चार बातें जान लें।

राल्फ वाल्डो एमर्सनका जन्म २५ मई सन् १८०३ में बोस्टन नामक नगरमें हुआ था। सुप्रसिद्ध अमेरिकन बेंजमिन फ्रैंकलिनके जन्मस्थान होनेका सौभाग्य भी इसी नगरको प्राप्त है। उनके बाबा रेवरेण्ड विलियम एमर्सन बड़े प्रभावशाली धर्म-प्रचारक और कट्टर देशभक्त थे। सन् १७७६ में वे सेनामें भर्ती होकर गये, बीचमें बीमार पड़ गये, लौटना पड़ा, पर मार्गमें ही उनका देहान्त हो गया। उनके चार बच्चे हुए—एक लड़का और तीन लड़कियाँ। इन लड़कियोंमें एकका नाम था मेरी मूडी एमर्सन और उनका हमारे चरितनायकके चरित्रपर बड़ा प्रभाव पड़ा था।

एमर्सनके पिताका भी नाम विलियम एमर्सन था और उनकी माताका नाम था रूथ हस्किन। इनके पाँच लड़के हुए, जिनमें एमर्सन द्वितीय थे।

एमर्सनके पिता बड़े उदार-चरित और क्षमाशील थे। अपने शत्रुओं के प्रति भी उनका बर्ताव क्षमाका ही था। शरीर उनका सुडौल था, रंग गोरा और रहन-सहनमें शिष्टता तथा सुशीलता पाई जाती थी। वे बड़े ईमानदार थे, अपनी बातको बड़ी दृढ़तापूर्वक प्रकट करते थे, लेकिन उनकी बातचीतमें कभी भद्दापन नहीं आने पाता था। माता बड़ी धैर्य-शाली थी, परमात्मामें उनकी दृढ़ श्रद्धा थी, बड़ी समझदार और विनम्र थीं। घरका काम-काज खूब सम्हालती थीं और कुटुम्बमें बड़े प्रेमपूर्वक शासन करती थी। उनके आचरणमें स्वाभाविक शिष्टता, शान्तिमय गौरव और विचित्र कोमलता थी।

सन् १८११ में एमर्सनके पिताका देहान्त हो गया। उस समय एमर्सनकी उम्र केवल ८ वर्षकी थी। घरकी आर्थिक दशा बहुत खराब हो गई। पाँच लड़कोंके बीच केवल एक ही कोट था, और जब एमर्सन उसे पहनकर जाते थे तो उनके स्कूलके साथी कहते थे—"आज राल्फ इस कोटको पहनकर आया है, कल इसके बड़े भाई एडवर्डकी पारी है।" बड़े कटुम्बके पालन-पोषण करनेके लिए माताने एक छात्रालय और भोजनालय खोल रखा था और एक गाय भी रख छोड़ी थी। एमर्सन अपने बड़े भाईके साथ इस गायको चरानेके लिए जंगलमें ले जाया करते थे। एमर्सन की माताको बड़ी किफ़ायतशारीसे अपनी गुज़र करनी पड़ती थी, और इस किफ़ायतशारीका उनके जीवनपर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

आठ वर्षकी उम्रमें वे एक स्कूलमें भर्ती हुए। कविता करनेका शौक उन्हें बाल्यावस्थासे ही था और ग्यारह वर्षकी उम्रमें 'वर्जिल'का उन्होंने अंग्रेज़ीमें अनुवाद करना प्रारम्भ किया। ग्रीक भाषासे उन्हें विशेष प्रेम था और इतिहास भी वे बड़े चावके साथ पढ़ते थे। इसके बाद वे कालेज

में भर्ती हुए। उनके कालेजके एक सहपाठी लिखते हैं—"एमर्सन कालेजके सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी तो थे नहीं, फिर भी उनकी गणना अच्छे विद्यार्थियोंमें अवश्य की जाती थी। वे कभी आलसमें अपना समय नहीं गँवाते थे और न कभी क्षुद्र बातोंमें उनका वक़्त जाता था। उनका आचरण सर्वथा निर्दोष था। उनके सहपाठी अन्य विद्यार्थी उनके प्रति श्रद्धा और प्रेमके भाव रखते थे। दूसरे विद्यार्थियोंसे मिलते समय उनमें एक शिष्टतापूर्ण झिझक दीख पडती थी और उनकी वह आदत आगे भी बनी रही। क्लासमें उनका दर्जा बहुत ऊँचा नहीं था और यदि आगे चलकर वे इतने महान् न बन गये होते तो उनके सहपाठियोंको उनके द्वारा कालेजके दिनोंकी याद करनेकी कोई विशेष सम्भावना न थी।...मैं उनके साथ दूर-दूर तक टहलनेके लिए जाया करता था। बहुत दूर तक चलकर तब कहीं हम विश्राम लिया करते थे—कभी औबर्न पर्वतके पास, तो कभी किसी अन्य स्थानपर। एमर्सनको बातें करनेका शौक नहीं था। श्रोताओंपर प्रभाव डालनेके उद्देश्यसे वे कभी नहीं बोलते थे, जो कुछ वे बोलते थे, बहुत सोच-समझ और जाँच-तौलकर; पर उनके कहनेके ढंगमें कुछ चमत्कार था और उनकी बातें अकसर बहुत दिनों तक याद रहती थीं। उदार भी वे बहुत थे। आगे चलकर एमर्सनके एक सहपाठीको युद्धके कारण बड़ी हानि उठानी पड़ी, उसके दो लड़के मारे गये। एमर्सनने उस समय अपने पुराने सहपाठियोंसे उसके लिए चन्दा किया और स्वयं एक अच्छी रक़म अपने पाससे दी।"

बाल्यावस्थामें एमर्सनके जीवनपर तीन स्त्रियोंका बड़ा प्रभाव पड़ा और तत्कालीन संस्कारोंने उनके जीवनको उच्चकोटिका बना दिया। एक तो स्वयं उनकी माता, दूसरी उनकी बुआ और तीसरी उनकी शिक्षिका। उनकी माताजी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, बड़ी भक्त थीं, धैर्यकी साक्षात् मूर्ति थीं और गृह-कार्यमें वे अत्यन्त कुशल थीं। उनकी कष्टसहिष्णुता तथा क्षमाशीलता भी आदर्श थी। विधवा होनेपर उन्होंने जैसे तप और

त्यागके साथ अपनी गृहस्थी चलाई, उसका प्रभाव एमर्सनके स्वभावपर पड़े बिना रह नहीं सकता था। उनकी शिक्षिका श्रीमती सारा ब्रेडफोड विदुषी थीं, और बाल्यावस्थामें एमर्सन की पढ़ाईका प्रबन्ध उन्हींके हाथमें था। पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा उनकी बुआ मेरी मूडी एमर्सनका। अपने भतीजेपर वे कठोर शासन करतीं, उसकी बुद्धिके विकासके लिए प्रयत्नशील रहती, चरित्रपर पूरा-पूरा ध्यान रखतीं, त्रुटियोंके लिए डाट-फटकार बतलातीं और निरन्तर उत्साहित भी किया करती थीं। स्वयं एमर्सनके हृदयमें अपनी बुआके प्रति अनन्य श्रद्धा थी और बड़े हो जानेपर भी वे बुआके उपदेशोंसे लाभ उठाते रहे। बुआने अपने भतीजेको जो पत्र लिखे थे, वे बड़े महत्त्वपूर्ण थे। उनके दो पत्रोंके अंश सुन लीजिए—

"Solitude, which to people not talented to deviate from the beaten track is the safe ground of mediocrity, is to learning and genius the only sure layrinth—though sometimes gloomy—to form the eagle wing that will bear one farther than suns and stars Would to Providence that your unfoldings might be there!—that it were not a wild and fruitless wish that you could be disunited form travelling with the souls of other men; of living and breathing, reading and writing, with one vital time-fated idea—their opinions."

अर्थात्—"एकान्त मध्यम दर्जेको बुद्धिवाले आदमियोंके लिए जो लकीरके फकीर बने रहना चाहते हैं और जिनमें पुरानी लीकसे हटकर अपना मार्ग बनानेकी सामर्थ्य नहीं है, एक सुरक्षित स्थान है, जहाँ वे अपनी इज्जत बचा सकते हैं।* लेकिन यही एकान्त विद्वानों तथा प्रतिभाशील

---

* 'विभूषणं मौनमपण्डितानाम्'

व्यक्तियोंकी प्रतिभाके विकासके लिए भी अत्यन्त आवश्यक वस्तु है, क्योंकि एकान्तमें ही उनके वे पर उग सकते हैं, जो उन्हें गरुड़ पक्षीकी भाँति सूर्य और चन्द्रसे भी अधिक दूरी तक ले जा सकते हैं। ईश्वर करे कि तुम्हारी प्रतिभाका विकास उसी एकान्तमें हो और तुम्हें दूसरे लोगोंकी आत्माके साथ न तो यात्रा करनी पड़े और न उनके साथ रहने, साँस लेने, लिखने-पढ़ने तथा उन्हींकी सम्मतियोंको दुहरानेके लिए मजबूर होना पड़े।"

एक दूसरी चिट्ठीमें बुआने एमर्सनको लिखा था—

"Scorn trifles, lift your aims; do what you are afraid to do. Sublimity of character must come from sublimity of motive."

अर्थात्—"क्षुद्र बातोंसे घृणा करो और अपने उद्देश्यको ऊँचा रखो। ऐसे काम करो, जिन्हें करते हुए तुम्हें डर लगता हो। उद्देश्यके उच्च होनेपर ही चरित्र उच्च बन सकता है।"

इन उद्धरणोंसे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि एमर्सनके चरित्र-निर्माणमें उनकी बुआका कितना हाथ रहा होगा।

एमर्सनके बड़े भाई विलियम बोस्टनमें शिक्षकका काम करते थे और स्वयं एमर्सन भी ग्रैजुएट होनेके बाद यही काम करने लगे। सन् १८२५–२६ में वे चेम्सफोर्ड नगरके एक स्कूलमें पढ़ाया करते थे। उन दिनों ऐबट नामक एक विद्यार्थी उनसे पढ़ा करता था। आगे चलकर वह जज बन गया। जज ऐबट अपने गुरुके विषयमें लिखते हैं—"एमर्सन बड़े गम्भीर और शान्त रहा करते थे और उनका चेहरा भी बड़ा प्रभावशाली था। उनके व्यक्तित्वमें एक विचित्र मनोहर आकर्षण पाया जाता था। न वे कभी सख्ती करते थे और न कठोर बचन बोलते थे। शारीरिक दंड तो कभी देते ही न थे। कभी किसीको सज़ा देनी होती तो एकाध बात कह देते और उसीका वालकोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता था। किसी

छोटे लड़केने कोई अपराध किया। एमर्सनने उसकी ओर मुँड़कर बड़ी गम्भीरतापूर्वक केवल दो शब्द कहे—'Oh sad'—'आह ! दुखकी बात है।' यह दंड उस लड़केके लिए बहुत काफ़ी था। लड़के उनसे बहुत प्रेम करते थे। एमर्सन अपने विद्यार्थियोंको घरपर पढ़नेके लिए किसी अच्छी पुस्तकका—उदाहरणार्थ प्लूटार्क लिखित जीवन-चरितका—कोई अंश दे दिया करते थे और दूसरे दिन उनसे उसका भावार्थ पूछा करते थे। इससे उन्हें विद्यार्थियोंकी धारणाशक्तिका अनुमान हो जाता था। उनकी आँखोंसे एक विचित्र प्रकारकी दूरदर्शिता प्रकट होती थी। ऐसा ज्ञात होता था, मानों वे किसी दूरकी वस्तु को देख रही हैं। मुझ पर किसी दूसरेका इतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना एमर्सनका।"

ग्रैजुएट हो जानेके बाद कई वर्षतक आपने पादरीगीरीका काम सीखा और ११ मार्च सन् १८१९ में वे पादरी बना दिये गए; पर इस पदपर वे बहुत दिनों तक नहीं रह सके। किसी धार्मिक क्रिया-काण्डके विषयपर उनका मतभेद हो गया और सन् १८३२ में उन्होंने अपने पदसे त्यागपत्र दे दिया। एमर्सन पूर्णस्वाधीनताके समर्थक थे, और अन्तरात्माकी आवाज़को सुनकर तदनुरूप कार्य करना ही उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था। वाह्य आडम्बरों और क्रिया-काण्डोंसे उन्हें बिलकुल सहानुभूति न थी। अपना त्यागपत्र देते हुए उन्होंने लिखा था—"वाह्य क्रिया-काण्डवाले धर्मोंके दिन अब बीत चुके और अब हमें अपनी आत्माका उद्धार ही धर्मका मुख्य अंग मानना चाहिए। यहूदियोंके धर्ममें केवल वाहरी क्रिया-काण्ड ही थे, उसमें शरीर-ही-शरीर था, आत्मा नहीं थी—जीवनका अभाव था। उस समय सर्वशक्तिमान् परमात्माने एक महान् आत्माको* लोगोंको यह सिखलानेके लिए इस भूमिपर भेजा कि परमात्माकी सेवा हृदय द्वारा की

---

*ईसामसीह

जानी चाहिए और सत्पुरुष बनना ही सच्चा धार्मिक जीवन है। यज्ञ तो धुआँ है और बाहरी क्रिया-काण्ड छायामात्र हैं।"

ऐसे उदार विचारवाला आदमी भला गिरजाघरकी चहारदीवारीमें कबतक बन्द रह सकता था? स्वयं एमर्सनके लिए तथा स्वाधीनता-प्रेमी संसारके लिए यह अच्छा ही हुआ कि वे गिरजाघरकी गुलामीसे मुक्त हो गए। यदि वे पादरी बने रहते तो उनका सन्देश बोस्टन नगरके अथवा अपने प्रांतके समाज तक ही परिमित रहता—समुद्रों को पारकर देश-देशान्तरों तक पहुँचनेकी उसमें शक्ति कदापि न होती।

सितम्बर सन् १८२९ में उनका प्रथम विवाह हुआ; पर फरवरी सन् १८३२ में उनकी पत्नीका देहान्त क्षयरोगके कारण हो गया।

सन् १८३३ में एमर्सनने यूरोपकी यात्रा की और वहांके भिन्न-भिन्न नगरोंमें व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानोंने सहस्रों श्रोताओंको मुग्ध कर लिया। एक लेखकने उनके भाषणके प्रभावका वर्णन इन शब्दोंमें किया है—

"इस प्रकारका भाषण ऐडिनबरामें तो पहले कभी सुना नहीं गया था और कितने ही लोग उसे सुनकर दंग रह गये। विचारोंमें अद्भुत मौलिकता थी और जिस भाषामें वे प्रकट किये गए थे, वह और भी मनोहर थी। उनकी चाल-ढालमें शान्त गम्भीरता थी। श्रोताओंपर असर डालनेके लिए वे किसी कृत्रिम हावभाव का आश्रय नहीं लेते थे। उनके भाषणका ढंग सीधा-सादा था और उसमें दम्भ तो नाममात्रको नहीं था। उनका स्वर बड़ा मधुर था और वह अन्तस्तल तक पहुँच जाता था। वैसा स्वर हमने आज तक किसी दूसरेका नहीं सुना।"

"तासु मधुर स्वरकी ध्वनि हिरदै माँहि समाई,
बीत गई बहु बरस अजहुँ लौं परै सुनाई।"

एक दूसरे सज्जन लिखते हैं—"एक दिन हमारे गिरजाघरमें भाषण देनेके लिए एक महात्मा पधारे, जिनके चेहरेसे गम्भीरता और उदारता टपकती थी। उन्होंने इस प्रकार प्रार्थना की, मानों कोई देवदूत प्रार्थना कर रहा हो। हमारा बाजा बहुत सुन्दर था, पर एमर्सनके मधुर स्वरके बाद तो उसका स्वर फीका पड़ गया। भाषणके विषयमें मुझे केवल इतना स्मरण है कि उसमें सादगी और बुद्धिमानीका एक अद्भुत और मनोहर सम्मेलन था। भाषणके बीचमें वे प्रकृतिके दृष्टान्त देते जाते थे, और ऐसे कोमल तथा आकर्षक दृष्टान्त मैंने तो पहले कभी नहीं सुने थे। दार्शनिक दृष्टिसे भाषणमें जो नवीनता और ताज़गी थी, उसे मैं अच्छी तरह भले ही न समझ सका होऊँ, पर वे प्राकृतिक दृष्टान्त खूब अच्छी तरह मेरी समझमें आ गये।"

यूरोपसे लौटनेके बाद एमर्सनने कौनकार्डको अपना निवास-स्थान बना लिया और उनके जीवनका अधिकांश वहींपर व्यतीत हुआ। वहाँसे दूरपर स्थित एक पर्वतकी श्रेणियाँ दीख पड़ती थीं। पास ही एक सुन्दर वन था, विशाल एल्म वृक्ष जिसके गौरवको बढ़ा रहे थे। आस-पास मनोहर तालाब भी थे। वालडेन (Walden) नामक तालाब भी इसके निकट ही था, जिसके नाम पर एमर्सनके सहयोगी सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखक थोरोने अपनी एक पुस्तक लिखी है और जो अमेरिकन साहित्यमें अमर हो चुकी है। एक छोटीसी नदी भी इसके नजदीक थी। कौनकार्डको एमर्सनने इसलिए चुना था कि वहाँ उन्हें एकान्त खूब मिल सकता था और साथ ही बोस्टन नगरके निकट होनेके कारण इच्छा होने पर उन्हें मिलने-जुलनेका अवसर भी मिल जाता था। क्या ही अच्छा हो, यदि हिन्दीके लेखकों तथा कवियोंको ऐसे ही सुन्दर स्थान रहनेके लिए मिलें! साहित्यिक आदमियोंके लिए एकान्तकी तो अत्यन्त आवश्यकता है ही, पर कभी-कभी सत्संगकी भी उन्हें ज़रूरत पड़ जाती है।

एमर्सन प्रकृतिके अत्यन्त प्रेमी थे। वे नित्यप्रति बन-उपवनकी

सैर करनेके लिये जाया करते थे और वहाँ पर जो विचार उनके मनमें आया करते थे, उन्हें नोट कर लेते थे; और फिर इन्हीं विचारोंको मिलाकर वे व्याख्यानोंका रूप दे दिया करते थे, उन्होंने एक जगह लिखा है—

"वन-उपवनको मैं इसलिए जाता हूँ कि वहाँपर प्रकृतिका सन्देश सुनूं। इन विचारोंका जन्मदाता मैं नहीं हूँ, वे मेरे पास आते हैं, और मैं तो केवल उनका रिपोर्टर हूँ। मेरी नोट की हुई चीजोंमें कोई शृंखला नहीं होती, उनसे किसी विशाल भवनका निर्माण नहीं होता, ईंटोंका समूह-मात्र हैं।" इस कथनसे एमर्सनकी नम्रता प्रकट होती है। हरएक आदमी तो वन-उपवनमें जाकर इस प्रकारके सन्देश नहीं सुन सकता। इन संन्देशोंको ग्रहण करनेके लिए भी तो अद्भुत मस्तिष्करूपी यंत्रकी आवश्यकता है, और एमर्सन जैसा मस्तिष्क तो लाखों-करोड़ोंमें एकाधको ही मिलता है। एक जगह एमर्सनने लिखा था—

"I am born a poet—of a low class, no doubt, yet a poet. My singing, be sure, is very husky, and is for the most part in prose. Still I am a poet in the sense of a perceiver and dear lover of harmonies, that are in the soul and in the matter and specially of the correspondencies between these and those. A sunset, forest, a snowstorm, a certain river view, are more to me than many friends, and do ordinarily divide my day with my books.'

अर्थात्—"मैं जन्मतः कवि हूँ—हाँ, यह बात दूसरी है कि मैं निम्न-कोटिका कवि हूँ, पर कवि जरूर हूँ। मैं इस बातको मानता हूँ कि मेरा गाना बड़ा रूखा है, और उसका अधिकांश भाग गद्यमें है, पर मैं अपने को कवि इस दृष्टिसे मानता हूँ कि प्रकृति तथा आत्माकी एकताका मैं

द्रष्टा तथा प्रेमी भी हूँ, और विशेषतः दोनोंकी समानताओंको मैं भलीभाँति देख सकता हूँ। मेरे लिए सूर्यास्त, वन, हिमपात, नदी-तटके दृश्य आदिका महत्त्व मित्रोंसे कहीं अधिक है, और मेरा जितना समय पुस्तक पढ़नेमें बीतता है उतना ही उपर्युक्त प्राकृतिक सौन्दर्योंके निरीक्षणमें।"

राइस और गोल्ड नामक दो विद्यार्थी अपनी बाल्यावस्थामें एक बार एमर्सनके साथ वनकी सैर करनेके लिए गये थे। राइसने, जो आगे चलकर एक प्रान्तके गवर्नर हुए और Honourable Alexander Rice के नामसे हुए, लिखा है—"हम लोग वनके निकट पहुँचे और उस समय हमने अपनी टोपियाँ उतार लीं। एमर्सनने कहा—'बालको! देखो, हमें यहाँपर विश्वात्माके अस्तित्त्वका प्रमाण मिलता है। पवन अपनी भाषामें हमसे पूछती है—कहिये, क्या हालचाल है? कैसी तबियत है? और हम भी सम्मानपूर्वक उसे नमस्कार करते हैं और स्वयं भी उससे यही प्रश्न करते हैं। वृक्षोंकी हिलती हुई डालियाँ यही सवाल करती हैं, पुष्प यही प्रश्न पूछते हैं और शस्यश्यामल क्षेत्रोंसे भी यही ध्वनि निकलती है। कलकल निनाद करता हुआ नाला भी अपने मधुर संगीत द्वारा यही सवाल पूछ रहा है, और सब पशु-पक्षी, जीव-जन्तु—प्रत्येक सजीव पदार्थ—उसी विश्वव्याप्त दैवी भावनाका अनुभव कर रहे हैं, और जब हमारा उनका मेल होता है, तो हम एक-दूसरेका इसी प्रकार अभिवादन करते हैं, और विश्वात्माके अभिवादनका प्रकार भी यही है।'...तत्पश्चात् हम लोग जंगलमें टहलते रहे। टहलते हुये और क्या-क्या बातचीत हुई, इसका मुझे अब स्मरण नहीं रहा, पर एक बात मुझे याद है, वह यह कि उस दिन मैं आश्चर्यसे भरा हुआ घर लौटा और रास्ते-भर मैं विश्वात्माके रहस्यमय स्वप्नका तथा उस अजीव आदमीका, जिसके संसर्गमें आनेका मौका मुझे पहली ही बार मिला था, विचार करता रहा। एमर्सनके इस संसर्गका मुझपर यह प्रभाव पड़ा कि मेरी विचार-धाराको एक नवीन दिशा

मिल गई, और जीवन-भर मुझे उससे अत्यन्त आनन्द मिलता रहा तथा इसी संसर्गके द्वारा मुझे कोरमकोर धार्मिक सिद्धान्तों तथा आत्माकी असली धार्मिकताके बीचका अन्तर समझनेकी शिक्षा मिली।"

मई १९३२]

: ८ :

उपन्यासकार तुर्गनेव

जिन रशियन लेखकोंकी प्रतिभाके कारण रूसी साहित्य संसारके अन्य भाषा-भाषियोंके आदरका पात्र बना है, उनमें टालसटाय, तुर्गनेव, डोस्टोवस्की, गार्की और चैखवके नाम विशेषतः उल्लेख-योग्य हैं। इनमें टालसटायके अनेक ग्रन्थोंका हिन्दीमें अनुवाद हो चुका है और हिन्दी भाषा-भाषी उनसे काफ़ी परिचित भी हैं। उनके कई जीवन-चरित भी देशी भाषाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। डोस्टोवस्कीका भी कोई उपन्यास हिन्दीमें अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुका है। गार्कीके एक उपन्यासका हिन्दी अनुवाद अभी छपा है, चैखवकी एकाध कहानी कहीं छपी हमने देखी है, पर तुर्गनेवकी ओर हिन्दी-जनताका ध्यान अभी अधिक नहीं गया है। हिन्दी भाषा-भाषियोंका कर्तव्य है कि जहाँ वे मौलिक ग्रन्थोंसे अपने साहित्यके भांडारकी पूर्ति करें, वहाँ साथ-ही-साथ संसारके साहित्यके उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद भी हिन्दीमें प्रकाशित करें। जगतके उन महारथियोंमें, जिनके ग्रन्थ केवल एक प्रान्त या एक देशके लिए ही निर्मित नहीं होते, बल्कि जिनके भाव समुद्रों, वनों और महाद्वीपोंकी दूरीको चीरते हुए प्रत्येक सहृदय मनुष्यके अन्तस्तल तक पहुँचनेकी शक्ति रखते हैं—तुर्गनेवकी गणना निस्संकोच की जा सकती है।

तुर्गनेवका जन्म २८ अक्टूबर सन् १८१८ में आर्यल नामक स्थानमें हुआ था। उनकी माताका नाम वार्वरा पैट्रोवना और पिताका नाम लेफ़्टिनेन्ट तुर्गनेव था। माताके यहाँ काफ़ी धन-सम्पत्ति थी। हज़ारों एकड़ भूमि और पाँच हज़ार दास-दासियाँ थीं। पिताका शरीर गठा

हुआ और कन्धे चौड़े थे। वे लम्बे क़दके फ़ौजी आदमी थे। माता भोग-विलासप्रिय और सदा अस्वस्थ रहनेवाली थीं। तुर्गनेवके शरीरका गठन तो अपने पिताके तुल्य था, पर स्वास्थ्यपर माताकी अस्वस्थताका ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था।

चार वर्षकी उम्रमें तुर्गनेवको अपने माता-पिताके साथ जर्मनी, फ्रान्स और स्विट्जरलैण्ड आदि देशोंकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नौ वर्षकी अवस्था तक तुर्गनेवको ग्राम्य जीवन व्यतीत करना पड़ा। माता-पिताकी ज़मींदारी थी, सैकड़ों दास-दासियाँ थीं और सुखके साधनोंकी कोई कमी नहीं थी। आसपासका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहर था। घरसे निकलकर वह खेतों तथा उपवनोंकी सैर किया करते थे। कहीं गिल-हरियोंको एक डालसे दूसरी डालपर उछलते देखते तो कहीं सुन्दर पुष्पोंकी सुगन्ध लेते, कभी तालाबमें मछलियोंको अपने हाथसे आटा खिलाते तो कभी नावमें बैठकर सरोवरकी सैर करते। भाँति-भाँतिके पक्षियोंका मधुर कलरव उसके कानोंको प्रिय हो गया था और नाना प्रकारके वृक्षोंसे मानों उन्होंने मैत्री स्थापित कर ली थी। बाल्यावस्थाके संस्कार जीवन-भर रहते हैं। तुर्गनेवके उपन्यासोंमें प्राकृतिक दृश्योंका जो मनोहर वर्णन स्थान-स्थानपर मिलता है, उसके मूलमें बाल्यावस्थाके ये संस्कार ही थे।

तुर्गनेवके माता-पिताका कोई आदर्श जीवन नहीं था। नौकर-चाकरों-की भरमार थी। अतिथियोंका आवागमन रहता था। दैनिक कार्यक्रम असंयमी ज़मींदारोंकी तरहका था। प्रातःकाल लोमड़ीके शिकारमें बीतता, दोपहरको डटकर भोजन और विश्राम होता और सन्ध्याके समय घरपर ही नाटक या नाच होता। उनके पिताजी कोई विशेष चरित्रवान् व्यक्ति न थे। कम-से-कम वे एकपत्नीव्रतके तो क़ायल नहीं थे और अनेक दासियोंसे उनके अनुचित संबंधकी बात कही जाती है। आदमी सीधे-सादे और लापरवाह थे। चूँकि उन्होंने एक धनाढ्य लड़कीसे विवाह किया था, इसलिए अपनी पत्नीका रौब उनपर ग़ालिब रहता था। तुर्गनेवकी

माताका स्वभाव बहुत ही खराब था। दयाका तो उनमें लेश नहीं था। ज़रासे अपराध पर दास-दासियोंको कोड़े लगवाना उनके लिए मामूली-सी बात थी। कहा जाता है कि एक बार दो किसानोंको उन्होंने साइबेरिया भेजे जानेकी (जो काले पानीके समान भयंकर दंड था) सज़ा दी थी। उन बेचारोंका अपराध केवल इतना ही था कि जिस समय वह बग़ीचेमें टहलने आई थीं, उस समय कार्यमें व्यस्त होनेके कारण वे उन्हें सलाम करना भूल गये थे। एक बार तुर्गनेवके बड़े भाईके किसी अपराध पर तुर्गनेवकी माताने अपने हाथसे उसके चूतड़ोंपर दस कोड़े जमाये और स्वयं इस भयंकर कार्यको करते हुए बेहोश-सी हो गई। वह बच्चा नंगे-बदन खड़ा हुआ काँप रहा था। माँकी यह दशा देखकर वह अपना रोना बन्दकर चिल्लाने लगा—"अरे! अम्माको पानी लाओ, पानी लाओ।"

तुर्गनेवने बड़े होनेपर एक बार कहा था—"यदि मुझसे छोटा-सा भी कसूर बन् जाता तो पहले तो मेरे शिक्षक मुझे डाँट-फटकार बताते, उसके बाद मुझपर कोड़े पड़ते। खाना बन्द कर दिया जाता और मुझे बग़ीचेमें भूखे घूमना पड़ता! आँसू बह-बहकर मेरे मुँहमें आते और मैं उनका नमकीन स्वाद लेकर अपनेको सन्तुष्ट कर लेता!" माताकी यह कठोरता तुर्गनेवको जीवन-भर नहीं भूली। तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' में जिस क्रूर-स्वभाव स्त्रीका चित्र खींचा है, वह सम्भवतः उनकी माताका ही चरित्र-चित्रण है।

एक बार तो माताके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर तुर्गनेवने घरसे निकल भागनेका विचार कर लिया था। यही नहीं, बल्कि एक रातको बारह बजे वे घरसे चल भी दिये थे, पर जर्मन पढ़ानेवाले एक शिक्षकने उन्हें घरसे बाहर जाते देख लिया और समझा-बुझाकर रोक लिया। माताके अत्याचारोंका बालक तुर्गनेवके स्वभावपर बड़ा असर पड़ा, उसके पेटमें धधका बैठ गया, स्वतंत्र-रूपसे कार्य करनेकी प्रवृत्ति ही जाती रही। तुर्गनेवमें अपने अधिकारोंके लिए लड़ने-झगड़नेके साहसका जो

अभाव था, उसका मूल कारण यही था कि लड़कपनमें अपनी माताके अत्याचारोंको देखते-देखते उनकी इच्छा-शक्ति निर्बल हो गई थी।

बाल्यावस्थामें भी तुर्गनेवमें चीज़ोंके सौन्दर्य अथवा कुरूपताकी जाँच करनेका गुण दृष्टिगोचर होता था। एक बार राज-घरानेकी एक बुढ़िया तुर्गनेवकी मातासे मिलने आई। माताने बड़े डरते हुए अपना बालक उनकी गोदमें दिया। थोड़ी देरतक उस बुढ़ियाकी शकल-सूरत देखकर तुर्गनेवने कहा—"तुम तो बिलकुल बँदरिया हो।" बात सोलह-आना ठीक थी। उस वक़्त तो तुर्गनेवकी माता चुप रही, पर पीछे उसने ख़ूब कोड़े जमाये!

एक बार कोई थर्ड-क्लास कहानी-लेखक तुर्गनेवके घरपर पधारे। बालक तुर्गनेवने अबतक रूसी भाषाके किसी लेखकके दर्शन नहीं किये थे। माताने कहा—"अच्छा, इस कहानीको पढ़कर सुनाओ तो सही।" कहानी उन्हीं लेखक महोदयकी थी। तुर्गनेवने कहानी तो पढ़कर सुना दी। फिर आप लेखक महाशयके मुँहपर ही बोले—"आपकी कहानी अच्छी तो है, पर क्राइलोबकी कहानियाँ आपसे अच्छी होती हैं।" इस समालोचना-प्रवृत्तिका दुष्परिणाम तुर्गनेवकी पीठको भोगना पड़ा, जिसकी याद उन्हें बहुत दिनों तक रही! बड़े होनेपर एक बार तुर्गनेवने कहा था— "उस कहानी-लेखकके मुँहपर ही इस तरहकी सच बात कह देनेकी वजहसे मेरी माँ बहुत ही नाराज़ हो गईं और मुझे इतने अधिक कोड़े लगाये कि अपनी मातृ-भाषाके लेखककी प्रथम भेंटको मैं ज़िन्दगी-भर नहीं भूल सकता।"

जिस तरह आजकल हिन्दुस्तानमें बड़े-बड़े शिक्षितोंके कुटुम्बोंमें अंग्रेज़ीपनकी बू घुस जाती है, उसी प्रकार उन दिनों रूसमें फ्रेंच भाषाकी इज्ज़त थी। रूसी भाषाको स्वयं रूसी लोग गँवारू भाषा समझते थे। तुर्गनेवको प्रारम्भमें फ्रेंच तथा जर्मन भाषाका अभ्यास कराया गया था। तुर्गनेव ने रूसी भाषा अपनी दास-दासियोंके संसर्गसे ही

सीखी। शायद किसी नौकरने ही उन्हें रूसी भाषा लिखना-पढ़ना सिखलाया। आठ वर्षकी उम्रमें उन्होंने अपने एक नौकरके लड़केके साथ अपने घरकी पुरानी अलमारीमेंसे रूसी भाषाकी कविताकी कुछ किताबें चुराकर पढ़ना प्रारम्भ कर दिया।

नौ वर्षकी उम्रमें तुर्गनेव अपने माता-पिताके साथ मास्को चले आये और वहाँ वे एक छात्रालयमें भर्ती करा दिये गए। यहींपर सन् १८२९ में उन्होंने अंग्रेजी भाषाका अध्ययन प्रारम्भ किया। आगे चलकर अंग्रेज़ी भाषाके ज्ञानके कारण उन्हें शेक्सपियर, शेली, कीट्स और बायरन इत्यादि कवियोंकी कविताका आनन्द लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके बाद घरपर ही पढकर उन्होंने मास्को-विश्वविद्यालयकी मैट्रिककी परीक्षा दी। उस समय उनकी उम्र १४ वर्षकी थी। इसके बाद वे विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। वहाँ उनका मुख्य विषय था इतिहास और दर्शनशास्त्र। संयुक्तराज्य अमेरिकाके प्रति उनके हृदयमें विशेष प्रेम था, इसलिए साथके लड़के उन्हें मज़ाकमें 'अमेरिकन' कहा करते थे। इसके बाद वे सेन्ट पीटर्सबर्गके विश्वविद्यालयमें भर्ती हुए। इन्ही दिनों उनके पिताकी मृत्यु हो गई। उस समय उनकी माता इटलीमें स्वास्थ्य-लाभ करनेके लिए गई हुई थीं।

दास-दासियोंसे जहाँ तुर्गनेवको रूसी भाषाका ज्ञान प्राप्त हुआ, वहाँ उन्हें दुश्चरित्रताकी शिक्षा भी इन्हीं दास-दासियोंने दी। बड़े घरोंके लड़कोंको नौकर-चाकर ही अक्सर बदचलन बना देते हैं। तुर्गनेवके असंयमित जीवनका कारण वे ही हुए। तुर्गनेवके चरित-लेखकने उनकी यौवनावस्थाके अनेक घासलेटी किस्से लिखे हैं, जिन्हें यहाँ उद्धृत करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुर्गनेवने विवाह नहीं किया और अपने जीवन-भर वे प्रेममें ही फँसते रहे—कभी किसी दासीसे प्रेम किया तो कभी किसी विवाहिता स्त्रीसे, और कभी किसी ऐक्ट्रेस या नटीसे ही! आगे चलकर तुर्गनेवके जीवनमें जो निराशाके दृश्य देखनेमें आते हैं, उनका मुख्य कारण यही संयम-हीनता ही प्रतीत होती है। इस विषयपर हम

अधिक नहीं लिखना चाहते। केवल एक पत्रका, जो तुर्गनेवने एक नवयुवक साहित्य-सेवीको लिखा था, कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

"बड़े खेदकी बात है कि तुम किसी एक लड़कीके ही प्रेममें उन्मत्त हो गये हो। यदि किसी ऐसी लड़कीसे जो स्वभावमें बिलकुल विपरीत हो, विवाह हो जाय, तो इससे लेखकको कुछ मसाला मिल भी सकता है, पर विवाह करके निश्चिन्ततासे वैवाहिक जीवन व्यतीत करनेमें कुछ मज़ा नहीं है। कलाकी उन्नतिके लिए कामेच्छाका तृप्त करना उतना आवश्यक नहीं है, जितना भिन्न-भिन्न स्थानोंसे रस ग्रहण करना। कम-से-कम मुझे तो लिखनेमें तभी आनन्द आता है, जब किसीसे प्रेम-सम्बन्ध चलता रहे, खास तौरसे किसी विवाहिता स्त्रीसे, जो अपनेको संयमित रख सके और अपना प्रबन्ध भी आप कर सके!"

तुर्गनेवके इस सिद्धान्तका अनुगमन भिन्न-भिन्न देशोंके भिन्न-भिन्न लेखकोंने किया है। हमने सुना है कि हमारे यहाँ भी एकाध ऐसे लेखक उत्पन्न हो गये हैं, जो इस प्रकारके विचार रखते हैं, पर निस्सन्देह यह मार्ग पतनका है। शक्ति संयममें है, असंयममें नहीं। जो लोग महापुरुषोंके दुर्गुणोंकी नक़ल करके स्वयं महापुरुष बनना चाहते हैं, वे वास्तवमें अपनेको गड्ढेमें गिराते हैं।

सेन्ट पीटर्सबर्गके विश्वविद्यालयमें पढ़नेके कुछ वर्ष बाद तुर्गनेव बर्लिन (जर्मनी) पढ़नेके लिए गये। तीन वर्ष तक वहाँ रहकर आपने बर्लिन-विश्वविद्यालयसे मैट्रिककी परीक्षा पास की और फिर दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू किया। यहींपर उनकी मुलाक़ात सुप्रसिद्ध अराजकवादी बाकूनिनसे हुई और दोनोंमें घनिष्ट मित्रता भी हो गई।

दर्शनशास्त्रकी परीक्षामें वे बड़ी योग्यता-पूर्वक पास तो हो गये, पर उनका मन पढ़नेमें लगता नहीं था। उनकी माता यह चाहती थी कि मेरा लड़का भी एम० ए० पास हो जाय, पर तुर्गनेवकी रुचि डिग्रियोंकी ओर बिलकुल नहीं थी। घरसे माताके पाससे जो रुपया आता था, वे

उसे नाटक देखनेमें उड़ा देते थे और अपने मित्र बाकूनिनके कर्ज़दारोंको भी दे दिया करते थे ! बर्लिनमें तुर्गनेव कभी किसी प्रसिद्ध साहित्यिक क्लबमें बातचीत करते हुए पाये जाते थे तो कभी किसी प्रसिद्ध ऐक्ट्रेसके साथ भोजन करते हुए !

तुर्गनेवने सत्रह-अठारह वर्षकी उम्रमें कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। पहले तो उनकी माता इससे बड़ी प्रसन्न हुईं और अपने लड़केको बड़ी बधाई भी दी, पर पीछे जब तुर्गनेवने उससे कहा—"मेरी किताबकी आलोचना हुई है"—तो वह रोने लगी और बोली—"यह बुरी बात है। कहाँ ऊँचे खानदानके बेटा तुम ! और कहाँ वह पुरोहितका छोकरा, जिसने तुम्हारी किताबके बारेमें लिखा है !" तुर्गनेवकी माताकी समझमें लेखकका पेशा कोई बहुत सम्मानप्रद नहीं था। वह कहा करती थी कि लेखककी वृत्ति भले आदमियोंके लायक़ नहीं।

तुर्गनेवकी प्रथम पुस्तक 'एक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त'में रूसके ग्राम्य जीवनके दृश्य बड़ी करुणाजनक भाषामें दिखलाये गये थे। इसमें दास-दासियोंकी दुर्दशाका चित्र छोटी-छोटी कहानियों द्वारा ऐसी सहृदयताके साथ खींचा गया था कि उन्हें पढ़कर जनताका हृदय द्रवित हो गया। रूसके ज़ारसे लेकर साधारण पाठकों तकने इस पुस्तकको पढ़ा और गुलामोंकी दशापर चार आँसू बहाये। इसमें सन्देह नहीं कि वहांकी दासत्व-प्रथाको बंद करानेमें इस पुस्तकने बड़ी मदद दी थी। तुर्गनेवने एक बार कहा था—"खुद रूसी सम्राट् अलेक्जेण्डरने यह खबर मेरे पास भिजवाई थी कि दासत्व-प्रथाको बन्द करनेमें अन्य कारणोंके साथ एक कारण मेरी पुस्तक 'एक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त' का पढ़ना भी था।" इस पुस्तकने रूसी साहित्य-संसारमें उनकी धाक जमा दी और उनके उत्साहको दुगुना कर दिया। इस पुस्तककी कहानियाँ पत्रोंमें पहले अलग-अलग प्रकाशित हुई थीं।

सन् १८५२ में सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी गोगलका स्वर्गवास हो गया।

उनके विषयमें तुर्गनेवने सेन्ट पीटर्सबर्गके किसी पत्रके लिए एक लेख लिखा, पर सरकारी सेन्सरने इस लेखको अस्वीकृत करके छपनेसे रोक दिया। तुर्गनेवने उसी लेखको मास्को भेज दिया। मास्कोके सरकारी सेन्सरने उसे पास कर दिया। उसे इस बातका पता नहीं था कि यह लेख सेन्ट पीटर्सबर्गके सेन्सर-द्वारा अस्वीकृत हो चुका है। मास्कोमें जब यह लेख प्रकाशित हुआ तो पुलिसको बड़ा क्रोध आया। मामला रूसी ज़ारके कानों तक पहुँचा। उन्होंने हुक्म निकाल दिया कि तुर्गनेवको पकड़कर जेलमें ठेल दिया जाय। तुर्गनेवको कारावासका दंड मिला। इससे उनकी लोक-प्रियता बढ़ गई। जहाँ देखो, वहाँ—सड़कपर, बाज़ारमें, होटलोंमें और घर-घरमें—तुर्गनेवकी चर्चा होने लगी। जिस जेलमें उन्हें रखा गया था, उसकी सड़कपर तुर्गनेवके मित्रोंकी गाड़ियोंका ताँता लगा रहता था। कितनी ही युवतियाँ और युवक जेलख़ानेमें तुर्गनेवके दर्शनके लिए गये। यहीं जेलमें ही तुर्गनेवने अपनी सुप्रसिद्ध कहानी 'मूमू' लिखी थी, जिसे कार्लाइलने संसारकी सबसे अधिक करुणाजनक कहानी बतलाया था। तुर्गनेवको एक महीनेके जेलखानेके बाद रूसी ज़ारने हुक्म दिया—"ये अपने ग्राममें अपनी ही कोठीमें नज़रबन्द किये जायँ और इनपर पुलिसकी निगरानी रखी जाय।" तुर्गनेव इस प्रकार अपने घरपर ही क़ैद कर दिये गए! उन्होंने अपने किसी मित्रको एक पत्रमें लिखा था—"मैं अभी पूर्णतया मृत अवस्थाको प्राप्त नहीं हुआ, पर जैसी गम्भीर शान्तिमें मुझे यहाँ रहना पड़ता है, उससे मैं अनुमान कर सकता हूँ कि क़ब्रमें कैसी शान्ति रहती होगी।"

तुर्गनेवने जितने ग्रन्थ प्रकाशित किये, उन सबका अंग्रेज़ीमें अनुवाद हो गया है और यह ग्रन्थमाला William Heinemann. लन्दनसे मिल सकती है। अंग्रेज़ीमें अनुवादित ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

(1) 'Rudin'

(2) 'A House of Gentlefolk'

(3) 'On the Eve'
(4) 'Fathers and Children'
(5) 'Smoke'
(6) 'Virgin Soil'
(7) 'A Sportsman's Sketches' इत्यादि।

ये सब ग्रन्थ सत्रह भागोंमें प्रकाशित हुए हैं। इनमें तेरह-चौदह भाग पढ़नेका सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। उपन्यास तथा गल्पोंकी रचनाके विषयमें हमारा ज्ञान न-कुछके बराबर है और हमने इस प्रकारका साहित्य पढ़ा भी बहुत कम है, फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि मानव-स्वभावकी भिन्न-भिन्न दशाओंका चित्रण करनेमें जिस हद तक तुर्गनेव सफल हुए हैं, उस हद तक पहुँचना किसी भी अच्छे-से-अच्छे लेखकके लिए अत्यन्त कठिन है। उन्नीसवीं शताब्दीके सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारोंमें उनकी गणना की जाती है और किसी-किसीका तो यह भी मत है कि उस शताब्दीके सर्वोत्तम कलाकारका पद तुर्गनेवको ही मिलना चाहिए।

तुर्गनेवमें सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनकी रचनाओंको पढ़ते हुए कभी जी नहीं उकताता। वह अनावश्यक विवरणोंसे अपने पृष्ठोंको नहीं भरते। विक्टर ह्यूगोके सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ला मिज़रेबिल्स' को पढ़ते समय बीच-बीचमें कभी लम्बे-लम्बे वृत्तान्तोंसे तबीयत ऊब जाती है और ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य घटना-सूत्र हमारे हाथसे छूट गया! तुर्गनेवमें बड़ा भारी गुण यह है कि उनकी रचनाएँ पाठकके हृदयको इतना अधिक आकृष्ट कर लेती हैं कि वह उनको बिना समाप्त किये छोड़ नहीं सकता। तुर्गनेव न कभी कोई भद्दी बात कहते हैं और न कोई अनावश्यक प्रसंग ही लाते हैं। शान्त समुद्रमें जब कोई जहाज़ बिना हिले-डुले चला जा रहा हो तो उस अवसरपर जहाज़के यात्रियोंको जो सुख होता है, वही सुख तुर्गनेवकी रचनाओंमें है। तुर्गनेवके ग्रन्थोंको पढ़ना, मानों एक अत्यन्त सभ्य महापुरुषसे वार्तालाप करना है। एक निपुण चित्रकारकी भाँति

वे एकके बाद एक सुन्दर-से-सुन्दर चित्र खींचते जाते हैं और दर्शक उन्हें देखकर 'वाह! वाह!' कहने लगता है। तुर्गनेवने अपने समयके रूसी युवकों तथा युवतियोंके मनोभावोंका विश्लेषण बड़ी ख़ूबीसे किया है और उन्हें पढ़कर तत्कालीन रूसी जीवनका चित्र हृदयपटलपर खिंच जाता है। तुर्गनेव करुण-रस लिखनेमें सिद्धहस्त थे और विषादकी एक हृदयवेधक रेखा उनकी सम्पूर्ण रचनाओंमें चित्रित दीख पड़ती है। जनता हमारे ग्रन्थोंको पढ़कर प्रसन्न होगी या नाराज़, यह ख़याल तुर्गनेवके दिमाग़में कभी नहीं आया और इसी कारण जो कुछ उन्होंने लिखा है, उसमें स्थायित्व है।

जब तुर्गनेवका उपन्यास 'पिता और पुत्र' (Fathers and Children) प्रकाशित हुआ था तो रूसी नवयुवक-समाजमें एक प्रकारकी हलचल-सी मच गई थी। रूसमें उस समय नवयुवकोंका एक दल बन गया था, जो 'निहिलिस्ट' कहलाते थे। वे लोग दम्भ और पाखंडके विरोधी थे, 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' की नीतिके प्रति उन्होंने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया था और झूठे शिष्टाचारोंको तिलांजलि दे दी थी। दासत्व-शृंखलाओंको तोड़ डालनेके लिए क्रान्तिके प्रारम्भमें उत्पन्न हुए नवयुवकों-के हृदयमें जो बेचैनी हुआ करती है, वही बेचैनी उन 'निहिलिस्ट' लोगोंमें थी। तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' ('Fathers and Children') में मुख्य नायक 'बेज़ेरोव' निहिलिस्टका जो चित्र खींचा गया था, वह नवयुवकोंको बहुत बुरा जँचा और उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों तुर्गनेवने उनका मज़ाक उड़ाया है! इससे तुर्गनेवकी लोक-प्रियताको बड़ा धक्का लगा। युवक-समाज हर जगह उनकी निन्दा करने लगा, पर तुर्गनेव एक सच्चे कलाकारकी तरह अपने मतपर अटल रहे। उन्होंने कहा भी था—"बेज़ेरोवके चरित्र-चित्रणमें मीठी-मीठी बातें कहकर मैं आसानीके साथ रूसी नवयुवकोंको अपने पक्षमें ला सकता था, पर मैंने ऐसा करना अनुचित समझा।" तुर्गनेवके इस कार्यसे हमें यही शिक्षा मिल सकती

है कि सच्चे कलाकारको कभी—'जैसी वहै बयार, पीठ तब तैसी दीजै' के सिद्धान्तका अनुकरण न करना चाहिए। कलाकारकी अटल श्रद्धा अपनी कलाके प्रति ही होना चाहिए। आज जो उसकी निन्दा करते हैं, कल वे ही उसकी प्रशंसा करने लगेंगे।

तुर्गनेवकी रचनाओंपर उनके व्यक्तित्वकी गहरी छाप पड़ी हुई है और ऐसा प्रतीत होता है कि जो कुछ उन्होंने लिखा है, वह गम्भीर अनुभवके बाद और अपने सुसंस्कृत हृदयसे। कहीं उन्होंने लेक्चर झाड़नेका प्रयत्न नहीं किया, जैसा कि नवयुवक उपन्यास-लेखक प्रायः किया करते हैं और न कहीं उपदेशक बननेकी चेष्टा की। यदि आप कुछ शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं तो उन चरित्रोंसे करें, जिनका वर्णन उपन्यासोंमें आया है। तुर्गनेवने जिन पात्रोंकी रचना की है, उनके साथ उन्होंने वैसे ही प्रेमका और गम्भीरतापूर्ण बर्ताव किया है, जैसे कोई अपने पुत्र-पुत्रियोंसे करता है! क्या मजाल कि एक भी भद्दा शब्द उनके मुँहसे निकल जाय! अपनी संस्कृति द्वारा तुर्गनेव संसारके बड़े-बड़े उपन्यास-लेखकोंसे आगे बढ़ जाते हैं।

यद्यपि तुर्गनेवके उपन्यास 'पिता और पुत्र' के कारण उनके और क्रान्तिकारी नवयुवकोंके बीचमें ग़लतफ़हमीकी एक दीवार-सी खड़ी हो गई थी, पर तुर्गनेवके हृदयमें अत्याचारके उन विरोधियोंके प्रति सम्मान ही रहा। तुर्गनेवके जीवनके बहुतसे वर्ष स्वदेशसे बाहर जर्मनी अथवा फ्रान्समें बीते और वहाँ उन्हें रूससे भागे हुए क्रान्तिकारियोंसे मिलनेके क़ाफ़ी अवसर प्राप्त हुए। तुर्गनेव स्वयं खून-खच्चरके विरोधी थे, पर वे उन नवयुवकोंके, जो अपनी जान हथेलीपर लिये फिरते थे, साहसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते थे। जितने भी क्रान्तिकारी उन्हें मिल सके, उनसे वे अवश्य मिले थे। यही नहीं, वे रुपये-पैसेसे उनकी मदद भी करते थे। कम-से-कम तीन साल तक उन्होंने जेनेवासे निकलनेवाले एक क्रान्तिकारी पत्रको पांच सौ फ्रांककी वार्षिक सहायता दी थी। जिस समय रूसी

क्रान्तिकारी प्रिन्स क्रोपाटकिन जेलसे भागकर यूरोप चले आये थे, उस समय तुर्गनेवने एक प्रस्ताव किया था कि इस सुअवसरपर उन्हें एक भोज देना चाहिए।

प्रिन्स क्रोपाटकिनने अपने आत्म-चरितमें लिखा है—"मेरे मित्र पी० एल० लैवरोफसे तुर्गनेवने कहा, मुझे क्रोपाटकिनसे मिलाओ। मेरे रूसके जेलखानेसे सही-सलामत भाग निकलनेके उपलक्षमें उन्होंने मुझे भोज भी दिया, जिसमें थोड़ेसे मित्र एकत्रित हुए थे। मैंने बड़ी श्रद्धापूर्वक तुर्गनेवके कमरेमें पैर रखा, क्योंकि मैं उन्हें अपना पूज्य मानता था। उन्होंने अपनी पुस्तक शिकारीके भ्रमण-वृत्तान्त द्वारा रूसकी दासत्व-प्रथाके दोषोंका भंडाफोड़ करके मातृभूमिकी बड़ी सेवा की थी। रूसी स्त्रियोंका चरित्र-चित्रण करनेमें तो उन्होंने कमाल कर दिखलाया है। रूसी स्त्री-समाजके हृदय और मस्तिष्कमें कौन-कौन अद्भुत शक्तियाँ छिपी हुई हैं और वे पुरुषोंको कितना अधिक प्रोत्साहित कर सकती हैं, यह बात उन्होंने अपने उपन्यासोंमें अच्छी तरह दरसा दी है। मुझपर और मेरे साथी सहस्रों ही रूसी नवयुवकोंपर उनके उपन्यासोंमें वर्णित रूसी स्त्रियोंके चरित्रोंका जो अमिट प्रभाव पड़ा है, वह स्त्रियोंके अधिकारोंपर लिखे हुए अच्छे-से-अच्छे लेखों द्वारा भी नहीं पड़ सकता था।....एक बार तुर्गनेवने मुझसे पूछा था—'तुम मिश्किन नामक अराजकवादीको जानते हो? मैं उसके बारेमें पूरा-पूरा हाल जानना चाहता हूँ। वह एक आदमी था, जिसमें निराशावादका नामोनिशान नहीं था।' मिश्किनपर रूसी सरकारने सन् १८७८ में मुकदमा चलाया था। हमारे साथी अराजक-वादियोंमें उसका व्यक्तित्व बड़ा ज़बरदस्त था। उन्नीसवीं शताब्दीके औपन्यासिकोंमें कलाकी दृष्टिसे इतनी अधिक श्रेष्ठता किसीने प्रदर्शित नहीं की, जितनी तुर्गनेवने। उनकी गद्य-रचनाएँ हम रूसी आदमियोंके लिए सुन्दर-से-सुन्दर संगीतकी अपेक्षा भी अधिक मधुर तथा कर्णप्रिय हैं।"

कहा जाता है कि तुर्गनेवने अपने पास उन रूसी क्रान्तिकारियोंके

चित्रोंका संग्रह कर रखा था, जिन्हें ज़ारकी सरकारने फाँसीपर लटका दिया था।

तुर्गनेवके जीवनमें सबसे सुन्दर बात हमें उनकी साहित्य-सेवियोंकी सहायता करनेकी प्रवृत्ति प्रतीत होती है। कितने ही नवयुवक लेखकोंको प्रोत्साहित करके उन्होंने आदमी बना दिया। वे अपने साथी लेखकोंकी कीर्तिके लिए भरपूर प्रयत्न करते थे और कभी-कभी तो इसके वास्ते उन्हें अपनी गाँटसे भी बहुत-कुछ खर्च करना पड़ता था। कभी किसी लेखकका विदेशी पुस्तक-प्रकाशकोंसे परिचय कराते थे, तो कभी किसीकी पुस्तककी भूमिका लिखते थे। कभी अनुवाद करते थे और कभी मित्रोंके किये हुए अनुवादोंका संशोधन करते थे। अनेक ग्रन्थकारोंको उन्होंने इस उम्मीदपर कि आगे चलकर उनकी पुस्तक बिकनेपर हमारे रुपये वापस मिल जायँगे, बहुतसा रुपया उधार दे दिया था। ग्रन्थकारोंके साथ उनकी इतनी अधिक व्यापक सहानुभूति थी कि वे न केवल रूसी साहित्य-सेवियोंकी ही, बल्कि फ्रेंच और जर्मन साहित्य-सेवियोंकी भी उसी निःस्वार्थ भावसे सहायता करते थे। यूरोपके भिन्न-भिन्न भाषाओंके लेखकों और भिन्न-भिन्न देशोंके प्रकाशकोंमें वे एक प्रकारके अन्तर्राष्ट्रीय अवैतनिक दलाल बन गये थे; यही नहीं, बल्कि कभी-कभी तो अपनी गाँठसे पैसा ख़र्च करके वे यह काम किया करते थे! उनकी उस अनुपम सेवाका कारण यही था कि वे सच्चे-साहित्य-प्रेमी थे, हृदयके उदार थे और ईर्ष्या तो उनके स्वभावको छू तक नहीं गई थी। इसके सिवा एक बात और थी, वह यह कि उनके मुँहसे किसीको 'ना' नहीं निकलती थी। फ्रेंच लेखक मोपासाँको उन्होंने बहुत-कुछ सहायता दी थी। उन्होंने किसी फ्रेंच लेखककी फरांसीसी पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें कराया और उसका स्वयं ही संशोधन किया। जब कोई रूसी प्रकाशक उस पुस्तकको छापनेके लिए राज़ी न हुआ तो आपने ग्रन्थकार महोदयको अपने पाससे एक हज़ार फ्रांक दे दिये। किसी-किसी लेखकको वे बड़े विचित्र ढंगसे मदद देते थे।

वे उनके लेखको किसी पत्रके पास भेजते और उस पत्रके सम्पादकको अपने पाससे रुपये भी भेज देते और यह कह देते कि ये लेखक महोदयको पत्रकी ओरसे पुरस्कारके रूपमें भेज दिये जायँ ! एक फ्रेंच लेखक बड़े कष्टमें थे। आपने उनकी पुस्तकका अनुवाद रूसी भाषामें किया और जो कुछ रुपया पुरस्कारमें मिला, उसे लेखकको दे दिया !

क्याही अच्छा हो यदि हमारी मातृभाषाके साधन-सम्पन्न साहित्य-सेवी तुर्गनेवके इस गुणका अनुकरण करें।

तुर्गनेव और टाल्सटायके स्वभावमें बड़ा अन्तर था। तुर्गनेवके लिए सर्वोच्च वस्तु कला थी, टाल्सटायके लिए जीवन-सुधार। महाकवि अकबरके शब्दोंमें—"सख़ुन उनसे सँवरता है, सख़ुनसे मैं सँवरता हूँ" वाली बात थी। अपनी युवावस्थामें टाल्सटायका जीवन भी बहुत काफ़ी असंयमी रहा था, पर पीछे उन्होंने अपनेको बड़ी ख़ूबीसे सम्हाला। तुर्गनेवका जीवन सदा शाहाना ढंगका ही रहा। तुर्गनेव उम्रमें टाल्सटायसे बड़े थे। युवावस्थामें टाल्सटायके जीवनपर भी तुर्गनेवकी रचनाओंका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। ख़ुद अपने लड़कोंको टाल्सटायने यही सलाह दी थी कि तुम तुर्गनेवके उपन्यास पढ़ो, उनसे बढ़िया किसी दूसरी चीज़की सिफ़ारिश मैं नहीं कर सकता। तुर्गनेव भी टाल्सटायके बड़े प्रशंसक थे, पर इन दोनोंके बीच मित्रताका सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका ! दूरसे तो वे एक-दूसरेके प्रति प्रेम रख सकते थे, पर मुलाक़ात होते ही दोनोंमें झगड़ा हो जाता था ! इस झगड़ेका कारण दोनोंकी प्रकृतिकी भिन्नताके सिवा टाल्सटायका झक्कीपन भी था। युवावस्थामें टाल्सटायके स्वभावमें एक बड़ी त्रुटि यह थी कि वे बैठे-ठाले दूसरोंसे झगड़ा मोल लिया करते थे। टाल्सटाय तथा तुर्गनेव दोनोंके जीवन-चरितोंमें इन झगड़ोंका विस्तृत-वृत्तान्त पाया जाता है; पर अन्तमें दोनोंमें फिर मेल हो गया था। जब तुर्गनेव पेरिसमें मृत्युशय्यापर पड़े हुए थे, टाल्सटायने उन्हें निम्न-लिखित पत्र भेजा था—

"आपकी बीमारीकी खबरसे मुझे बड़ी व्याकुलता हुई। जब मैंने सुना कि आपकी बीमारी भयंकर है तब मेरी समझमें यह बात आई कि कितनी अधिक आपके प्रति मेरी श्रद्धा है। यदि आपकी मृत्यु मेरे सामने हुई तो मुझे बड़ा ही दुःख होगा। शायद मै ऐसी बातें अपनी मानसिक बीमारीके कारण ही सोचता होउँ, या सम्भवतः वे डाक्टर हों, जो आपकी बीमारीको भयंकर बतलाते है, झूठ बोलते हों। परमात्मा करे कि हम लोग फिर एक-दूसरेको मिल सकें। जब पहले-पहल मैंने आपकी भयंकर बीमारीका वृत्तान्त सुना तो मैंने आपके पास पेरिस आनेका विचार किया। आप स्वयं लिख सकें तो स्वयं, नहीं तो किसी दूसरेसे ही अपनी बीमारीका पूरा-पूरा हाल लिखाके भेजना। मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा। प्यारे तुर्गनेव ! मेरे पुराने मित्र, मैं यहाँसे तुम्हारा आलिंगन करता हूं।"

जब यह चिट्ठी तुर्गनेवके पास पहुँची, उस समय वे अत्यन्त निर्बल हो गये थे। बस, दिन गिन रहे थे। फिर भी उन्होंने काँपते हुए हाथसे पेन्सिल पकड़कर नीचे लिखी चिट्ठी टाल्सटायको लिखी—

"प्यारे लिओ निकोलेविच,*

मैंने तुम्हें बहुत दिनोंसे कोई चिट्ठी नहीं भेजी, क्योंकि मैं बीमार रहा हूँ और सच बात तो यह है कि मैं अपनी मृत्यु-शय्यापर लेटा हुआ हूँ। अब मुझे आराम हो नही सकता, इसलिए इस बारेमें ख़याल करना ही फिजूल है। बस, मैं एक बात तुमसे कहना चाहता हूँ, वह यह कि मैं इस बातमें अपना बड़ा सौभाग्य समझता हूँ कि मैं तुम्हारा समकालीन रहा। आज मैं एक आखिरी प्रार्थना तुमसे करूँगा। मेरे मित्र, तुम अपने साहित्यिक कार्यको फिरसे हाथमें ले लो। तुम्हारी यह प्रतिभा उसी परमात्माकी देन है, जो संसारकी सभी वस्तुओंका स्रोत है। यदि

***टाल्सटायका नाम।**

मुझे कोई यह विश्वास दिला सके कि मेरी प्रार्थनाका तुमपर प्रभाव पड़ा तो न जाने मुझे कितनी अधिक प्रसन्नता होगी।

मैं तो अब ख़तम हो चुका! डाक्टरोंको तो अबतक इस बातका भी पता नहीं लग सका कि मुझे बीमारी क्या है। न चल-फिर सकता हूँ, न खा सकता हूँ और न सो सकता हूँ। इन बातोंके लिखनेमें भी मुझे थकावट आती है। मेरे मित्र! रूस देशके महान् लेखक, तुम मेरी इस अन्तिम प्रार्थनाको स्वीकार करो। इस चिट्ठीकी पहुँच देना। आओ, आज एक बार फिर तुमसे, तुम्हारी पत्नीसे और तुम्हारे घरवालोंसे हृदयसे लगाकर मिल लूँ। अब नहीं लिख सकता! थक गया।"

रूसके दो सर्वश्रेष्ठ साहित्य-सेवियोंके ये पत्र वास्तवमें बड़े हृदयवेधक हैं। सच्चे साहित्यिक ही इनके करुणरसका मूल्य समझ सकते हैं।

तुर्गनेव स्वभावके बड़े नरम थे। हुक्म चलाना तो वे जानते ही नहीं थे। एक बार बड़े ज़रूरी कामसे उन्हें अपने एक मित्रके यहाँ जानेकी आवश्यकता हुई। उन्होंने गाड़ीवानसे कहा—"गाड़ी तैयार करो!" गाड़ी तैयार हुई। तुर्गनेव उसमें बैठ गये। थोड़ी दूर चलकर गाड़ी अकस्मात् खड़ी हो गई! तुर्गनेव चक्करमें पड़े कि मामला क्या है! गाड़ीके भीतरसे सिर निकालकर देखा तो हज़रत कोचवान गाड़ीके ऊपर बैठे हुए अपने एक साथीके साथ ताश खेल रहे हैं! तुर्गनेवने यह दृश्य देखकर झट अपना सिर गाड़ीके भीतर कर लिया। ताशका खेल यथापूर्वक चलता रहा। जब खेल ख़तम हुआ तब गाड़ी वहाँसे चली!

तुर्गनेवकी रचनाओंमें उनके कोमल हृदयकी झलक स्पष्टतया दीख पड़ती है।

तुर्गनेवके स्वभावमें क्रियाशीलताकी अपेक्षा करुणा-मिश्रित निराशाका प्राबल्य था। वे आराम-पसन्द विचारक थे, उच्चकोटिके कलाकार थे, पर कर्मयोगी नहीं थे। हाँ, कर्मयोगियोंके लिए उनके हृदयमें अत्यन्त

श्रद्धा अवश्य थी। किसी प्रकारकी भी कट्टरताको वे बहुत नापसन्द करते थे। अलौकिक बातोंमें उनका विश्वास नहीं था। मानुषिकतामें उनकी श्रद्धा थी और दूसरोंकी मानुषिक कमज़ोरियोंके प्रति वे सहिष्णु थे। टाल्सटायने एक बा कहा था—

"तुर्गनेवने अपने ग्रन्थोंमें अपना हृदय खोलकर रख दिया है। उनके स्वभावको समझनेके लिए उनके ग्रन्थोंका पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।"

प्रिन्स क्रोपाटकिन लिखते हैं—"तुर्गनेव शरीरके लम्बे-चौड़े और क़दके ऊँचे थे। सिर कोमल भूरे बालोंसे लदा रहता था और देखनेमें बड़े सुन्दर लगते थे। आँखोंसे बुद्धिमत्ता टपकती थी और उनमें कुछ हास्यकी भी झलक प्रतीत होती थी। उनके रंग-ढंगमें बनावटका नामोनिशान नहीं था। उनके विशाल मस्तिष्कसे प्रतीत होता था कि उनकी दिमाग़ी ताक़त काफ़ी विकसित हो चुकी है। उनकी मृत्युके बाद उनका दिमाग़ तोला गया तो वह उन सब दिमाग़ोंसे, जिनकी तौल तबतक हो चुकी थी, इतना अधिक भारी निकला कि तोलनेवालोंको अपनी तराज़ूपर ही आशंका होने लगी! उन्होंने फिर दूसरी तराज़ूपर उसे तोला, फिर भी वह उतना ही यानी सबसे भारी निकला।"

तुर्गनेवके अन्तिम दिवस बड़े कष्टप्रद सिद्ध हुए। उनके कई मित्र उनसे पहले चल बसे थे। स्वयं उन्हें लम्बी बीमारी भुगतनी पड़ी। महीनों तक खाटपर पड़े रहकर मृत्युकी प्रतीक्षा करनी पड़ी, पर उन्होंने अपनी परोपकारिता और सहृदयता मरते दम तक न छोड़ी। जब उनके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं थी, एक नवयुवक लेखक उनके पास पहुँचा। आपने उसी समय उसकी पुस्तककी सिफ़ारिशमें एक चिठ्ठी किसी प्रकाशकको लिखा दी और कहा—"इस चिठ्ठीके साथ अपनी किताब भेज दो, छप जायगी।"

तुर्गनेवकी भयंकर बीमारीकी खबरें पेरिससे रूसको बराबर जाती

थीं और वहाँके निवासियोंके हृदयमें उनके लिए बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई थी।

सितम्बर सन् १८८३ में रूसका यह महान् लेखक इस संसारसे विदा हो गया। संसारकी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें अनेक उपन्यास-लेखक हुए हैं और होंगे, पर मानवी भावोंका ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण करनेवाले प्रतिभाशाली औपन्यासिक बिरले ही होंगे। सच्चा कलाकार किसे कहते हैं और उपन्यास किस चीज़का नाम है, यदि आप यह जानना चाहते हैं तो तुर्गनेवके ग्रन्थोंको पढ़िये।

: ६ :

रोमाँ रोलाँ

"पेरिस महानगरीके एक पुराने मकानके पाँचवें तल्लेपर दो छोटे-छोटे कमरे हैं। नीचे निकटस्थ सड़कपरसे जब कोई भारी मोटरकार निकल जाती है तो मकान हिल जाता है और मेज़पर रखे हुए काँचके बर्तनको भी कम्पनका अनुभव होने लगता है। कमरेमें किताबोंके ढेर-के-ढेर रखे हुए हैं। कुछ दीवारके किनारेसे सटी हुई हैं और कुछ फर्शपर ही पड़ी हुई हैं; कुछने कुर्सीपर आसन जमा रखा है, तो कुछ मेज़पर भी डटी हुई हैं! केवल दो कुर्सियाँ हैं, एक स्टोव चूल्हा है, आरामकी कोई चीज नहीं। ऐसी किसी भी वस्तुका अभाव ही समझिए, जिससे किसी आगन्तुकका मन यहाँ विरम सके। एक परिश्रमी विद्यार्थीकी कुटी कहिए या मेहनती क़ैदीकी कोठरी। इस तल्लेपर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं—कोई भी पड़ोसी नहीं। हाँ, एक बुढ़िया नौकरानी ज़रूर है, जो वक्त-बेवक़्त आनेवाले दर्शकोंसे इस साधककी रक्षा करती है। पुस्तकोंके बीचों-बीच एक विनम्र व्यक्ति बैठा हुआ है। पोशाक किसी धार्मिक आदमी-जैसी सीधी-सादी है। बदन छरछरा, ऊँचाई पर्याप्त, चेहरेसे कोमलता टपक रही है। रंगपर कुछ पीलापन है, जिससे प्रकट होता है कि यह भलामानस मुक्त पवनमें भ्रमण नहीं कर रहा! मुखपर कुछ झुर्रियाँ नज़र आ रही हैं, जिससे स्पष्ट है कि इसके रात्रिके भी अनेक घंटे परिश्रम करते हुए बीतते हैं। भौंहोंपर कुछ सफ़ेदी आने लगी है। वह बोलता कम है। चलता धीरे-धीरे है। किसी ऊपरसे देखनेवाले व्यक्तिको यही खयाल होगा कि यह आदमी बहुत ही थका हुआ है; लेकिन ज्योंही इस तपस्वीकी

आँखोंका सामना होगा, उसका भ्रम दूर हो जायगा। उन तेजस्वी आँखोंकी कोरपर कुछ लालिमा है और साथ ही शुद्ध निर्मल जलकी तरहकी नीलिमा—वह पारदर्शी नीलिमा, जो उसके किसी फोटोमें प्रकट ही नहीं हो पाती।

यह है एक साहित्यिक भिक्षुकी मठी, जो अपनेको भिन्न-भिन्न देशोंकी भाषाओंके साहित्यके सम्पर्कमें रखता है। उनके इतिहास, दर्शनशास्त्र, कविता और गानविद्या सभीके प्रति उसकी रुचि है। उसके पास देश-विदेशसे चिट्ठियाँ, लेख और पत्र-पत्रिकाएँ आती रहती हैं। पाँच घंटेसे अधिक वह सोता नहीं, टहलने वह कभी-कभी ही जाता है और इस पँच-तल्लेपर आनेका कष्ट शायद ही कोई मित्र उठाता हो! जब विश्राम करनेकी तबियत होती है तो वह कोई दूसरा काम हाथमें ले लेता है और उससे भी थक जानेपर पियानो बजाने लगता है! वह एकान्तमें ही रहता है; पर उसके एकान्तका अर्थ है संसारसे सम्बन्ध!"

यह है उस रेखा-चित्रका एक अंश, जो स्टीफन ज़्विगने अपने साहित्यिक बंधु रोमाँ रोलाँका खींचा था।

जिस महान् ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' पर रोमाँ रोलाँको नोबेल-प्राइज़ मिली थी, वह उनकी पन्द्रह वर्षव्यापी साधनाका फल था। उसकी कल्पना उन्होंने सन् १८९५ में की थी, प्रथम भाग सन् १९०२ में प्रकाशित हुआ था और अन्तिम सन् १९१२ में। आइए, उस महान् साहित्यिक तपस्वीके जीवनपर एक दृष्टि डाल लें।

रोमाँ रोलाँका जन्म २९ जनवरी, १८६६ को क्लामेसीमें हुआ था। उनके पिताजी वहांके एक सुप्रसिद्ध वकील थे और माताजी बड़ी धार्मिक तथा गम्भीर प्रकृतिकी थीं। रोमाँ रोलाँके एक छोटी बहन भी थीं, जो अभी जीवित हैं और जिनका शुभ नाम है मैडेलीन। रोलाँ काफ़ी कोमल स्वास्थ्यके बालक थे और इसलिए मातजीको उनकी देख-रेखमें बहुत-सा समय व्यय करना पड़ता था। पिताजीकी अपेक्षा वे स्वभावतः माताजी

पर ही अधिक स्नेह रखते थे। माताजीकी मृत्यु सन् १९१९ में हुई थी और जब उसके १७ वर्ष बाद इन पक्तियोंके लेखक ने रोमाँ रोलाँसे पूछा—“आपके जीवनकी सबसे बड़ी दुर्घटना कौन-सी थी ?” तो उसका उत्तर देते हुए उन्होंने लिखा था—

“मेरे जीवनमें संकटोंकी भरमार रही है और यह बतलाना मेरे लिए कठिन है कि उन संकटोंमें मेरे लिए सबसे अधिक कष्टप्रद कौन रहा। मेरे कितने ही प्रिय स्वजनोंका देहान्त हो चुका है और मेरे अनेक मित्रोंने मेरे साथ विश्वासघात किया है; लेकिन जिस दुःखकी सबसे अधिक कसक मेरे हृदयको अनुभव होती है, वह है मेरी पूज्य माताकी मृत्यु, जो सन् १९१९ में हुई। वे मेरे लिए मातासे भी अधिक थीं। वे मेरे संकटोंकी साथिन थीं, मेरी बातोंको सुननेवाली थीं और मेरी सर्वोत्तम मित्र भी थीं।”

थोड़े दिन अपने स्थानके विद्यालयमें शिक्षा पाकर रोमाँ रोलाँने पेरिस जानेका निश्चय किया। इस अवसरपर उनके माता-पिताने बड़े त्याग तथा साहसका परिचय दिया। पिताजीने अपनी चलती हुई वकालत और स्वाधीन वृत्ति छोड़कर पेरिसके एक बैंकमें नौकरी करना स्वीकार कर लिया और माताजी ने भी घरके शान्तिमय जीवन तथा विश्रामयुक्त व्यवस्थाको छोड़कर पेरिस जाना ही तय किया; क्योंकि वे अपने प्रिय पुत्रकी उन्नति के लिए अत्यन्त चिन्तित थीं और उस महानगरीमें उसे अकेला नहीं छोड़ना चाहती थीं !

रोमाँ रोलाँको गान-विद्यासे बड़ी रुचि थी और शेक्सपियरके भी वे अनन्य भक्त बन गये थे। उनका बहुत-सा वक़्त इन दोनोंके अध्ययनमें ही बीता। नतीजा यह हुआ कि नार्मल स्कूलकी प्रवेशिका-परीक्षामें वे दो बार फेल हुए ! सन् १८८६ में उन्होंने जब तीसरी बार इम्तहान दिया तो उसमें वे बड़ी योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण हो गए। दर्शनशास्त्रकी ओर उनकी विशेष रुचि थी और उनके मुख्य विषय थे इतिहास और भूगोल।

शिक्षक लोग उनकी प्रतिभा तथा परिश्रमशीलतासे विशेष प्रभावित हुए। स्कूलमें दो वर्ष व्यतीत करनेके बाद उन्हें एक छात्रवृत्ति मिली और वह थी रोममें ऐतिहासिक अन्वेषण करनेके लिए। पर इटलीके कलामय वातावरणने उनको इतना प्रभावित किया कि उन्होंने अपनी थीसिस या निबन्धका काम छोड़कर उस देशके भिन्न-भिन्न स्थानोंकी यात्रा करना प्रारम्भ कर दिया !

इटलीमें ही सत्तर वर्षकी एक वृद्ध जर्मन महिला मलविदा मेसनबर्गसे उनकी मैत्री हो गई और यह सम्पर्क उनके जीवनके लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुआ। इस महिलाका घनिष्ट परिचय वागनर, नीट्से, मेजिनी तथा हर्जन इत्यादि महापुरुषोंसे रहा था और उसमें ज़बरदस्त आकर्षणशक्ति थी। मलविदाने ही रोलाँके उर्वर मस्तिष्कमें विश्वकी एकताके बीज बोए और उन्हीं दिनों एक दिन टहलते हुए उन्होंने अपने महान् ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' की कल्पनाकी थी। रोमाँ रोलाँ नित्यप्रति उनके यहाँ जाया करते थे और पियानो बजा-बजाकर उन्हें सुनाया करते थे। रोमाँ रोलाँने आगे चलकर अपने एक लेखमें लिखा था कि जिन दो महिलाओंने विशेष रूपसे उनके जीवनको प्रभावित किया, उनमें एक तो थीं उनकी पूज्य माताजी और दूसरी यही जर्मन महिला।

इटलीसे लौटनेके बाद वे अपने नार्मल स्कूलमें ही गानविद्याके इतिहासके शिक्षक हो गए और तत्पश्चात् सौर्बोनमें भी उन्होंने अध्यापन-कार्य ही किया। पेरिसमें उनका परिचय भाषा-विज्ञानके अध्यापक माइकेल ब्रील नामक सज्जनसे हुआ और उनकी पुत्रीके साथ उनका विवाह भी हो गया; पर यह सम्बन्ध क्षणस्थायी ही सिद्ध हुआ ! रोमाँ रोलाँको अपनी वृद्धावस्था तक एकाकी जीवन ही व्यतीत करना पड़ा। हाँ, सत्तर वर्षकी उम्रमें उन्हें अपने शेष जीवनके लिए एक सहचरी अवश्य मिल गई थीं, जो अब भी उनकी कीर्त्ति-रक्षाके लिए प्रयत्नशील हैं। पेरिसमें

रहते हुए रोमाँ रोलाँने वहाँके समाजका विधिवत् अध्ययन किया, जो आगे चलकर उनके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ।

उन्हीं दिनों रोमाँ रोलाँ और उनके मित्रोंने एक पत्रिका निकाली। उसका नाम था Cahiers de la Quinzaine और यह पन्द्रह वर्ष तक चली। रोमाँ रोलाँ बिना एक पैसा लिए इस पत्रिकाके लिए लिखते थे और उनके कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ—'जाँ क्रिस्तफ' इत्यादि—इसी पत्रिकामें पहले-पहल प्रकाशित हुए थे। यद्यपि यह पत्रिका आगे चलकर बन्द हो गई, तथापि इससे रोमाँ रोलाँके व्यक्तित्त्वके विकासमें बड़ी सहायता मिली। यह पत्रिका फराँसीसी युवकोंकी अदम्य आदर्शवादिता और पारस्परिक सहयोगकी एक उज्ज्वल प्रतीक थी।

फ्रान्समें उन दिनों बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल का ज़माना था। ड्रेफस-अभियोगने सम्पूर्ण फ्रान्समें हलचल मचा दी थी और सारा वातावरण अशान्त बन गया था। साहित्यिक प्रगति रुकी हुई थी। अपनी पत्रिकाके बन्द हो जाने, मित्रोंके तितर-बितर हो जाने और पत्नीसे विवाह-विच्छेद हो जानेके कारण स्वयं रोमाँ रोलाँका गृह-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था। बस, ऐसे संकटमय अवसरपर उस तेजस्वी युवकने साहित्यिक भिक्षु बननेका घोर संकल्प कर लिया और इस संकल्पको उन्होंने जीवनपर्यन्त निबाहा भी। इस लेखके प्रारम्भमें उनकी कुटीका जो रेखाचित्र स्टीफन ज़्विगने उपस्थित किया है उससे पाठकोंको उनकी साधनाका पता लग सकता है।

सन् १९१० में रोमाँ रोलाँ एक मोटर दुर्घटनामें मरते-मरते बचे। फिर भी उनके बड़ी गहरी चोट आई थी, हड्डियाँ टूट गई थीं और आराम होनेमें काफ़ी समय लग गया था! यदि दुर्भाग्यवश उस दिन उनकी मृत्यु हो गई होती तो शायद पेरिसके किसी पत्रमें एकाध पैरा उनके बारेमें छप जाता, जिनका आशय यही होता कि गान-विद्याके एक अध्यापक मोटरसे कुचलकर स्वर्गवासी हुए! पेरिसके लाखों निवासियोंमें दस-

बीसके लिए ही वह दुर्घटना दुःखप्रद सिद्ध होती ! अपनी विश्वव्यापी कीर्त्तिके दो वर्ष पहले तक रोमाँ रोलाँ स्वयं अपने देशमें ही कितने कम प्रसिद्ध थे ! और आश्चर्यकी बात यह है कि उनके दस-बारह नाटक तथा जीवन-चरित और 'जाँ क्रिस्तफ' की आठ जिल्दें तबतक प्रकाशित हो चुकी थी !

रोमाँ रोलाँने कभी कीर्त्ति प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न नहीं किया । उन्होंने कभी कोई साहित्यक पार्टी नहीं बनाई और न किसी दलबन्दीसे काम लिया । संस्कृतके किसी कविने कहा है—"कीर्त्ति-रूपी कन्या सदा क्वारी ही रही है । जिसे वह चाहती है, वह उसे नहीं चाहता और जो लोग कीर्त्तिके इच्छुक होते हैं, उन्हें वह स्वयं नहीं चाहती ।" रोमाँ रोलाँको जो कीर्त्ति प्राप्त हुई, वह उनकी अनवरत साधनाका ही परिणाम थी । रोमा रोलाँके समस्त ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय देनेके लिए भी यहाँ स्थान नहीं है और स्वयं हमें उनके तीन-चार ग्रन्थ ही पढ़नेका सुअवसर मिला है—(१) 'जाँ क्रिस्तफ', (२) 'आइ विल नौट रेस्ट', (३) 'फोर-रनर्स' इत्यादि । हाँ, उनके विषयमें लिखे हुए कई निबन्ध, जो यत्र-तत्र प्रकाशित हुए थे, हमने ध्यान-पूर्वक पढ़े हैं । स्टीफन ज़्विग-द्वारा लिखित उनका महत्त्वपूर्ण जीवन-चरित तो पन्द्रह वर्षसे हमारा एक प्रिय ग्रन्थ रहा है । श्रीयुत दिलीप-कुमार रायने अपनी पुस्तक 'एमंग दि ग्रेट' में रोमाँ रोलाँका एक बहुत ही चित्ताकर्षक चित्र खींचा है । 'माडर्न रिव्यू' में वह बातचीत भी प्रकाशित हुई थी, जो नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और रोमाँ रोलाँके बीच हुई थी । रोमाँ रोलाँने उस बातचीतके सिलसिलेमें कहा था—"मैं तो किसान-मज़दूरोंका समर्थक हूँ और यदि महात्मा गान्धी भी उनके हितोंका ख़याल न रखते तो मैं उनका भी विरोध करता ।" विश्वभारती द्वारा 'रोलाँ एण्ड टैगोर' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित हुई है, जिसमें रोलाँके बाईस पत्रोंका संग्रह किया गया है । रोमाँ रोलाँ भारतीय विचारधारासे क़ाफ़ी प्रभावित थे और उन्होंने रामकृष्ण परमहंस तथा महात्मा गान्धीके

जीवन-चरित भी लिखे थे। कवीन्द्र रवीन्द्र तथा ऋषि अरविन्दके भी वे अत्यन्त प्रशंसक थे।

रोमाँ रोलाँकी रचनाओंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं उनके पत्र। स्टीफन ज़्विगने अपने आत्मचरित 'दि वर्ल्ड आफ यस्टरडे' में लिखा है—"यद्यपि मै रोमाँ रोलाँके ग्रन्थोंका बहुत प्रशंसक हूँ, तथापि मेरा यह विश्वास है कि उनकी रचनाओंमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान उनके पत्रोंको ही मिलेगा; क्योंकि उनमें उस मनुष्यताके साक्षात् दर्शन हो सकते हैं, जो उनके करुणापूर्ण हृदयसे निकली थी, अथवा जिसे उनके भावनापूर्ण मस्तिष्कने जन्म दिया था।"

रोमाँ रोलाँके जो एक-से-एक बढ़िया हज़ारों ही पत्र समस्त संसारमें यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, उनकी प्रेरणा उन्हें महान् कलाकार टाल्सटायसे मिली थी। सन् १८८७ की बात है। रोमाँ रोलाँ तब २१ वर्षके थे। हाल ही में उन्होंने टाल्सटायकी पुस्तक 'What is to be done' ('हमें क्या करना चाहिए?') पढ़ी थी। उस पुस्तकसे उनके मनमें अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया और उन्होंने तुरन्त ही एक चिट्ठी टाल्सटायके नाम रूसको भेज दी! उन्हें यह बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि वह महान् ग्रन्थकार इस पत्रका उत्तर देगा। वे इस पत्रकी याद भी भूल गये थे। एक दिन वे अपने कमरेमें लौटे तो क्या देखते हैं कि उनकी डाकमें एक पैकेट भी है, जिसपर रूसकी मुहर है। वह पैकेट क्या था, टाल्सटायका विस्तृत पत्र था। कहाँ वह अन्तर्राष्ट्रीय कीर्त्तिप्राप्त ग्रन्थकार और कहाँ यह अपरिचित फ्रांसीसी युवक!

टाल्सटायने अपने १४ अक्टूबर, १८८७ के उक्त पत्रमें लिखा था—"प्रिय मित्र, तुम्हारा प्रथम पत्र मुझे मिला। उसने मेरे हृदयको स्पर्श किया है और सजल नेत्रोंसे मैंने उसे पढ़ा।" इसके बाद टाल्सटायने अपने कला-सम्बन्धी विचारोंपर प्रकाश डालते हुए लिखा था—"वही चीज वास्तवमें कीमती है, जो मनुष्योंमें पारस्परिक सद्भावना उत्पन्न करती

हैं, उनके हृदयोंको मिलाती है। और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने विश्वासोंके लिए बलिदान करता हो, किसी भी सच्ची वृत्तिके लिए सबसे पहली और अनिवार्य शर्त कलाके प्रति प्रेम नहीं है, बल्कि मानव-समाजके प्रति प्रेम है। जिनके हृदयमें मानव-प्रेम लबालब भरा हुआ है, वही कलाकारके कर्त्तव्यको कभी पालन करनेकी उम्मीद कर सकते हैं।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आगे चलकर इस महत्त्वपूर्ण पत्रने रोमाँ रोलाँके साहित्यिक जीवनपर गम्भीर प्रभाव डाला। लेकिन उस समय जिस बातने रोमाँ रोलाँको सबसे अधिक प्रभावित किया, वह थी टाल्सटायकी अनुपम सहृदयता, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने एक अपरिचित युवकको ढाँढस बँधानेवाला पत्र लिखा था। कहाँ तो वह विश्वविख्यात महान् लेखक और कहाँ पेरिसकी किसी मामूली गलीका निवासी यह बाईस-वर्षीय अपरिचित युवक ! और टाल्सटायको उस लम्बे ख़तके लिखनेमें पूरा एक दिन तो लगा ही होगा---शायद दो दिन ! रोमाँ रोलाँके लिए यह एक ऐसी अमूल्य शिक्षा थी, जिसे वे ज़िन्दगी-भर नहीं भूले। जिस दिन उन्हें टाल्सटायका वह महत्त्वपूर्ण पत्र मिला, उसी दिन उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि यदि भविष्यमें कभी कोई भी व्यक्ति अपने धर्म-संकटमें मेरी सहायता या परामर्श माँगेगा तो मैं भी इसी प्रकार उसकी सेवा करूँगा। कलाकारका प्रथम नैतिक कर्तव्य है किसी भी आत्माकी पुकार-पर सहायता देनेके लिए सर्वदा उद्यत रहना, यह बात उनके हृदयंगत हो गई और तत्पश्चात् अन्तर्द्वन्द्वसे प्रेरित किसी पत्रप्रेषकको उन्होंने निराश नहीं किया ! टाल्सटायका वह ऐतिहासिक पत्र मानों वटवृक्षका एक बीज ही था। उसके परिणाम-स्वरूप रोमाँ रोलाँके पत्र-व्यवहारका वह महान् वट उत्पन्न हुआ, जिसकी शाखाएँ तथा पत्र विश्व-भरमें बिखरे हुए हैं। सन्तप्त हृदयोंको आश्रय तथा सान्त्वना देनेवाला वह पत्र-समूह संसारमें अद्वितीय ही होगा।

रोमाँ रोलाँके तीन कृपा-पत्र मेरे पास भी सुरक्षित हैं और मैं उन्हें अपने संग्रहालयकी अमूल्य निधि मानता हूँ। मैंने उनसे पूछा था—'क्या अहिंसामें आपका विश्वास कुछ शिथिल हो रहा है?' उसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था—" 'संघर्षके पन्द्रह वर्ष' नामक पुस्तकसे, जो पेरिसमें सन् १९३५ में प्रकाशित हुई थी, मेरे अहिंसा-विषयक विचारोंका पता आपको लग जायगा। अहिंसा तबतक वास्तविक रूपसे प्रभावशाली नहीं बन सकती जबतक किसी सम्पूर्ण देशका उसपर दृढ़ विश्वास न हो। यूरोपमें केवल थोड़ी-सी आत्माओंको छोड़कर और लोगोंका विश्वास अहिंसामें नहीं है। ऐसी परिस्थिति में संघर्षके मौकेपर अहिंसाका कुछ भी असर नहीं पड़ेगा। अहिंसा प्रभावहीन तो सिद्ध होगी ही, लेकिन इसके साथ ही एक बात और भी है। वह यह कि मौजूदा हालतमें यूरोपकी जनतासे अहिंसा द्वारा सर्वोच्च बलिदानकी माँग करना अमानुषिक भी होगा, क्योंकि उसकी निगाह-में वह बलिदान निरर्थक तथा सत्यविहीन होगा। इन कारणोंसे मैं पश्चिमसे यही कहता हूँ कि जब वक्त आए तो जंगली, खूनी और दूसरोंको ग़ुलाम बनानेवाली फासिस्ट शक्तियोंका डटकर मुक़ाबला करो भरपूर ताक़तके साथ; क्योंकि फासिज़्म हमारी सम्पूर्ण सभ्यताको ही डुबा देना चाहता है।"

रोमाँ रोलाँके जीवनके दर्शनका अध्ययन करनेके लिए उनके सम्पूर्ण साहित्यको ही पढ़ना होगा। एक स्थलपर उन्होंने लिखा था—"मैं किसी व्यक्तिगत ईश्वरकी सत्तामें विश्वास नहीं करता—विशेषकर किसी विषादमय ईश्वरमें तो बिल्कुल ही नही। लेकिन मैं मानता हूँ कि जो-कुछ अस्तित्त्वमें है—आह्लादमें, विषादमें, जीवनके नाना रूपोंमें, मानव-जातिमें, मनुष्योंमें और विश्वमें—एकमात्र ईश्वर है, जो सतत जन्म ले रहा है। प्रतिक्षण नवीन सृष्टि हो रही है। धर्म तो कभी पूरा होता ही नहीं। अविराम कर्म और प्रयासकी अक्षुण्ण इच्छाका नाम ही धर्म है। वह बहता हुआ झरना है, न कि कोई रुद्ध पोखर।"

मेरे एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें रोमाँ रोलाँने लिखा था—"आपने

मुझसे पूछा है कि कष्टोंमें कौन-सी चीज़ मुझे सान्त्वना देती है। मैं कहूँगा कि जीवनकी धारा, जिससे मेरी आत्मा लबालब भरी हुई है, जो मुझे निरन्तर नवीन बनाती रहती है, जो मुझसे कोई ऊँची चीज़ है और जो विश्व-जीवनका एक अंग है। अपनी युवावस्थासे लेकर अबतक मेरा एक भी दिन ऐसा नहीं बीता, जब मैंने विश्व-जीवनके साथ अपने निरन्तर सम्पर्कका अनुभव न किया हो।"

रोमाँ रोलाँका व्यक्तित्त्व अत्यन्त सजीव था। यद्यपि कुल मिलाकर देखा जाय तो कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर रोमाँ रोलाँसे कहीं ऊँचे दर्जेके साहित्यिक सिद्ध होंगे—वे तो व्यास और कालिदासकी परम्पराके थे—पर जहाँ तक प्रगतिशील शक्तियोंका साथ देनेका प्रश्न है, रोमाँ रोलाँ गुरुदेवसे कहीं आगे बढ़ गए थे! संसारमें जहाँ कहीं भी अन्याय होता—चाहे भारतमें हो या इटलीमें, अमरीकामें हो या हिन्दचीनमें—रोमाँ रोलाँ अपनी आवाज़ बुलन्द किए बिना न रहते। जीवनके अन्त तक वे प्रतिक्रियावादी शक्तियोंसे मोर्चा लेते रहे। रोमाँ रोलाँ समस्त विश्वके नागरिक थे और संसार-भरकी संस्कृतियोंके समन्वय करने और इस प्रकार विश्वात्माकी पूजा करनेमें उनका हार्दिक विश्वास था। लश्कर (ग्वालियर) के एक विद्यार्थी श्री परमानन्द पाण्डेयको उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा था—"प्रिय पी० पाण्डया, तुम्हारे पत्रने मेरे हृदयको बहुत गहराई से स्पर्श किया है। मेरे भारतीय भाई, तुमने अपना हाथ जो मेरी ओर बढ़ाया है, उसे मैं स्नेहके साथ स्वीकार करता हूँ। तुम्हें मालूम ही है कि तुम्हारे देशके ऋषियोंके प्रति मैं अपनेको कितना सम्बद्ध अनुभव करता हूँ। तुम भी यूरोपके महान् कलाकारों, विचारकों और महान् आत्माओंको समझनेका प्रयत्न करो। पूर्व और पश्चिमको एक-दूसरेके निकट लानेके कार्यको अपने जीवनका आदर्श बना लो। हमें एक विश्वात्मा बनानी होगी। आज वह विद्यमान नहीं है; पर एक दिन वह अवश्य होगी।

सप्रेम तुम्हारा—रोमाँ रोलाँ"

रोमाँ रोलाँने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'जाँ क्रिस्तफ' में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वाक्य लिखा है। उसे प्रत्येक हिन्दी-साहित्य-सेवीको अपने कमरेमें टाँग लेना चाहिए––"प्रतिदिनका जीवन सर्वसाधारणके सम्मुख रखो। वह जीवन समुद्रसे भी अधिक गम्भीर तथा विस्तीर्ण है। तुममेंसे छोटे-से-छोटा अपने भीतर अनन्तको धारण किए हुए है। ऐसे प्रत्येक व्यक्तिमें, जिसमें मनुष्य बननेकी सरलता विद्यमान है, अनन्तका निवास है। प्रेमीमें, मित्रमें, उस नारीमें, जो बच्चेके जगमग और गौरवपूर्ण जन्मदिनके लिए प्रसव-पीड़ा सह लेती है, उस प्रत्येक स्त्री व पुरुषमें, जिसका जीवन ऐसे अन्धकारमय आत्मत्यागका जीवन है, जिसे कभी कोई न जान पावेगा, सभीमें अनन्त निवास करता है। अनन्त जीवनकी वह धारा ही है, जो एक प्राणीसे दूसरे प्राणीमें वह रही है––जो एक से दूसरेमें प्रवाहित होती है, लौटती है और इस प्रकार परिधि पूरी कर रही है। इन **सरल मानवोंमेंसे किसी एकके जीवनको चित्रित करो, उसके एकके बाद एक आते दिनों और रातोंकी शान्तिपूर्ण गाथा लिखो**––दिनों और रातोंकी, जो यद्यपि एक समान आते प्रतीत होते हैं, फिर भी जो एक-दूसरेसे बिल्कुल भिन्न हैं और जो सृष्टिके आरम्भके प्रथम दिनसे एक ही जननीकी सन्तान है। जीवनको सरलतासे व्यक्त करो ––उतनी ही सरलतासे, जितना कि स्वयं जीवनका विकास है। शब्दपर, अक्षरपर और व्यर्थकी गम्भीर खोजपर, जिसमें लगकर आजके कलाकारोंकी शक्तिका ह्रास हो रहा है, अपनी विचारशक्तिको नष्ट न करो। **चूँकि तुम जनताको सम्बोधित कर रहे हो, जनताकी भाषाका प्रयोग करो**। कोई शब्द शिष्ट अथवा अश्लील नहीं है और न कोई शैली विशुद्ध अथवा अपवित्र। शब्दों और शैलियोंकी दो ही किस्में हैं––एक तो वह, जो उन्हें जो-कुछ कहना है, ठीक-ठीक कह देती है; और दूसरी वह, जो उसे नहीं कहती। तुम जो कुछ महसूस करना है उसीको महसूस करो। अपनी रचनाओंको हृदयके रागसे ओतप्रोत होने दो। **शैली ही आत्मा है।**"

यद्यपि रोमाँ रोलाँ अपने पिछले वर्षोंमें सोवियत रूस और साम्यवादके पूर्ण समर्थक बन गए थे, तथापि वे कठमुल्लापनसे कोसों दूर थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक मनुष्य सत्यका स्वयं ही अनुसन्धान करे। जो लोग सबको एक ही लाठीसे हाँकनेमें विश्वास रखते हैं और जिनका यह विश्वास है कि दुनिया-भरकी बीमारियोंका इलाज बस हमारे ही सिद्धान्तोंमें है, हमारे पास ही रामवाण औषध है—चाहे वे गान्धीवादी हों या कम्युनिस्ट—वास्तवमें कठमुल्ले हैं और संसारको सबसे अधिक खतरा इन कठमुल्लों से ही है।

रोमाँ रोलाँने अपने एक निबन्ध ('टाल्सटाय—एक स्वतन्त्र आत्मा') में लिखा था—"अपना पथ स्वयं न निर्धारितकर दूसरोंके द्वारा संचालित होते रहना बड़ा सरल काम है; पर यही सारी बुराइयोंकी जड़ है। हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस बातके निर्णयका भार दूसरोंपर न डालें कि हमारे लिए क्या हितकर है और क्या नहीं—चाहे वे कितने ही भले, विश्वासपात्र और सर्वप्रिय व्यक्ति क्यों न हों। स्वयं हमें ही इस प्रश्नके समाधानके खोजनेकी आवश्यकता है, और यदि ज़रूरत हो, तो आजीवन अथक धैर्य और तत्परताके साथ इस खोजमें हम लगे रहें। यदि हमने अपनी मेहनतसे आधा सत्य भी जान लिया तो वह दूसरोंकी सहायतासे जाने गए पूर्ण सत्यसे कहीं अधिक मूल्यवान् है। दूसरों द्वारा जाना गया सत्य तो तोता-रटन्त जैसा है। वह सत्य दरअसल सत्य नहीं है, असत्य है, जिसे हम आँख मूंदकर स्वीकार करते हैं, जिसे हम सिर झुकाकर आदरके भावसे नत होकर गुलामकी भाँति मंजूर कर लेते हैं। सीधे खड़े हो। आँख खोलो और चारों ओर देखो। निर्भीक बनो। किंचित् सत्य भी, जिसे तुम अपनी मेहनतसे पाओगे, वह तुम्हारे लिए प्रकाश-स्तम्भका काम देगा। आवश्यकता इस बातकी नहीं है कि तुम बहुत-सा ज्ञान प्राप्त करो। ज़रूरी चीज़ यह है कि जो भी थोड़ा-बहुत ज्ञान तुम प्राप्त करो, वह तुम्हारा स्व-अर्जित हो, जिसे तुमने अपना ही रक्त देकर प्राप्त किया और बढ़ाया

हो। **आत्माकी स्वाधीनता ही सर्वश्रेष्ठ निधि—सर्वोत्तम खजाना है।"**

प्रत्येक सजीव साहित्य-सेवी और प्रगतिशील कलाकारके सामने कभी-न-कभी यह प्रश्न आता है—"क्या मैं अपने चारों ओरकी अनाचार-पूर्ण परिस्थितियोंको दूर करनेके लिए साहित्य या कला-क्षेत्रको छोड़कर समाज-सेवाके कार्यमें अपने को जुटा दूँ?" प्रिंस क्रोपाटकिनकी युवावस्थामें यही सवाल उनके सम्मुख उपस्थित हुआ था और उन्होंने अपने महान् वैज्ञानिक जीवनको समाज-सेवाकी बलिवेदीपर चढ़ाकर क्रान्तिकारीका जीवन स्वीकार कर लिया था। पर इसके विपरीत रोमाँ रोलाँ का यह मत था कि हमें अपने समय तथा शक्तिको साहित्य-सेवामें अर्पित करनेके बाद केवल बचे हुए समयमें ही समाज-सेवा करनी चाहिए। जब श्री दिलीपकुमार रायने अपने अन्तर्द्वन्द्वकी बात उनको लिखी थी तो उन्होंने श्री दिलीपकुमार रायको यही परामर्श दिया था कि आप अपनी दोनों प्रवृत्तियोंमें सामंजस्य स्थापित कीजिए। उन्होंने बातचीत करते हुए भी श्रीयुत दिलीपजीसे कहा था—"अन्ततोगत्वा हम इसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर आते है: 'कलाकारको करना क्या चाहिए?' इस बातसे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि एक उत्तमतर समाज-व्यवस्थाका निर्माण होना चाहिए और वह व्यवस्था जितनी ही जल्दी आवे, उतना ही अच्छा होगा। आज तो अधिकांश मानव-समाज संस्कृतिके शुभ फलोंसे बिल्कुल वंचित रह जाता है—उन फलोंसे, जो आध्यात्मिक जीवनके लिए अनिवार्यतः आवश्यक हैं। यही असली बीमारी है। जहाँ तक इस रोगके निदानका प्रश्न है, हम लोग सहमत हैं; पर वास्तविक मतभेद रोगके इलाजके बारेमें है। यहाँपर मैं आपसे कहूँगा कि अपने सम्पूर्ण जीवनसे मैंने एक ही बात सीखी है। वह यह कि किसी भी कलाकार या बुद्धिजीवीका सबसे प्रथम और सर्वोच्च कर्त्तव्य यही है कि वह अपनी अन्तरात्माकी पुकारके प्रति सच्चा और निरन्तर जागरूक रहे। अपने अन्तस्तलकी ज्योतिको कदापि न बुझने दे। अपनी प्रतिभाकी प्रेरणाके अनुसार सृष्टि-

कार्य करे। इतना कर चुकनेके बाद उसके पास जो समय और शक्ति बचे, उसका उपयोग वह समाजके कामोंमें कर सकता है। जर्मनीके महाकवि गेटे इसी कार्य-पद्धतिका अनुसरण करते थे। जब उन्हें अपनी रचनात्मक कल्पनाशक्तिमें कुछ शिथिलता आती दीखती तो वे किसी समाज-सेवाके कार्यको करने लगते; पर जहाँ एक बार फिर उनकी प्रतिभा जाग्रत हुई कि उनके लिए दूसरा काम करना असम्भव हो जाता था।"

स्वयं रोमाँ रोलाँने उपर्युक्त उपदेशके अनुसार काम किया था। अपने पन्द्रह वर्षके परिश्रमके परिणाम-स्वरूप 'जाँ क्रिस्तफ' पर उन्हें एक लाख बीस हज़ार रुपएका जो पुरस्कार मिला था, उसे उन्होंने रेडक्रास सोसायटीको दे दिया और महायुद्धके दिनोंमें डेढ़ वर्ष तक वे स्विटज़रलैण्डकी रेडक्रास सोसायटीके अधीन छः-सात घंटे प्रतिदिन क्लर्कीका काम किया करते थे! चिट्ठियोंको फाइल करना और उनका जवाब देना यही उनका कार्य था। परस्पर युद्ध करनेवाले भिन्न-भिन्न देशोंके खोए हुए सिपाहियोंके घरवालोंतक उनकी ख़बर पहुँचानेके लिए उनको सहस्रों ही पत्र लिखने पड़े थे। जब युद्ध-क्षेत्रमें सिपाही एक-दूसरेको भयंकर आघात पहुँचा रहे थे या उनकी हत्या कर रहे थे तब परदुःखकातर रोमाँ रोलाँ अपने आपको इस प्रकार खपा रहे थे! रोमाँ रोलाँने एक जगह लिखा है--"जबतक किसी कलाकारमें दूसरोंकी सहायता करनेकी कुछ भी शक्ति विद्यमान है, तबतक उसे कोई अधिकार नहीं कि वह सेवा-कार्यसे अपनेको अलग रखे।"

पिछले महायुद्धके दिनोंमें रोमाँ रोलाँ युद्धके बन्दी बना दिये गए थे। उन दिनों में उन्होंने क्या-क्या लिखा, इसका वृत्तान्त हमें ज्ञात नहीं। यद्यपि उनका सम्पूर्ण जीवन ही अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करते हुए बीता था, तथापि सरस्वतीकी उपासनासे वे कभी विरत नहीं हुए। रोमाँ रोलाँसे किसीने पूछा था--"आप किसके लिए लिखते हैं?" उसका उत्तर उन्होंने इन शब्दोंमें दिया था--"मैं किसके लिए

लिखता हूँ ? उनके लिए जो आगे बढ़ती जा रही सेनाके अग्रगन्ता हैं; उनके लिए जो महान् अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षका आयोजन कर रहे हैं—ऐसे संघर्षका, जिसमें विजय पानेके मानी होंगे निस्सीम तथा वर्गहीन मानव-समाजका निर्माण। साम्यवाद (कम्युनिज़्म) ही आज संसारव्यापी सामाजिक क्रियाशीलताका वह दल है, जो बिना किसी संकोच या समझौतेके झंडेको आगे बढ़ा रहा है तथा विचारपूर्ण और साहसयुक्त तर्कके साथ उच्च पर्वतोंकी विजयको बढ़ता चला जा रहा है। शेष सेना उसके पीछे आयगी, भले ही उसमें से कुछ लोग पीठ दिखा जायं, अथवा सेनाको कई बार पीछे हटना पड़े। हम फिसड्डियोंको शीघ्रता करनेके लिए कहते हैं; पर हमें उनका इन्तज़ार करनेकी ज़रूरत नहीं। यह उनका काम है कि वे हमें पकड़ लें। बढ़नेवाला जत्था हर्गिज़ नहीं रुकता।"

रोमाँ रोलाँका जीवन सभी साहित्य-सेवियोंके लिए शिक्षाप्रद है। यह ज़रूरी नहीं कि उनकी देखा-देखी हम भी साम्यवादके समर्थक बन जायँ। हाँ, अगर किसीका वही विश्वास हो जाय तो कोई मुज़ायका भी नहीं! इतना फ़र्ज तो हमारा है ही कि अपने देशकी मौजूदा हालतको ध्यानमें रखकर हम भी संघर्षमय जीवन व्यतीत करें।

एक बात निश्चित है। जो भी साहित्य-सेवी विश्वकी बढ़ती हुई विचारधारासे अपनेको अलग रखेगा, वह अपनेको निर्जीव तथा नपुंसक बना लेगा और जो अन्याय तथा अत्याचारके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करनेमें आनाकानी करेगा, वह अपनी मौतका वारण्ट खुद ही लिखा देगा—साहित्यिक मृत्युका। साहित्य-सेवा एक तप है। अपने आपको कसना, सदैव जागरूक रहना, सत्यकी खोज करना और अनुभूतियोंको जनताके सामने रखना, बस यही उसका तरीक़ा है।

साहित्य-साधक रोमाँ रोलाँके जीवनका यही सन्देश है।

मार्च १९५०]

: १० :

स्टीफ़न ज़्विग

स्टीफ़न ज़्विगने तो आत्मघात कर लिया !"

प्रातः कालकी चाय पी चुका ही था कि किसीने आकर यह अशुभ समाचार सुना दिया। दिलको ज़बरदस्त धक्का लगा। ऐसा प्रतीत हुआ मानों किसी आत्मीयकी ही मृत्यु हो गई हो। कई वर्ष पहले से मैं उनका प्रशंसक था, उनकी रचनाओंको मैंने खुद कई बार पढ़ा था और दूसरोंको भी पढ़ाया था। मैंने देखा था कि कई विद्यार्थियोंने उनके छोटे-छोटे उपन्यास 'लैटर फ्रोम ऐन अननोन वोमेन' (एक अपरिचित स्त्रीका पत्र) तथा 'एमौक' को अपने हाथसे टाइप कर लिया है और स्वयं मैंने एकाधिक बार उनकी कहानी 'विराट' का अनुवाद केवल हिन्दी जाननेवाले भाइयोंको सुनाया था। न जाने कितनी बार मैंने अपने मित्रोंसे कहा था--

"सुप्रसिद्ध हॉकी खिलाड़ी ध्यानचन्द जिस तरह हॉकीकी गेंद को जादूगरीके साथ ले जाते हैं, उसी प्रकार स्टीफ़न ज़्विग हृद्गत भावोंका आश्चर्यजनक ढंगपर विश्लेषण करते हैं।" महामानव रोमाँ रोलाँसे मैंने ज़्विगका पता पूछा था और उन्होंने अपने २४ जनवरी १९३७ के पत्रमें लिखा था--

"फैसिस्ट हत्यारोंकी धमकियोंकी वजहसे स्टीफ़न ज़्विगको आस्ट्रिया छोड़ देनी पड़ी है। आज कल उनका पता है--लन्दन हैलम स्ट्रीट ४९, लेकिन वे अक्सर यात्रा पर रहते हैं।"

मैं स्टीफ़न ज़्विगसे पत्र-व्यवहार करनेकी कई बार सोच चुका था, पर प्रमादवश ऐसा न कर सका और अब वे इस संसारमें ही नहीं रहे ! बड़ा पश्चात्ताप हुआ।

खबर देने वाले से मैंने पूछा, "कौन कहता था कि ज़्विग ने आत्महत्या कर ली ?" उसने कहा, "मधुकर-मैनेजर ने किसी पत्रमें यह समाचार पढ़ा है।" 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के दस-पन्द्रह दिन पहले से लगाकर उस दिन तक के सब अंक छान डाले, पर कहीं भी यह खबर न मिली !

सारा दिन अत्यन्त उद्विग्न अवस्थामें बीता। दूसरे दिन टीकमगढ़ पहुँचनेपर पता लगा कि 'बोम्बे क्रानिकल' नामक पत्रके साप्ताहिक संस्करणमें यह समाचार एक लेखमें छपा है ! रॉयटरने उस विश्व-विख्यात लेखककी मृत्युका समाचार भेजनेकी आवश्यकता ही न समझी थी ! घुड़दौड़में दौड़नेवाले आग़ाखाँके घोड़ोंके मुकाबिलेमें भला किसी बड़े-से-बड़े लेखकके जीवन या मृत्यु का महत्व हो ही क्या सकता है ?

मुझे रंजीदा देखकर एक उच्च पदाधिकारी ने कहा, "आज आप ख़ास तौरपर चिन्तित और उदास क्यों दीख पड़ते हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "मेरे एक सर्वप्रिय ग्रन्थकार का देहान्त हो गया है।"

"क्या तुम्हारा उनसे घनिष्ट सम्बन्ध था ?"

"नहीं तो, मैं कई वर्षसे उनकी रचनाओंका प्रशंसक रहा हूं।" मैंने उत्तर दिया।

"तब तो तुम अजीब आदमी हो ! इसमें इतने दुःखित होनेकी बात ही क्या है ?" उन्होंने पूछा। मैं उन्हें कैसे समझाता कि किसी लेखकके लिए अपने आराध्यका देहान्त कितना कष्टप्रद हो सकता है !

कलकत्तेकी पिछली यात्रामें पता लगा कि स्टीफ़न ज़्विगका आत्म-चरित छप गया है। 'कलकी दुनिया' ('The World of Yesterday') की प्रति मँगा ली और दो महीनेसे उसका निरन्तर स्वाध्याय कर रहा हूँ। अपनी श्रद्धाकी केवल एक बात और कह कर इस श्रद्धाञ्जलिको समाप्त कर दूंगा। अपनी पिछली भयंकर बीमारीके दिनोंमें मुझे ज़्विगके आत्मचरितने जीवित रहनेकी प्रेरणा दी थी। यदि मेरे पास

समय होता तो ज़्विगके समस्त ग्रन्थोंका अनुवाद करके अपने जीवनको सफल करता।

पाठक इन व्यक्तिगत बातोंके लिए मुझे क्षमा करें और अब मेरी निगाहसे उस सच्चे साहित्य-साधकके जीवनकी एक झाँकी देख लें।

× × ×

नवम्बर १९३१

सेल्ज़वर्ग (आस्ट्रिया) का एक बुड्ढा पोस्टमेन हाँफता हुआ चिट्ठियों, तारों, अख़बारों और किताबोंके पुलिन्देसे लदा हुआ एक साहबकी कोठीकी सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। वैसे तो उनकी रोज़की डाक ही काफ़ी भारी होती थी, पर आज तो उसने मानों कमर ही तोड़ दी! बात यह हुई थी कि आज एक आस्ट्रियन लेखककी पचासवीं वर्षगाँठ थी। वे जर्मन भाषाके एक महान् ग्रन्थकार थे और जर्मनीके समाचारपत्र अपने कलाकारोंकी रजत-जयन्ती बड़ी शानके साथ मनाया करते थे। इसी कारण आजकी डाक बहुत भारी हो गई थी।

'इंसल वरलैग'——नामक प्रकाशन संस्थाने लेखककी सब किताबोंकी तथा भिन्न-भिन्न भाषाओंमें उनके जो अनुवाद हुए थे, उनकी सूची पुस्तकाकार प्रकाशित करके भेंट-स्वरूप भेज दी थी। उस सूचीमें संसारकी प्रायः मुख्य-मुख्य भाषाएँ आ गई थीं, यहाँ तक कि अन्धोंके लिए भी उनकी किताबें ब्रेली पद्धतिमें लिख दी गई थीं! पाठकोंको यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जगत्के इस अत्यन्त लोकप्रिय लेखकका नाम था स्टीफ़न ज़्विग। जिन भाषाओंमें उनके ग्रन्थोंके अनुवाद हो चुके हैं, उनके नाम सुन लीजिए——

आर्मीनियन	फ़रांसीसी	नार्वेजियन
बलगेरियन	जार्जियन	पोलिश
कैटेलन	यूनानी	पोर्चुगीज़
चीनी	हेब्रू	रुमानियन

क्रोशियन	हंगेरियन	रशियन
ज़ैक	इटैलियन	सर्वियन
डैनिश	जापानी	स्पैनिश
डच	लैटिश	स्वीडिश
अंग्रेज़ी	लिथूनियन	अक्रेनियन
फ़िनिश	मराठी	यिड्डिश

एक बार 'लीग आव नेशन्स' (राष्ट्र-संघ) की 'अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग' नामक संस्थाने जाँच करके अपनी रिपोर्टमें लिखा था—"इस समय संसारमें सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार स्टीफ़न ज़्विग हैं।"

स्टीफ़न ज़्विगका जन्म सन् १८८१ में वियनामें हुआ था। उनके पिता मोरावियाके एक यहूदी थे और वे बड़े चतुर व्यापारी थे। अपने कौशलके कारण वे अपनी पचासवीं वर्षमें करोड़पति बन गए थे। ज़्विगकी माता इटलीके अनकोना नामक स्थानमें पैदा हुई थीं और इटैलियन तथा जर्मन दोनों भाषाओंको बखूबी बोल सकती थीं। ज़्विगके नाना के कुटुम्बी स्विटज़रलैंडकी सीमाके निकट रहते थे और वहाँ से वे भिन्न-भिन्न देशोंको चले गए थे। कोई फ्रांस गए, कोई इटली तो कोई अमरीका। इस प्रकार उस परिवारके बच्चे जन्मसे ही कई भाषाएँ बोल सकते थे! अतएव अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणको विकसित करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था।

वियना नगरी अपने साहित्यिक तथा साँस्कृतिक वातावरणके लिए योरोपभरमें प्रसिद्ध थी। वह दो हज़ार वर्ष पुरानी थी और कम-से-कम एक हज़ार वर्षसे तो उसकी साँस्कृतिक परम्परा बिना किसी बाधाके उत्तरोत्तर बढ़ती चली आ रही थी।

उदाहरणके लिए वहाँकी कॉफ़ीकी दूकानें लीजिए। आने- दो-आने देनेपर वहाँ कोई भी व्यक्ति चाय या कॉफ़ी पी सकता था और साथमें वियनाके ही नहीं, जर्मनी, फ्रान्स, इटली और अमरीका तक के ख़ास-ख़ास

बीसियों अख़बार तथा मासिक पत्र भी पढ़ सकता था। इन दूकानोंपर साहित्यिक लोग अनेक विषयोंपर वार्तालाप तथा वादविवाद किया करते थे। लिखनेके लिए वहाँ कागज़-कलम का प्रबन्ध था और वे अपनी डाक भी वहाँ निपटा सकते थे। कभी-कभी वे ताश भी खेलते थे। दर-असल इन दूकानोंने सार्वजनिक क्लबका रूप धारण कर लिया था। आस्ट्रियाके साँस्कृतिक धरातलको ऊँचा करने और वहाँके निवासियोंके दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय बनानेमें चाय-कॉफ़ीकी इन दूकानोंका ज़बरदस्त हाथ था।

प्रारम्भिक पाठशालामें पढ़नेके बाद ज़्विगको जिमनेशियम नामक विद्यालयमें पढ़नेके लिए भेजा गया। वहाँकी नीरस पढ़ाईके बोझका मनोरंजक व्यौरा ज़्विगके आत्मचरितमें मिलता है। जीवित भाषाओंमें फ्रेंच, अंग्रेज़ी तथा इटैलियन तो पढ़ाई ही जाती थी, पर उनके साथ-साथ ग्रीक तथा लैटिनका भी अध्ययन करना आवश्यक था! मातृभाषा जर्मन अलग। रेखागणित और विज्ञान इनके अलावा! ज़्विगने उस शुष्क जीवनका जो करुणोत्पादक चित्र खींचा है, वह भारतीय विद्यालयोंकी वर्तमान शिक्षण-पद्धतिसे मिलता-जुलता है। यूरोपमें तो परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी है। शिक्षा अब वहाँ भार-स्वरूप नहीं रही, विद्यार्थी समानता के धरातलपर अध्यापकोंसे बातचीत करते हैं और उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा रुचियोंका भी ख्याल रखा जाता है, पर हमारे मुल्क में तो "वही रफ़्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है!"

उपर्युक्त कृत्रिम वातावरणके होते हुए भी यदि स्टीफ़न ज़्विगने अपनी प्रतिभा का विकास कर लिया तो उसका श्रेय उनके क्लासके विद्यार्थियों की स्पर्धाकी भावना को मिलना चाहिए। एक तो उन दिनों वियनामें नाटक, साहित्य तथा कलाके लिए वैसे ही काफ़ी उत्साह था। समाचार-पत्र खासतौरपर इन विषयोंपर लिखा करते थे, नगर की किसी भी साहित्यिक या सांस्कृतिक घटनाको वे उपेक्षाकी दृष्टिसे न देखते थे और फिर जिस

कक्षामें स्टीफ़न ज़्विग भर्ती हुए थे, वह विशेष रूपसे कला-प्रेमी और साहित्यानुरागी थी। क्लासमें पढ़ाया कुछ जाता था और छात्र चुरछिपकर पढ़ते कुछ और ही थे! लैटिनके व्याकरणके पृष्ठोंके पीछे कविताओंके पन्ने जोड़ दिए जाते थे और गणितकी कापियोंपर सुन्दर-से-सुन्दर काव्योंकी नकल कर दी जाती थी! शिक्षक शिलरकी कविताओंपर लेक्चर देते थे और विद्यार्थी डैस्कमें छिपा-छिपाकर नीत्सेके ग्रन्थ पढ़ते थे! छात्रोंमें यह प्रतियोगिता रहती थी कि हमारा ज्ञान अपटूडेट रहे। वे पुस्तक-विक्रेताओंकी दूकानें छान डालते थे, नवीन किताबोंकी प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठासे करते थे, पुस्तकालयोंसे ग्रन्थ लाते थे और जो कोई विद्यार्थी नई बातका पता लगा लेता तो वह दूसरे संगी-साथियोंको उसे बतलानेमें गौरव अनुभव करता था। उन लोगोंमें होड़-सी लगी रहती थी कि कौन पहले किसी नवीन चीज़का पता लगा ले। इसके सिवा विद्यार्थीयोंकी प्रतिभाके विकास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला वियनाकी चाय-कॉफीकी दूकानोंने, जिनका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके है। सत्रह वर्षकी उम्रमें स्टीफ़न ज़्विगने जिस लगनके साथ साहित्यका अध्ययन किया था, वह लगन अपने जीवनके उत्तर भागमें वे कदापि प्रदर्शित नहीं कर सके। वाल्ट ह्विटमैन तथा अन्य कवियोंकी बीसियों कविताएं उन्हें कण्ठस्थ थीं। आगे चलकर स्टीफ़न ज़्विगको साहित्य-जगत्में जो विश्व-व्यापी कीर्ति मिली उसकी नींव विद्यार्थी जीवनमें ही पड़ चुकी थी। उन्होंने लिखा है––

"विद्यार्थी जीवनकी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जिज्ञासाने मेरे रक्तमें प्रवेश कर लिया था––बौद्धिक प्रेरणा मेरी नस-नसमें व्याप्त हो गई थी और आगे चलकर जो कुछ मैंने पढ़ा और सीखा उसका दृढ आधार उन्हीं वर्षोंका अध्ययन है। यदि बाल्यावस्थामें किसी आदमीका शरीर निर्बल रह जाय तो बड़ी उम्रमें वह उसकी क्षति-पूर्ति कर सकता है, पर यदि कोई अपनेमें विश्वात्माका अनुभव करना चाहता हो तो उसके लिए यह

अनिवार्य है कि वह यौवनावस्थामें ही आत्माकी ग्रहणशक्ति को विकसित कर ले।"

जब स्टीफ़न ज़्विग केवल उन्नीस वर्षके ही थे, जर्मन-काव्य ग्रन्थोंके एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशकने उनकी कविताओंका एक संग्रह छापना स्वीकृत कर लिया। उस समय उस नवयुवक कवि को जो हर्ष हुआ, उसका बड़ा आकर्षक वर्णन उन्होंने किया है। उस ग्रन्थकी मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रों तथा प्रतिष्ठित कवियोंने मुक्त कंठसे प्रशंसा की थी और जर्मनीके एक सर्वोत्तम गायनाचार्यने उनकी छः कविताओंको स्वरलिपियोंमें बद्ध कर दिया था !

पर स्टीफ़न ज़्विग अपनी रचनाओंके विषयमें अत्यन्त सावधान और काफ़ी कठोर रहे हैं। उस काव्यग्रन्थकी एक भी कविता उन्होंने अपने बादके संग्रहमें शामिल नहीं की ! उन्होंने अपने साहित्यिक जीवनका एक सिद्धान्त बना लिया था कि कोई भी अधपकी चीज हमारे हाथसे न निकलने पावे। इसी कारण उन्होंने अपने प्रारम्भिक जीवनकी कितनी ही पुस्तकें दुबारा नहीं छपने दीं ! १९०१ में उनकी प्रथम पुस्तक छपी थी और फ़रवरी सन् १९४२ में, अपने आत्मघातके पहले, उन्होंने अपनी अन्तिम पुस्तक प्रकाशकको भेज दी थी। इस बयालीस-वर्षीय अखण्ड साहित्यिक तपस्याका दृष्टान्त विश्व-साहित्यमें मुश्किलसे ही मिलेगा।

हम पहले बतला चुके हैं कि संसारकी तीस भाषाओंमें ज़्विगकी पुस्तकोंका अनुवाद हो चुका है। जर्मनी, फ्रांस और इटलीमें वे समानरूपसे लोकप्रिय थे। उनके ग्रन्थ लाखोंकी संख्यामें छपकर जर्मनीमें घर-घर फैल गये थे। इटलीमें मुसोलिनी उनकी रचनाओंके प्रशंसकोंमें अग्रगण्य थे और रूसमें मैक्सिम गोर्कीने उनके ग्रन्थोंके रूसी अनुवादकी भूमिका लिखी थी। अंग्रेज़ीमें उनके सत्रह ग्रन्थोंका अनुवाद हो चुका है। उनकी किसी-किसी किताबकी पचास-पचास हज़ार प्रतियाँ एक वर्षमें

बिक गई ! उनकी कितनी ही पुस्तकोंके आधारपर नाटक बनाये गए, कितनी ही पर फिल्में बनाई गई और बाज़-बाज़ पुस्तक ढाई लाख छपी और फिर संसारका सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार होना क्या कम गौरवकी बात है ?

ज़्विगने बड़ी विनम्रताके साथ अपनी इस सफलताका रहस्य आत्मचरितमें बतलाया है। वे लिखते हैं--

"मुझमें एक बड़ी भारी कमज़ोरी है, वह यह कि किसी भी अनावश्यक वाक्य या प्रसंगको पढ़कर मुझे बड़ी झुँझलाहट होती है, किसी भी अस्पष्ट बातसे मेरा धैर्य छूट जाता है और कोई भी चीज़, जो पुस्तकके प्रवाहमें बाधा डाले, मेरे लिए असह्य हो उठती है। बस मेरी यह स्वभावगत कमज़ोरी ही मेरी सफलताका मूल कारण है।"

ज़्विगके लिखनेका तरीका यह था कि पहले तो वे जितना भी मसाला किसी विषयपर मिल सकता, इकट्ठा करते थे और उसके लिए वे कोना-कोना छान डालते थे--क्या मजाल कि कोई चीज उनकी तेज़ निगाहसे छूट जाय--और फिर प्रथम पाण्डुलिपि तैयार कर लेते थे। तब उनका वास्तविक कार्य प्रारम्भ होता था। अगर पहली कापी एक हजार पृष्ठकी होती तो अन्तिममें सिर्फ़ दो सौ ही पृष्ठ बाक़ी रह जाते थे ! शेष आठ सौको रद्दीकी टोकरीमें फेंक देना कोई आसान काम न था, पर इसमें उन्हें अलौकिक आनन्द मिलता था !

एक बार ज़्विग महोदय बड़े प्रसन्न दीख पड़ रहे थे। उनकी पत्नीने उनसे कहा, "मालूम होता है कि आज आपने अपनी किसी रचनाकी काफ़ी काट-छाँट कर डाली है !"

ज़्विगने बड़े अभिमान के साथ उत्तर दिया--"हाँ, मैंने एक पैराग्राफ़को साफ़ उड़ा दिया और घटना-प्रवाहमें और भी गति ला दी।"

'काता और ले दौड़े' की नीतिके अनुयायी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

ज़िवग लिखते हैं—

"मैंने तमाम बाहरी सम्मानोंको अस्वीकार ही किया है। कभी किसी पद या प्रतिष्ठा अथवा उपाधि इत्यादिको ग्रहण नहीं किया। न किसी सभाका प्रधान बना और न किसी सोसाइटी या कमेटी अथवा परिषद्से अपना सम्बन्ध रक्खा। भोजोंमें शामिल होना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद रहा है और किसीसे कुछ माँगनेके पहले ही—चाहे वह प्रार्थना परोप-कारार्थ ही क्यों न हो—मेरी ज़बान सूख जाती है। मै जानता हूँ कि आज की दुनियामें इस प्रकारके ख्यालात दकियानूसी ही माने जावेंगे। पद और उपाधि इत्यादिसे एक फायदा तो होता ही है, वह यह कि आदमी धक्कम-धक्केसे वच जाता है। पर मेरे मनमें एक आन्तरिक अभिमान है, जिसे मैंने अपने पिताजीसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमें पाया है और उसी अभिमानके कारण मैं इन तमाम उपाधि व्याधियोंसे बचा रहा हूँ।"

ज़िवगके पिताजी करोड़पति थे और थे अव्वल नम्बरके स्वाभिमानी। वे किसी का भी अहसान अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे। उनके लिए मान-सम्मान प्राप्त करना वहुत आसान था, पर आत्माभिमानवश वे उनसे दूर ही भागते रहे। ज़िवगने भी इसी नीतिका अनुसरण किया। जिस प्रकार कोई नट बाँसके सन्तुलनके द्वारा रस्सी पर चला जाता है और इधर-उधर नहीं झाँकता, उसी प्रकार ज़िवगने माता सरस्वतीकी आरा-धनामें कभी कोई आघात नहीं आने दिया। **'समत्वं योगमुच्यते'** योगकी इस परिभाषाके अनुसार ज़िवग सचमुच साहित्य-योगी थे।

ज़िवगने अपने जीवन-चरितमें नवयुवक लेखकोंको एक वड़े पतेकी बात वतलाई है। वे लिखते हैं—

"यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्यके विषयमें अनिश्चित हो तो उसे मैं एक ही परामर्श दूंगा, वह यह कि वह किसी महान् लेखककी छोटी-मोटी पुस्तकका अनुवाद करे या फिर उसके आधारपर कोई ग्रन्थ लिख दे। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्म-त्यागकी भावना से करेगा, उसमें

उसे अपनी कृतिकी अपेक्षा सफलता मिलनेकी विशेष सम्भावना रहेगी; क्योंकि भक्ति-पूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदापि निष्फल नहीं होता।"

ज़्विगका यह अनुभूत प्रयोग---आजमूदा नुसखा---था और यह हृदयंगम करनेकी चीज़ है। वरहेरन नामक फरांसीसी कविकी रचनाओंके अनुवादमें उन्होंने दो-ढाई वर्ष लगा दिए थे और इस प्रकार अपनी स्थायी कीर्ति की नींव रक्खी थी। अनुवाद इतना बढ़िया हुआ था कि खुद फ्रेंच भाषाकी अपेक्षा जर्मन-भाषामें वरहेरनका नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया!

महाकवि चकबस्तने कहा था, "दीन क्या है, किसी कामिलकी इबादत करना।" अर्थात् योग्योंकी पूजा ही वास्तविक धर्म है। ज़्विगकी रचनाओं-को देखकर यह निश्चय हो जाता है कि उन्होंने भी योग्योंकी पूजाको ही अपना साहित्यिक धर्म मान लिया था। यद्यपि ज़्विग अच्छे कवि थे, बहुत बढिया नाटककार और यूरोपमें उनके मुकाबलेके आलोचक बहुत ही कम पाये जाते थे, तथापि उनकी कीर्ति मुख्यतया उनके लिखे जीवन-चरितोंसे ही चिरस्थायी रहेगी। उनका लिखा रोमाँ रोलाँका जीवन-चरित एक आदर्श ग्रन्थ माना जायगा। इनके सिवाय बालज़क, डिकिन्स, स्टेण्डहल, फाउचे, ऐरेसमस, मेरी स्टुआर्ट, मेरी एण्टोइनेट और फ़ायड इत्यादि पर लिखे हुए उनके विस्तृत निबन्ध, ग्रन्थ अथवा रेखाचित्र उनकी चरित्र-चित्रणकी असाधारण योग्यताको प्रकट करते हैं। सूखी हड्डियोंमें जान डाल देना ज़्विगके लिए मानों बाएँ हाथका खेल था। चरित-नायकों या चरित-नायिकाओंकी अन्तरात्मामें प्रवेश करके उनकी जीती-जागती मूर्ति पाठकोंके सम्मुख खड़ी कर देनेकी कलामें वे अद्वितीय थे।

किसी प्रतिभाशाली लेखकके प्रसिद्धि प्राप्त कर लेनेपर तो उसके सहस्रों प्रशंसक मिल जाते हैं। ज़्विगकी दूरदर्शिताकी तारीफ़ करनी चाहिए कि वे छिपे हुए हीरोंको प्रकाशमें लाया करते थे। उनका परिचय

रोमाँ रोलाँसे जिस प्रकार हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरंजक है। ज़्विग महोदय एक बार किसी रूसी महिलाके यहाँ निमन्त्रित किये गए थे। वे स्थापत्य-कलामें विशेषज्ञ थीं और मूर्तियाँ बनाया करती थीं। ज़्विग महोदय ठीक वक्त पर उनके यहाँ पहुँचे, पर श्रीमतीजी ग़ैरहाज़िर थी—(रूसी लोग भी हम भारतीयोंकी तरह ही समयके ग़ैरपाबन्द होते हैं!) इसलिए ज़्विगने बैठे-बैठे एक पत्रिका हाथमें उठाली। वह रोमाँ रोलाँकी मित्र-मण्डली द्वारा सम्पादित थी और 'जाँ क्रिस्ताफ़' नामक उपन्यास, जिसपर आगे चलकर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पत्रिकामें धारावाहिक रूपसे निकल रहा था। उन महिलाके आनेपर ज़्विगने उनसे पूछा—"ये रोमा रोलाँ महाशय कौन है?" वे इसका कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दे सकीं! पेरिस पहुँचकर ज़्विगने रोमाँ रोलाँको तलाश करना शुरू किया। पर किसीसे उनके बारेमें पूरा-पूरा पता न चला! आख़िरकार ज़्विगने अपनी एक पुस्तक रोमाँके नाम भेज दी और उन्होंने उत्तरमें लिखा, "आप मेरे यहाँ पधारनेकी कृपा कीजिए।" ज़्विग उनसे मिले और दोनों में जो घनिष्ट मित्रता स्थापित हो गई, वह जीवनके अंत तक रही। १९२१में उन्होंने जर्मन-भाषामें रोमाँ रोलाँका जीवन-चरित प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद अँग्रेजीमें भी हो चुका है।

ज़्विग संसारके नागरिक थे। अपनी क़लमसे उन्होंने कभी भी एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखा जो जातीय विद्वेषको फैलानेमें सहायक होता। यद्यपि राष्ट्रीयताके नक्कारख़ानेमें उनकी तूतीकी आवाज़ किसीने नहीं सुनी, तथापि वे अपने निर्दिष्ट मार्गसे कभी विचलित नहीं हुए। जिन्होंने प्रथम महायुद्धमें (१९१४ से १९१८ तक) विचार-स्वातन्त्र्यका झण्डा ऊँचा रखा और जो घृणा तथा विद्वेषके वातावरणसे ऊँचे उठ सके, ऐसे यूरोपियन लेखकोंमें रोमाँ रोलाँ तथा स्टीफ़न ज़्विग अग्रगण्य थे और इस पिछले महायुद्धका दुष्परिणाम दोनोंको ही भयंकर रूपमे भोगना पड़ा। दोनों ही हिटलरशाहीकी बलिवेदीपर बलिदान हो गये!

यदि किसी लेखकको नाज़ीवादके अत्याचारोंको सबसे अधिक मात्रामें-सहन करना पड़ा तो वे स्टीफ़न ज़्विग ही थे। उनकी किताबें लाखोंकी संख्यामें जर्मनीमें फैली हुई थीं। वे सब ज़ब्त कर ली गईं, जलवा दी गईं और बची-खुची तालोंमें बन्द कर दी गईं! उन्हें एक मुल्कसे दूसरे मुल्कको भागे-भागे फिरना पड़ा। उनका लाखोंकी कीमतका साहित्यिक संग्रहालय, जिसकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ प्राइवेट म्यूज़ियमोंमें की जानी चाहिए, छिन्न-भिन्न हो गया और उनके पारिवारिक कष्ट भी पराकाष्ठाको पहुंच गए। अपनी पूज्य वृद्धा माताकी अन्तिम बीमारीके दिनोंमें वे उनकी मृत्युशय्याके पास भी न पहुँच सके! ज़्विग आस्ट्रियन थे, यहूदी थे, संसारके नागरिक थे, उनका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था और वे शान्तिवादी थे। इसमेंसे एक ही चीज़ उनकी अनुभूतियोंको कष्टमय बनानेके लिए पर्याप्त थी, पर उसमें तो ये सभी एकत्र हो गई थीं। इसलिए उन्हें भरपूर मात्रामें कालकूटका पान करना पड़ा—ज़हरके एक-दो प्याले नहीं, घड़े-के-घड़े पीने पड़े!

इस संक्षिप्त लेखमें हम ज़्विगके आत्मचरितका शतांश भी नहीं दे सकते। उनके लिए तो एक लेख-माला ही लिखी जानी चाहिए। यहाँ हम उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित करते हैं, जो उन्होंने अपनी पत्नीके साथ विषपान करनेके पूर्व २२ फरवरी, सन् १९४२ को लिखा था।—

निवेदन

"स्वेच्छासे और अपने होश-हवाशकी दुरुस्तगीमें अपने प्राण-त्याग करनेके पहले मैं अपना अन्तिम कर्तव्य-पालन करना चाहता हूँ। मैं ब्रेज़िल देशकी आश्चर्य-जनक भूमिको, जिसने मुझे प्रेमपूर्ण आश्रय दिया, हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस भूमि-खंडके प्रति मेरे हृदयमें श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती ही गई है और यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ मैं अपना जीवन पुनः प्रारम्भ कर सकता था तो वह ब्रेज़ील ही है; क्योंकि मेरी मातृ-भाषा

की भूमि मेरे लिए समाप्त हो चुकी है और मेरी आध्यात्मिक मातृ-भूमि यूरोपने आत्मघात कर लिया है।

"लेकिन अब मैं साठ वर्षसे ऊपरका हो चुका और अब बिल्कुल नवीन जीवन प्रारम्भ करनेके लिए असाधारण शक्तिकी आवश्यकता है। जो शक्ति मुझमें थी, वह वर्षोंतक लामकान होकर इधर-से-उधर भागे फिरनेमें ख़र्च होचुकी है। इसलिए मैं यही ठीक समझता हूँ कि इस ज़िन्दगीका ख़ात्मा कर दिया जाय। जिस जीवनमें मुझे बौद्धिक परिश्रमसे सबसे अधिक आनन्द मिला और जिसमें मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनताको ही संसारकी सर्वोच्च वस्तु समझा, उसकी समाप्ति ठीक समय पर, जबकि मैं तनकर खड़ा हो सकता हूँ, हो जानी चाहिए। सम्पूर्ण मित्रमण्डलको मैं नमस्कार करता हूँ। ईश्वर करे कि दीर्घ रात्रिके बाद उषाके दर्शन करनेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो। मैं तो अपना धैर्य खो चुका हूँ, इसलिए उसके पहले ही बिदा होता हूँ।

पैट्रोपोलिस —स्टीफ़न ज़्विग
२२-२-१९४२

जहाँ तक हृदयकी कोमल भावनाओंके विश्लेषण और चित्रणका सम्बन्ध है, ज़्विगकी गणना संसारके सर्वश्रेष्ठ लेखकोंमें कवीन्द्र रवीन्द्र और रोमाँ रोलाँ के साथ ही की जायगी, पर जहाँ लेखन-प्रवृत्तिकी वफादारी का प्रश्न है, ज़्विग निस्सन्देह अद्वितीय थे। ज़िन्दगीके जो उतार-चढ़ाव उन्होंने देखे, जिस तरह बेघरबारके होकर उन्हें एक देशसे दूसरे देशको भागना पड़ा, यहूदी होनेके कारण उन्हें घृणाका जितना अधिक शिकार बनना पड़ा और अपनी कोमल भावनाओं पर जितने ज़बरदस्त आघात सहने पड़े, उनके मुक़ाबलेमें संसारके बड़े-से-बड़े साहित्य-सेवियोंकी तपस्या फीकी पड़ जायगी। ज़्विग दुःखोंके विश्वविद्यालयमें से आचार्य होकर निकले थे, जबकि दूसरे लोग केवल प्रवेशिका परीक्षा पास कर पाते हैं या हद-से-हद स्नातक ही बन पाते हैं!

सम्भवतः कुछ महानुभाव ज़्विगके आत्मघातके महत्वको न समझ सकेंगे। उनसे हमारा अनुरोध है कि वे उनके विस्तृत आत्मचरितको पढ़ें। वीणाके तार भला घनकी चोटोंको कबतक सहन कर सकते थे ?

यद्यपि हिटलरशाही तथा नाज़ीवादको खासी करारी चोटें सहनी पड़ी है और दोनों ही आज धराशायी होकर धूल चाट रहे हैं, तथापि जो मर्मान्तिक चोट ज़्विगने अपने इस आत्मचरितसे दी है, उसकी कसक सबसे अधिक व्यापक होगी।

ज़्विगका आत्म-चरित और आत्मबलिदान इस बातका प्रमाण है कि सहस्रों वायुयान तथा लाखों बम जो काम नहीं कर सकते, वह एक दृढ़-प्रतिज्ञ आत्मा कर सकती है। विशालकाय हाथीके क्षुद्र चींटी द्वारा मारे जानेकी बात सच है या नहीं, हम नहीं जानते, पर नाज़ीवादके भूतके लिए ज़्विगकी जीवनी शिवकी विभूति है। एक साहित्य-साधक सतीकी तरह साधना करके और अपनी समस्त शक्तियोंको केन्द्रित करके कितना ऊँचा उठ सकता है, ज़्विगका जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टांत है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम तथा विश्वव्यापी शान्तिके जिन सिद्धान्तोंके लिए ज़्विग जिये और मरे, वे सिद्धान्त आज भी संसारमें स्थापित नहीं हो पाये और आज भी जगत्के आकाशमें घृणा तथा विद्वेषकी घटाएँ छाई हुई हैं। पर यह अन्धकारमय रात्रि बहुत दिनों तक नहीं रहेगी और जिस उषाका स्वप्न ज़्विगने देखा था, उसके कभी-न-कभी दर्शन अवश्य होंगे।

जिस महामानवने अपनी जीवन-ज्योति द्वारा द्वेषके अन्धकारको दूर करने और प्रेमके प्रकाशको लानेके लिए भरपूर प्रयत्न किया और फिर जिसने अपनी इस जीवन-ज्योतिको नाटकीय ढंगसे बुझाकर उस पर्देकी वीभत्स कालिमाके पूर्ण रूपसे दर्शन करा दिये, उस अद्वितीय

साहित्य-साधक स्टीफ़न ज़्विगकी स्मृतिमें हमारी यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

ज़्विग अमर है और वह दिन शीघ्र ही आनेवाला है, जब यूरोपकी तरह भारतवर्षमें भी उनके ग्रन्थ लोकप्रिय बनेंगे और उन्हें अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी। कीर्तिर्यस्य स जीवति।

: ११ :

पतिव्रता जयिनी

"बहन, यह खयाल मत करना कि इन छोटे-छोटे कष्टोंके कारण मैं हिम्मत हार बैठी हूँ। मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि मैं अकेली ही तकलीफ़में नहीं हूँ। दुनियामें लाखों आदमी मुझसे कहीं अधिक कष्ट पा रहे हैं, बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि इन तमाम दुःखोंके होते हुए भी मैं बड़ी सौभाग्यशालिनी हूँ। दर-असल मैं अपनेको बहुत सुखी मानती हूँ, क्योंकि मेरे प्रिय पति, जो मेरे जीवनके आधार हैं, बराबर हर वक़्त मेरे साथ हैं। पर एक बात है, जिसके बोझसे मेरी अन्तरात्मा दबी जा रही है और जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, वह यह कि मेरे पतिको इतनी अधिक चिन्ता करनी पड़ती है और इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। अत्यन्त भयंकर दुःखमय स्थितिमें भी वे आत्म-विश्वास नहीं खोते, भविष्यके लिए आशा करते है, हमेशा हँसमुख बने रहते हैं और हँसी-मज़ाक करते रहते हैं। मुझे प्रसन्नचित्त देखकर उन्हें बड़ी खुशी होती है, और जब वे प्यारे बच्चोंको मेरे चारों ओर किलकारियाँ मारते हुए देखते हैं. तो उनका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।"

साम्यवादके प्रवर्तक कार्ल मार्क्सकी धर्मपत्नी जयिनीने उपर्युक्त पत्र अपनी एक सहेलीको लिखा था। अब उन 'छोटे-छोटे' कष्टोंका भी हाल सुन लीजिए, जो इस दम्पतिको उठाने पड़ रहे थे।

उन दिनों कार्ल मार्क्स लन्दनमें रह रहे थे। डीन स्ट्रीट नं० २८के दो छोटे-छोटे कमरोंमें अत्यन्त निर्धन आदमियोंकी बस्तीमें अपने तमाम बाल-बच्चोंके साथ छः वर्ष तक उन्हें रहना पड़ा था। एक शयन-गृह और

दूसरा बैठकखाना, रसोईघर और पढ़ने-लिखनेके कमरेका काम देता था। आर्थिक संकटका क्या कहना! कार्ल मार्क्सके जीवन-चरितमें ई० बी० कार नामक लेखकने लिखा है—"कितने ही अवसर ऐसे आते थे, जब कि घरमें एक पेनी भी नहीं रहती थी और बाल-बच्चोंके साथ भूखों मरनेकी नौबत आ जाती थी। मकान-मालिक और दुकानदारोंके तक़ाज़ोंके मारे नाकोंदम थी। हर घड़ी कोई-न-कोई खड़ा रहता था। दरवाज़ेपर आवाज़ आती रहती थी—'मार्क्स, ओ मार्क्स, हमारे दाम अभी तक नहीं पहुँचे, हिसाब कबतक साफ़ करोगे?' बच्चे भी इस स्थितिको समझ गये थे और वे यह जवाब देना भी सीख गये थे—'मिस्टर मार्क्स घरपर नहीं हैं, कहीं बाहर गये हुए हैं।' कभी इस दुकानदारसे रुपया उधार लाते, तो कभी उससे। कभी किसी दोस्तका दरवाज़ा खटखटाते, तो कभी किसी बौहरेके यहाँ अपनी स्त्रीका गहना गिरवी रखने जाते! एक चिट्ठीमें कार्ल मार्क्सने लिखा था—

"For the last fortnight I have had to run about for six hours a day in order to raise six pence for some food."

अर्थात्—"पिछले पन्द्रह दिनोंमें मुझे नित्यप्रति छः-छः घंटे इधर-उधर दौड़ना पड़ा है, जिससे कहीसे छः आने पैसे जुटाकर अपने बाल-बच्चोंके तथा अपने पेटमें कुछ डाल सकूं।" कभी-कभी तो उन्हें लिखनेके लिए काग़ज़ लानेके वास्ते अपना ओवरकोट भी गिरवी रखना पड़ता था!"

फ़रवरी सन् १८५२में कार्ल मार्क्सने अपने परम मित्र ऐंजिल्सको लिखा था—"पिछले हफ़्ते-भरसे मेरी हालत बड़े मज़ेकी रही है। सर्दीके मारे घरसे निकला नहीं जाता, क्योंकि ओवरकोट तो गिरवी रखे हुए हैं और गोश्त भी खानेको नहीं मिलता, क्योंकि क़साईने उधार देनेसे इन्कार कर दिया है! . . . . इस बीचमें एक ही ख़ुशख़बरी सुनाई दी है, वह यह कि आख़िर मेरे चचिया ससुर साहब बीमार हैं। सालीकी चिट्ठीमें

यह शुभ समाचार आया है। अगर ये मनहूस चल बसे तो मेरी स्त्रीको कुछ पैसा मिल जायगा और मेरा इस संकटसे उद्धार हो जायगा !"

पर चचिया ससुर साहबको अपने भाईके दामादकी इस प्रकार सहायता करनेकी जल्दी नहीं थी !

सारे कुटुम्बके भूखों मरनेकी नौबत आ गई थी। कभी-कभी उन्हें भोजनके लिए केवल रोटी ही मिलती थी, और उसमें भी मार्क्सको अपना भाग छोड़ देना पड़ता था, जिससे बच्चोंको भर-पेट भोजन मिल सके ! भूख और जाड़ेसे चेतनाहीन-से होनेपर भी कार्ल मार्क्स ब्रिटिश म्यूज़ियममें जाकर अध्ययन करते थे और सामयिक पत्रोंके लिए लेख लिखकर, जिनका पारिश्रमिक बहुत थोड़ा मिलता था, वे कुछ पैसा कमा लेते थे और अपनी गुज़र करते थे। निर्धनतासे अत्यन्त तंग आकर उन्होंने रेलके दफ़्तरमें क्लर्कीके लिए अर्ज़ी दी; पर हस्ताक्षर ख़राब होनेके कारण वह भी नामंजूर हो गई ! बादमें वे 'न्यूयार्क ट्रिब्यून'के लन्दनके संवाददाता नियुक्त हुए। इससे उन्हें एक पौंड प्रति सप्ताह मिल जाता था। वर्षों तक इसी अल्प आयपर सारे परिवारको गुज़र करनी पड़ी थी। लन्दन-जैसे महानगरमें एक पौंडकी नाममात्रकी आमदनीसे क्या हो सकता था, इसका अनुमान पाठक खुद ही कर सकते है।

श्रीमती जयिनी मार्क्सने अपने एक पत्रमें लिखा था—"हम लोगोंके विषयमें कोई यह नहीं कह सकता कि हमने वर्षों तक जो त्याग किये थे, अथवा जो-जो बातें सही हैं, उनका कभी ढिंढोरा पीटा हो। हमारे व्यक्तिगत मामलों और दिक़्क़तोंकी ख़बर बाहर बिलकुल नहीं गई, अथवा यदि गई भी तो बहुत थोड़ी। अपने पत्रका राजनैतिक सम्मान बचानेके लिए और अपने मित्रोंके नागरिक सम्मानकी रक्षाके लिए मेरे पतिने सारा बोझ अपने कन्धोंपर उठा लिया। उन्होंने अपनी सारी आय ख़र्च कर दी और विदा होते समय सम्पादकोंका वेतन तथा अन्य बिल चुकाये, और वे ज़बरदस्ती अपने देशसे निकाल बाहर किये गए। तुम जानते

हो कि हमने अपने लिए कुछ नहीं रखा। मैंने फ्रांकफुर्त जाकर अपने चाँदीके अन्तिम बर्तन गिरवी रखे थे और कोलोनमें अपना फ़र्नीचर बेचा था।....तुम लन्दनकी और वहाँकी अवस्थाको काफ़ी अच्छी तरह जानते हो। तीन बच्चे थे और चौथा उत्पन्न होनेवाला था! केवल किरायेमें प्रतिमास ४२ थेलर चले जाते थे। हमारी जो-कुछ थोड़ी जमा-पूँजी थी, वह शीघ्र ही बिला गई। दूध पिलानेवाली धायके रखनेका सवाल कल्पनासे परे था, इसलिए मैंने अपना ही दूध पिलाकर बच्चेका पालना निश्चय किया, यद्यपि मेरी छाती और पीठमें बराबर भयानक दर्द रहता था। परन्तु उस नन्हें-से बच्चेने चुपचाप मेरी चिन्ताओंको इतना अधिक पी लिया था कि पैदाइशके दिनसे ही वह बीमार-सा था। वह दिन-रात पीड़ासे व्यथित पड़ा रहता था।....इस प्रकार एक दिन मैं बैठी हुई थी कि इतनेमें अचानक मकानवाली आई। उसे हम जाड़ेमें २५० थेलर दे चुके थे और अब यह क़रार हुआ था कि भविष्यमें हम लोग किराया मकान-मालिकको दिया करेंगे। उसने इस इक़रारसे इन्कार कर दिया और पाँच पौण्ड जो किरायेके थे, माँगने लगी। चूंकि हम लोग उसी समय किराया न दे सके, इसलिए दो कान्सटेबिल घुस आये। उन्होंने हमारी बची-खुची चीज़ोंको—चारपाई, कपड़े, बिछौने, यहाँ तक कि मेरे छोटे बच्चेका पालना और मेरी दोनों लड़कियोंके, जो पास खड़ी हुई फूट-फूटकर रो रही थीं, खिलौने तक—कुर्क कर लिया। उन्होंने यह भी धमकी दी कि दो घंटेके भीतर वे प्रत्येक वस्तु उठा ले जायँगे। मैं कठोर भूमिपर अपने सर्दीसे गलते हुए बच्चोंको लिये पड़ी थी।.... दूसरे दिन हमें घरसे निकलना पड़ा। पानी बरस रहा था, ठंड पड़ रही थी और चारों ओर मनहूसी छाई थी। मेरे पति सवेरेसे ही कमरोंकी तलाशमें गये थे; परन्तु चार बच्चोंकी बात सुनकर कोई भी हमें रखनेको राज़ी न होता था। अन्तमें एक मित्रने मदद की। दवाख़ानेवाले, रोटी-वाले, मांसवाले और दूधवालेका दाम चुकानेके लिए मैंने अपने बिस्तर

बेच डाले। मकानवालीके काण्डसे ये सब डर गये थे और सबने फ़ौरन ही अपने-अपने बिल पेश कर दिये थे। बिछौने फुट-पाथपर लाकर एक गाड़ीपर लाद दिये गए। हम लोगोंके पास जो-कुछ था, उसे बेचकर हम लोगोंने पाई-पाई चुका दी।"

इस भयंकर ग़रीबीकी हालतमें इस दम्पतिके कई बच्चे पैदा हुए। मार्क्स बड़े प्रेमी पिता थे। वे कहा करते थे— "Children have to bring up their parents." अर्थात्—"माता-पिता बच्चोका पालन-पोषण थोड़े ही करते हैं, बल्कि बच्चे माता-पिताका पालन-पोषण करते हैं!" अपने प्यारे बच्चोंको वे बड़े प्रेमसे पालते थे। हरएक बच्चेका उन्होंने प्रेमका नाम रख छोड़ा था। अत्यन्त संकटमय स्थितिमें भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी; पर ग़रीबीके कारण जिस मुहल्लेमें उन्हें रहना पड़ता था, वह अत्यन्त गन्दा था और उसकी आबहवा इतनी ख़राब थी कि बच्चे हमेशा बीमार ही रहा करते थे। इन बच्चोंको भूखी माँ कहाँ तक अपना दूध पिलाती? बिचारे एक-एक करके इस दुःखमय संसारसे चलने लगे। इस प्रकार आधे बच्चे अपने माता-पिताको रुलाकर चल बसे! मार्क्सके जीवन-चरित-लेखक मि० जे० स्पारगोने लिखा है— "मार्क्सका चौथा बच्चा हेनरी, जो लन्दनमें उत्पन्न हुआ था, जन्मसे ही दरिद्रताके क्रूर दैत्यके श्रापका भाजन था और उसे छोटी अवस्थामें ही मृत्यु बदी थी, जो सहस्रों ही बच्चोंके भाग्यमें लिखी रहती है।.... यह पहला ही अवसर था, जब मृत्युने मार्क्सके क्षुद्र घरमें प्रवेश किया था। माता-पिताको यह चोट और भी गहरी लगी, क्योंकि वे जानते थे कि उनके नन्हें बच्चेकी, जिसने क्षुधा-पीड़ित माताके स्तनोंका रक्त पिया था, वास्तवमें दरिद्रताने हत्या की थी।"

इसके बाद सन् १८५२की वसन्तऋतुमें इस दुःखी दम्पतिकी छोटी कन्या फ्रान्सिस्काकी मृत्यु हो गई। जयिनीकी डायरीमें उस समयकी भयंकर दरिद्रताका इस प्रकार उल्लेख है—

"इसी वर्ष ईस्टरमें--१८५२--हमारी बेचारी छोटी फ्रान्सिस्का कंठनालीके भयंकर प्रदाहसे चल बसी ! तीन दिन तक बेचारी मृत्युसे संघर्ष करती रही। उसका छोटा मृत शरीर पीछेके छोटे कमरेमें पड़ा था। हम सब आगेके कमरेमें चले आये। रातमें हम लोग उसी कमरेके फ़र्शपर सोये। मेरी तीनों जीवित सन्तानें मेरे पास लेटीं। ....हमारी बच्चीकी मृत्यु उस समय हुई, जब हमारी दरिद्रताका सबसे बुरा समय था। हमारे जर्मन मित्र हमारी सहायता नहीं कर सके।....अन्तमें आत्म-वेदनासे त्रसित होकर मैं एक फ्रेंच निर्वासितके पास गई, जो समीप ही रहता था और कभी-कभी हमारे यहाँ आता था। मैंने उससे अपनी दारुण आवश्यकता बतलाई। उसने तुरन्त ही बड़ी मित्रतापूर्ण सहानुभूतिसे मुझे दो पौण्ड दिये। इसीसे हमने अपनी प्यारी बच्चीके कफ़न (ताबूत)के दाम चुकाये, जिसमें वह शान्तिपूर्वक सुला दी गई !"

इसके बाद जयिनीका आठ वर्षका इकलौता बेटा एडगर, जिसे मार्क्स प्रेमके नामसे यानी 'मश' कहकर पुकारा करते थे, मन्द ज्वरसे चल बसा ! इस भयंकर वज्रपातको मार्क्स भी, जो स्वभावतः बड़े धैर्यशाली थे, सहन नहीं कर सके। मार्क्स कभी किसीके सामने अपना दुखड़ा नहीं रोते थे; पर पुत्र-शोकने उनको भी विचलित कर दिया। उन्होंने उसकी मृत्युके तीन महीने बाद अपने एक मित्रको लिखा था--

"Bacon says that men of real worth have so many relations with nature and the world, so many objects of interest, that they easily get over any loss. I am not one of these men of worth. The death of my child has profoundly shattered my heart and brain, and I feel the loss just as fresh as on the first day. My wife is also quite broken down."

अर्थात्—"बेकनने लिखा है कि जो आदमी वास्तवमें सुयोग्य होते हैं, उनके प्रकृति तथा संसारसे इतने अधिक सम्बन्ध होते हैं और उनकी रुचि इतनी अधिक वस्तुओंमें होती है कि किसी भी क्षति या हानिको वे आसानीसे सहन कर लेते हैं; पर मैं तो उन सुयोग्य व्यक्तियोंमेंसे नहीं हूँ। लड़केकी मृत्युने मेरे हृदय तथा मस्तिष्कको बिलकुल ही चकनाचूर कर दिया है और आज भी वह क्षति मेरे लिए उतनी ही ताज़ी है, जितनी कि पहले दिन थी। मेरी स्त्रीका भी स्वास्थ्य बिलकुल नष्ट हो गया है।"

इस दुर्घटनाने जयिनीको तो बिलकुल पागल-सा ही बना दिया था। बहुत वर्षों बाद तक उसकी हूक उनके कलेजेमें व्याप्त रही। इस वज्रपातके बीस वर्ष बादके एक पत्रमें जयिनीने बड़े ही करुणाजनक ढंगसे लिखा था :

"मैं इस बातको खूब अच्छी तरह जानती हूँ कि इस प्रकारके भयंकर वज्रपातोंको सहन करना कितना कठिन है और फिर इनके बाद अपने मस्तिष्कको ठीक-ठिकाने लानेमें कितनी देर लग जाती है। उस समय जीवनकी छोटी-छोटी प्रसन्नताओं, बड़ी-बड़ी फ़िक्रों, नित्यप्रतिके घरेलू काम-धन्धों और दैनिक झंझटोंसे पीड़ित व्यक्तिको बड़ी मदद मिलती है। तत्कालीन छोटे-छोटे कष्टोंकी वजहसे वह महान् दुःख थोड़ी देरके लिए सो जाता है, और बिना हमारे पहचाने उसकी पीड़ा दिनोंदिन मन्दतर होती जाती है। **यह तो मैं नहीं कहूँगी कि घाव भर जाता है। घाव तो कभी नहीं भरता—ख़ास तौरसे माँके हृदयका घाव तो कभी नहीं पूरता।** लेकिन क्रमशः हृदयमें एक प्रकारकी नवीन ग्रहणशक्ति उत्पन्न होने लगती है, नवीन कष्टों और नवीन प्रसन्नताओंके स्वागतके लिए एक भावना-सी पैदा होने लगती है। इस प्रकार उस पीड़ित व्यक्तिके दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं। उसका हृदय घायल तो रहता ही है; पर उसमें नवीन आशाओंका संचार निरन्तर होता रहता है।

अन्तमें सारा मामला शान्त हो जाता है और अनन्त शान्ति मिल जाती है ।*

संसारके निर्धन पीड़ित व्यक्तियोंको जयिनीके उपर्युक्त वाक्योंसे अवश्य ही बड़ी सान्त्वना मिल सकती है ।

जयिनीका जीवन-चरित किसी उपन्याससे कम मनोरंजक और हृदय-वेधक नहीं है । उसका जन्म एक बड़े साधन-सम्पन्न परिवारमें हुआ था । उसका पिता प्रशियामें एक अत्यन्त उच्च पदपर था । वह मार्क्सकी बड़ी बहन सोफीके साथ एक स्कूलमें पढ़ती थी, इसलिए कभी-कभी सोफीके पास घर आया करती थी । बस, यहींसे प्रेमका अंकुर उगना शुरू हुआ । जयिनीकी उम्र बाईस वर्षकी थी, जबकि कार्ल मार्क्स कुल अठारह वर्षके ही थे ! कुछ दिनों तक तो यह प्रेम छिपा रहा और लोग यही समझते रहे कि जयिनी अपनी सहेली सोफीके पास यों ही आती-जाती है; पर प्रेमकी आँखें कबतक छिपाये छिप सकती हैं ? मार्क्सके माता-पिताको इस बातका पता लग गया; लेकिन जयिनीको इतनी हिम्मत न हुई कि वह अपने माता-पितासे इस बातका ज़िक्र करती । इसके बाद कार्ल

---

* I know only too well how hard it is and how long it lasts before one finds one's balance after such losses. Life comes to our help with its little joys and its big cares, with all its little daily drudgeries and daily vexations, the greater pain is dulled by the little suffering of the hour, and without our noticing it the ache grows fainter. Not that the wound is ever healed, especially not in a mother's heart. But little by little there awakes again in the spirit a new receptiveness and a new feeling for fresh suffering and fresh joy, and so one lives on and on with a wounded yet always hoping heart, until at last all is quiet and there is peace for ever."

मार्क्सको बर्लिन जाना पड़ा। बहन सोफीने इस अवसरपर दूतीका काम किया। कार्ल मार्क्सकी चिट्ठी जयिनीके पास पहुँचाना उसीका काम था। और तो और कार्ल मार्क्सके पिता भी, जो अपने पुत्रको अत्यन्त प्रेम करते थे, इस मामलेमें काफ़ी दिलचस्पी लेने लगे थे। उन्होंने अपनी एक चिट्ठीमें मार्क्सको लिखा था—

"मेरे प्रिय कार्ल, तुम यह बात जानते हो कि कभी-कभी मैं ऐसे मामलोंमें फँस जाता हूँ, जो मुझे इस उम्रमें शोभा नहीं देते और जिनके कारण मुझे बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। तुम्हारी ज....ने मुझपर असीम विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया है और अपने दिलकी प्रत्येक बात वह मुझसे कह देती है। प्यारी भोलीभाली लड़की सदा इस चिन्तामें त्रस्त रहती है कि कहीं उसकी वजहसे तुम्हारे भावी कार्यमें बाधा न पड़े और कहीं तुम सामर्थ्यसे अधिक परिश्रम न करने लगो। उसे सबसे बड़ी फ़िक्र इस बातकी लगी रहती है कि उसके माता-पिता इस बारेमें कुछ भी नहीं जानते, बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि वे इस बारेमें कुछ भी जानना नहीं चाहते। यह बात ख़ुद जयिनीकी समझमें नहीं आती कि वह, जो अपनेको बड़ी सुलझी हुई और समझदार लड़की समझती है, इस प्रेम-पाशमें बँध कैसे गई ?"

अब यह मुश्किल सवाल सामने था कि जयिनीके माता-पिताको इस घटनाकी सूचना कौन दे ? इस बातको जयिनी जानती थी कि जब मेरे माता-पिता सुनेंगे कि मैंने ग़रीब घरके एक लड़केसे, जो मुझसे उम्रमें भी चार वर्ष छोटा है, प्रेम कर लिया है, तो उनके दिलको बड़ा धक्का लगेगा। कहाँ प्रशियाके एक उच्च पदाधिकारीकी लड़की और कहाँ एक साधारण यहूदी वकीलका लड़का !

आख़िर कार्लने यह सोचा कि मैं ही इस कार्यको करूँगा। यह निश्चित हुआ कि वह बर्लिनसे पत्र द्वारा अपने भावी ससुरको इस बातकी सूचना दे। जयिनी डरके मारे थरथर काँपती थी कि न-जाने उसके माता-

पिता इस घटनासे कितने पीड़ित होंगे, इसलिए उसने यह अनुरोध किया कि चिट्ठी डाकमें डालनेसे आठ दिन पहले मुझे ख़बर मिल जानी चाहिए, ताकि मैं उस अग्नि-परीक्षाके लिए तैयार हो जाऊँ! दुर्भाग्यसे कार्ल मार्क्सका वह पत्र सुरक्षित नहीं रहा, और न हमें इस बातका पता लगता है कि आख़िर सास-ससुरने उस पत्रका किस प्रकार स्वागत किया; पर प्रतीत ऐसा होता है कि सास-ससुरने होनहार प्रबल समझकर इस प्रस्तावको सहन कर लिया!

हृदय-क्षेत्रमें प्रेमके इस प्रवेशने कार्ल मार्क्सके नीरस हृदयमें कवित्वका संचार कर दिया! पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि साम्यवादके आचार्य कार्ल मार्क्सकी प्रथम रचना शिक्षित जनताके सम्मुख कविताके रूपमें आई! आगे चलकर श्रीमती जयिनी बड़े अभिमानसे अपने यहाँ आनेवालोंसे कहा करती थीं—"कभी वह भी ज़माना था, जब मेरे ये दार्शनिक और अर्थशास्त्री पति मेरे प्रेमके कारण कवि बन गये थे!"

१२ जून सन् १८४३को—जबकि उनकी सगाई हुए छः-सात वर्ष हो गये थे—मार्क्सने जयिनीका पाणिग्रहण किया। २ दिसम्बर सन् १८८१ तक, जबकि सती-साध्वी जयिनीने इस लोकसे प्रयाण किया, यानी ३८ वर्ष तक, यह जुगल जोड़ी संसारके हितके लिए अनन्त दुःख सहती रही।

विवाहके बाद मार्क्स भोग-विलासमें नहीं पड़ गये। विवाहके बादके तीन महीनोंमें कार्ल मार्क्सने राजनैतिक, आर्थिक तथा विधान-सम्बन्धी इतिहासके एक सौ ग्रन्थ पढ़े और तीन लम्बी-लम्बी कापियोंमें उनके नोट लिये!

विवाहके १८ वर्ष बाद जयिनीने अपनी एक सहेली श्रीमती वेडमेयरको ११ मार्च सन् १८६१के पत्रमें लिखा था—

"यहाँ हमारे जीवनके आरम्भिक वर्ष बड़े कटु थे; परंतु आज मैं उन दुःखदायिनी स्मृतियोंपर, अपने कष्टों और दुःखोंपर अथवा अपने

प्यारे स्वर्गीय बच्चोंपर––जिनके चित्र हमारे हृदयमें गहरे शोकसे अंकित हैं—कुछ नहीं लिखना चाहती।...फिर पहला अमेरिकन संकट आया और हमारी आय "न्यूयार्क ट्रिब्यून'से काटकर आधी कर दी गई। एक बार फिर हमें अपने पारिवारिक व्ययको संकुचित करना पड़ा और हमपर क़र्ज़ भी हो गया।....अब मैं अपने जीवनके सबसे उज्ज्वल अंशपर आती हूँ। जो हमारे अस्तित्वमें प्रकाश और प्रसन्नताकी एकमात्र किरण थी—वह थीं हमारी लड़कियाँ। हमारी लड़कियाँ अपने स्वार्थहीन और मधुर स्वभावसे हमें सदा आनन्दित किया करती हैं; परन्तु उनकी छोटी बहन तो घर-भरके लिए प्रेमकी मूरत हो रही है।....मुझे बड़ा भयंकर बुखार आया और डाक्टर बुलाना पड़ा। २० नवम्बरको डाक्टर आया, उसने मुझे अच्छी तरह देखा और बड़ी देरतक चुप रहनेके बाद बोला—'श्रीमती मार्क्स! मुझे अफ़सोससे कहना पड़ता है कि आपको चेचक निकली है—बच्चोंको फ़ौरन घरसे हटा दीजिए।' उसके इस फ़ैसलेपर घर-भरको कैसा दुःख हुआ और हम कैसी मुसीबतमें पड़े, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो।... मैं मुश्किलसे चारपाई छोड़नेके योग्य हुई थी कि इतनेमें हमारे प्यारे कार्ल बीमार पड़ गये। सब तरहकी चिन्ताओं, फ़िक्रों और अत्यधिक आशंकाओंने उन्हें चारपाईसे लगा दिया। परन्तु ईश्वरको धन्यवाद है कि चार सप्ताहकी बीमारीके बाद वे अच्छे हो गये। इस बीचमें फिर 'ट्रिब्यून'ने हमारा वेतन आधा कर दिया था।....मेरी प्यारी सखी, तुम्हें मेरा प्रेमपूर्ण अभिवादन है। ईश्वर करे, परीक्षाके इन दिनोंमें तुम वीर बनी रहो। संसार साहसी व्यक्तियोंका है। बराबर अपने पतिको दृढ़ता और हृदयसे सहायता देती रहो तथा शरीर और मनको सदा सहिष्णु बनाये रखो।.... तुम्हारी हार्दिक मित्र—जेनी मार्क्स!"

आर्थिक दुर्दशाकी हद हो गई थी। शनिवारका दिन था। घरमें एक पैसा भी न था, न किसी मित्रसे कुछ उधार मिला और न किसी दुकान-

दारने सामान उधार दिया ! कल इतवारको सवेरे खाना कैसे बनेगा, इसकी फ़िक्र थी। आखिर जयिनीने कहा—"और तो कुछ है नहीं, मेरे मायकेके ये ठोस चाँदीके चम्मच हैं, इन्हें कहीं गिरवी रखके कुछ दाम लाओ।" कार्ल मार्क्स उन्हें ही लेकर दुकानदारके पास पहुँचे। दुकानदारने देखा कि उन चाँदीके चम्मचोंके ऊपर अर्जिलके ड्यूकका राजचिह्न है। उसे शक हुआ और उसने सोचा कि हो न हो, इस विदेशी भिखमंगेने इस चीज़को कहींसे चुराया है ! चोरीका माल समझकर उसने पुलिसके सिपाहीको बुलाया। मार्क्सने बहुत समझाया-बुझाया कि इन्हें मेरी पत्नी अपने मायकेसे लाई है; पर उनकी कौन सुनता है ? पुलिसवाला कार्ल मार्क्सको पकड़कर थानेपर ले गया। वहाँ उन्हें जाकर हवालातमें बन्द कर दिया और कह दिया कि जब तक जाँच न हो जाय, तबतक यहीं बैठो। सोमवारको सवेरे जाकर पता लगा कि ये महाशय कौन हैं और तब वे छोड़ दिये गए।

संकटके दिन आये और एकके बाद दूसरी आपत्तियाँ आईं। जयिनी कभी-कभी बड़ी निराश हो जाती थी। मार्क्सने अपने एक पत्रमें लिखा था—

"My wife tells me every day that she wishes that she and the children were in the grave, and I cannot really blame her, for the humiliations, torments and abominations which we go through in our situation are simply indescribable."

अर्थात्—"मेरी स्त्री मुझसे प्रतिदिन यही कहा करती है कि 'इस दुर्दशासे यही अच्छा होता कि मैं अपने बच्चोंके साथ क़ब्रमें चली गई होती।' पर मैं अपनी पत्नीको दोष नहीं देता, क्योंकि जैसी अपमानजनक स्थितिमें हमें रहना पड़ता है, जो अत्याचार और कष्ट हमें सहने पड़ते हैं, जिस प्रकार पग-पगपर हमें ज़लील होना पड़ता है, उसका बयान नहीं किया जा सकता।"

कार्ल मार्क्सने अपने किसी-किसी पत्रमें जयिनीके चिड़चिड़े स्वभावकी आलोचना की है; पर अनुमान तो कीजिए उस बेचारी पत्नीका, जिसका पति नित्यप्रति बारह-बारह घंटे पुस्तकालयमें बिताता हो, जो अपने बच्चोंको सूखी रोटी खिलानेमें असमर्थ हो और जो घरके लिए नोन-तेल-लकड़ीकी फ़िक्र छोड़कर भावी संसारके प्रश्नोंपर दार्शनिक विचार करनेमें मग्न हो ! भला, इस विकट परिस्थितिमें किस पाठक-पाठिकाकी सहानुभूति जयिनीके साथ न होगी ?

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जयिनी अपने पति मार्क्ससे उम्रमें चार वर्ष बड़ी थी, इसलिए बुढ़ापा उसपर और भी जल्दी आ गया था। छः बच्चे उसके हो चुके थे और ग़रीबी तथा बच्चोंकी मृत्युने उसके शरीरको अत्यन्त निर्बल और मस्तिष्ककी स्नायुओंको और भी कमज़ोर कर दिया था। सबसे बड़ी चिन्ता जयिनीको अपनी लड़कियोंकी रहती थी। ये लड़कियाँ पढ़ने-लिखनेमें बड़ी तेज़ थीं और क्लासमें सदा अव्वल रहा करती थीं। जयिनी एक काम करती थी, वह यह कि पतिकी थोड़ी-सी आमदनीमें से लड़कियोंकी फ़ीस पहले निकाल लेती थी। उसे सबसे बड़ी फ़िक्र इस बातकी थी कि कहीं घरकी निर्धनताके कारण मेरी लड़कियोंको स्कूलमें ज़लील न होना पड़े; पर निर्धन माता-पिताकी इन पुत्रियोंको अपनी सखी-सहेलियोंके सामने आत्म-सम्मानकी रक्षा करना अत्यन्त कठिन हो रहा था। माता और पुत्रियोंमें कभी-कभी झगड़ा हो जाया करता था। ऐसे मौक़ोंपर मार्क्स पुत्रियोंका पक्ष लेते थे। मार्क्सको उस समय बड़ा दुःख हुआ था, जब उनकी लड़कीको मजबूर होकर एक अंग्रेज़ कुटुम्बमें दिन-भर बच्चोंकी देखभाल करने और पढ़ानेकी नौकरी करनी पड़ी थी। कार्ल मार्क्सने उन दिनों अपने एक मित्रको लिखा था—"मेरी स्त्री इतने चिड़चिड़े स्वभावकी हो गई है कि हमेशा बच्चोंको लिये-दिये रहती है। मुझे लड़कीकी नौकरी करना निहायत नापसन्द आया; पर वह बेचारी माँके व्यंगोंसे तो बची रहेगी।"

यद्यपि मार्क्स अपनी पत्नीके इस चिड़चिड़े स्वभावसे, जिसके लिए वे कम ज़िम्मेवार न थे, कभी-कभी तंग आ जाते थे; पर हृदयसे उसके प्रति श्रद्धा रखते थे। एक पत्रमें उन्होंने जयिनीको लिखा था--
"प्रियतमे,

तुम्हारी चिट्ठीसे मुझे बड़ी खुशी हुई। मुझसे हृदयकी सब बात खोलकर कहनेमें तुम्हें कभी संकोच नहीं करना चाहिए। प्रियतमे, जब तुम्हें कठोर वास्तविकताका इतना अधिक सामना करना पड़ता है, तो कम-से-कम इतना फ़र्ज़ मेरा भी है कि तुम्हारे कष्टोंको मैं अपने हृदयसे अनुभव तो करूँ। मैं इस बातको खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारी सहनशक्ति अनन्त है और छोटी-से-छोटी अच्छी ख़बरसे तुममें फिर जान आ जाती है। मुझे आशा है कि तुम्हें इस सप्ताह फिर पाँच पौण्ड भेज सकूँगा। इस सप्ताह नहीं तो सोमवार तक जरूर भेज सकूँगा।"

निस्सन्देह जयिनीमें अनन्त सहनशीलता थी।

अपने संकटके दिन कितने धैर्यके साथ इस दम्पतिने काटे, उसका विस्तृत वृत्तान्त लिखनेके लिए यहाँ स्थान नहीं है। जब कभी वे थोड़ा भी निश्चित होते तो एक-दूसरेका हाथ पकड़कर कमरेमें इधर-उधर टहलते और जर्मन भाषाके प्रेमके गीत गाया करते थे, ठीक उसी प्रकार, जैसे वे अपने देशमें, यौवनके आरम्भमें वसन्तऋतुमें, पुष्पोंसे लदे वृक्षोंके नीचे गाया करते थे।

भोजन-वस्त्रके अभावमें इस प्रकार प्रसन्न रहना अत्यन्त कठिन काम था। एक बार कार्ल मार्क्सके किसी मित्रने जयिनी तथा उसकी दो लड़कियोंके लिए सुन्दर कपड़े भेज दिये थे। उनको धन्यवाद देते हुए जयिनीने लिखा था--"आपको यह सुनकर हर्ष होगा कि लड़कियाँ आपकी भेजी हुई पोशाकको पहनकर बड़ी मनोहर लगती हैं। इन कपड़ोंमें उनके चेहरे कैसे मधुर, कैसे हास्यमय लगते हैं और कैसी ताज़गी उनसे टपकती है! आपने मेरे लिए जो कपड़े भेजे हैं, उन्हें पहनकर मैं भी बड़ी शानदार जँचती

हूँ। जब मैं उन्हें पहनकर अभिमानके साथ अपने कमरेमें टहलने लगी तो छोटी बच्चीने पीछेसे चिल्लाकर कहा—'अम्मा-अम्मा, मोर-जैसी अम्मा!' अगर आज भयंकर सर्दी न होती तो मैं तुम्हारे भेजे हुए इन्हीं वस्त्रोंको पहनकर बाहर निकलती, जिससे पास-पड़ोसके अभिमानी आदमियोंपर कुछ रोब तो गँठता!"

जयिनीका शरीर अत्यन्त जीर्ण हो चुका था। सन् १८८१ में जयिनी अपने पतिके साथ पेरिस गई और अपनी दोनों लड़कियोंसे जो विवाहके बाद पेरिसमें बस गई थी, जाकर मिली। पेरिससे लौटकर मार्क्स अत्यन्त बीमार हो गये। जयिनी तो पहलेसे ही अन्यन्त निर्बल थी। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे दोनों साथ-ही-साथ इस संसारसे कूच करेंगे; पर कार्ल मार्क्सकी तबियत कुछ सुधर गई और जयिनीकी मृत्युके समय वे उपस्थित थे। जब जयिनी बिलकुल मरणासन्न थी, कुछ घंटे ही मरनेमें बाकी थे, तब 'Modern Thought' (आधुनिक विचार) नामक पत्रसे किसी व्यक्तिका लेख, जो मार्क्सकी प्रशंसामें लिखा गया था, उसे सुनाया गया था। विलायत-में यह पहला ही लेख था, जो मार्क्सकी तारीफ़में लिखा गया था। पतिव्रता जयिनीने इस लेखको सुनकर सन्तोषकी एक साँस ली।

२ दिसम्बरको जयिनी स्वर्ग सिधारीं। मार्क्स इसके बाद पन्द्रह महीने और जीवित रहे और अपनी पत्नीकी बराबर याद करते रहे। वे कहते थे—"जयिनी मेरे जीवनके सर्वोत्तम भागकी सहधर्मिणी थी।" १४ मार्च १८८३ को कार्ल मार्क्सका देहान्त हुआ और दोनोंकी समाधि एक ही स्थलपर है।

लाला हरदयालका यह कथन वास्तवमें सत्य है कि युग-युगान्तर तक इस दम्पति—जयिनी-मार्क्स—की कष्ट-गाथा साधारण जनताको प्रोत्सा-हित करती रहेगी और भविष्यके बन्धनमुक्त मजदूरोंके लिए वह बाइबिलका काम देगी।

सितम्बर १९३६]

: १२ :

समाज-सेवी कागावा

मई १९१४

कोबेका एक गिरजाघर आज खूब सजा हुआ है। पादरी डाक्टर मेयर्स और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मेयर्स बड़ी खुशीसे इधर-से-उधर घूम रहे हैं। आज उनके एक जापानी शिष्य और मित्रका विवाह है। गिरजे-में सुन्दर-से-सुन्दर पुष्प इकट्ठे किये गए हैं। फूल बेचनेवाली लड़कियाँ रंग-बिरंगे कपड़े पहने हुए एक पंक्तिमें खड़ी हैं। वह देखिए, दूल्हा और दुल्हिन भी आ पहुँचे। वैवाहिक शपथकी क्रिया समाप्त हुई। बाजे बजने लगे। चारों ओर हर्षका साम्राज्य है। दूल्हेके चेहरेसे प्रकट होता है कि वह दृढ़प्रतिज्ञ पुरुष है और दुलहिनके मुखपर विनम्रता तथा आज्ञाकारिता झलक रही है। दो रिक्शा-कुली इस दम्पतिको घर पहुँचानेके लिए बुलाये गए।

दूल्हेने रिक्शावालोंसे कहा—"चलो भाई, ले चलो शिकावा बस्तीको।"

रिक्शेवालोंके आश्चर्यकी सीमा न रही! उन्होंने एक बार सुशिक्षित दूल्हेको देखा और फिर दुलहिनको और तब सोचने लगे—"कहाँ ये भले आदमी और कहाँ शिकावाकी गन्दी बस्ती, जहाँ निर्धन मज़दूर, वेश्याएँ, चोर, उठाईगीरे और उचक्के रहते हैं! मामला ज़रूर कुछ गड़बड़ है।" रिक्शेवालोंने एक दूसरेकी ओर देखा और साफ़ मना कर दिया! पर यह दम्पति शिकावाको ही गये। दूल्हेका नाम था कागावा और दुलहिनका स्प्रिग (बसन्ती देवी)।

श्रीमती बसन्ती देवीने आकर पतिकी कोठरी देखी। उसका विस्तार

था ६ फ़ीट लम्बाई, ६ फ़ीट चौड़ाई ! और उनकी सुसरालमें कितने व्यक्ति थे ? ७० वर्षका एक बूढ़ा और ६०–६५ वर्षकी एक बुढ़िया, ११ वर्षका एक अपराधी लड़का, एक अनाथ माता और उसके चार बच्चे और एक भिखारिन ! वहाँ तो खड़े होनेको भी जगह नहीं थी। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यह सारा कुटुम्ब 'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के सिद्धान्तके अनुयायी कागावाका परिवार था। किसी नई बहूके सामने ऐसी जटिल समस्या शायद ही उपस्थित हुई हो !

कागावाकी आमदनी कुलजमा तीन पौण्ड यानी क़रीब पैंतालीस रुपये थी और इतने ही में ११ प्राणियोंका पेट भरना था ! सबसे पहला काम बसन्ती देवीने यह किया कि बाज़ारसे सस्ते-से-सस्ते दरके चावल लाई और बिना माँड़ निकाले उन चावलोंको सस्ती तरकारियोंके साथ भोजनके समय देना प्रारम्भ किया। अब ज़रा शिकावा बस्तीका हाल भी सुन लीजिये। चारों तरफ़ गन्दगी और दुर्गन्धिका राज्य था। पाखाना एक था और उसका प्रयोग सौ आदमियों द्वारा होता था ! कपड़ोंको एक छोटी-सी गलीमें धोना पड़ता था और उनके सुखानेके लिए कोई जगह नहीं थी। खटमलोंकी भरमार थी और वे अमर थे—जितने ही मारो, उतने ही बढ़ते थे !

भिखारी हरवक़्त दरवाज़ेपर खड़े ही रहते थे। कभी कोई गुंडा शराब पिये उधरसे आ निकलता था तो कभी कोई बदमाश छुरी खींचकर कहता था कि इतने रुपये धर दो, नहीं तो तुम्हारा अभी ख़ात्मा करता हूँ ! कागावाके लिए उन लोगोंको समझाना-बुझाना कठिन हो जाता था और वे कुछ दे-दिलाकर अपना पिंड छुड़ाते थे। अतिथियोंका क्या पूछना! कभी कागावा किसी ग़रीबको अपने घर ले आते तो कभी किसी बीमारको; कभी कोई अपराधी बालक आता, तो कभी जेलसे छूटी हुई कोई चिड़िया; कभी बीमार वेश्याएँ आश्रय लेतीं तो कभी कोई पागल आ बिराजता। एक मुश्किल और भी थी। कागावा पूर्णतयः शाकाहारी हैं और

दूसरे जापानी उनके इस सिद्धान्तके अनुयायी नहीं थे। पर पतिव्रता बसन्ती देवीने कभी चूँ तक नहीं की और सहृदयतापूर्वक वे अपना सारा काम करती रहीं। वे आसपासके ग़रीब पड़ोसियों के घरपर जातीं, बीमारोंकी सेवा-सुश्रूषा करतीं, प्रसूतिके समय माताओंकी मदद करतीं, नन्हें-नन्हें बच्चोंकी देखभाल करतीं और इसके सिवा समय-समयपर उन्हें उपयोगी सलाह-मशविरा भी देतीं। बसन्ती देवी यद्यपि पढ़ी-लिखी थीं; पर उनको उच्चशिक्षा प्राप्त करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। अब उन्होंने इस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न किया। कागावा दो मज़दूर विद्यार्थियोंको प्रातःकालमें ६ से ७ बजे तक और शामको ५ से ६ बजे तक अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित तथा अन्य विषय पढ़ाते थे। श्रीमती कागावा इस कक्षामें शामिल हो गई और तीसरे पहरको कोबे-स्त्री-समाजके स्कूलमें जाकर बाइबिल पढ़ने लगीं। आगे चलकर उन्होंने बड़ी उम्रमें मैट्रिक परीक्षा पास की और याकोहामामें तीन वर्ष अध्ययन करके ग्रेजुएट बन गई। उन्होंने दो पुस्तकें भी लिखी हैं। एकमें तो उन्होंने फैक्टरीमें काम करनेवाली लड़कियोंका हाल लिखा है और दूसरीमें गन्दे मुहल्लोंका चित्र खींचा है। इन गन्दे मुहल्लेमें जो भयंकर वेश्यावृत्ति चलती है, उसके विषयमें उन्होंने एक लेख किसी पत्रमें लिखा था। इससे किसी वेश्यालयके स्वामीको क्रोध आ गया और मौका देखकर वह कागावाके घरपर आया और श्रीमती कागावाको अकेली पाकर ख़ूब पीटा!

अपने जीवनके पन्द्रह वर्ष कागावाने इस कोठरीमें विताये थे और उसका परिणाम जो हुआ, वह भी सुन लीजिए। कागावाके ग्रन्थोंको पढ़कर, उनके व्याख्यानोंको सुनकर और उनके जीवनको देखकर जापानकी जनताका ध्यान इन गन्दे मुहल्लोंकी ओर आकर्षित हुआ। सन् १९२६ में जापान-सरकारने यह निश्चय किया कि २ करोड़ ६० लाख रुपये ख़र्च करके जापानके ६ बड़े-बड़े नगरोंके (टोक्यो, ओसाका, याकोहामा, कोबे, क्योटो और नागोयाके) गन्दे मुहल्लोंको साफ़ कर दिया जाय। आज

इन नगरोंमेंसे किसीमें गन्दे मुहल्लोंका नामोनिशान नहीं रहा। कागावाकी वह ६ वर्गफ़ीटकी कोठरी चली गई और अपने साथ ही ६ महा-नगरोंके गन्दे मुहल्लोंको भी लेती गई! उस महान् साधकका, जिसकी तपस्याने यह सब सम्भव किया, पुण्यचरित संक्षेपमें पाठकोंको सुनाया जाता है।

कागावाका जन्म १० जुलाई सन् १८८८ को कोबेमें हुआ था। उनका पूरा नाम है टोयोहिको कागावा। उनके पिता पहले अवा प्रान्तमें उन्नीस गाँवोंके मुखिया थे और बादमें बढ़ते-बढ़ते वे प्रिवी कौन्सिलके सेक्रेटरी बना दिये गए। उनका यह पद उतना ही उच्च समझा जाता था, जितना मंत्रिमंडलके किसी सदस्यका। इस पदपर रहते हुए उनका परिचय बड़े-बड़े लोगोंसे हुआ; पर भाग्यके वे ओछे थे। थोड़े दिनों बाद उन्होंने व्यापार करना शुरू किया और परिणाम-स्वरूप पासकी जमा-पूँजी भी गँवा बैठे। कागावाका चरित्र उस ज़मानेके बड़े आदमियोंकी तरहका था। पंच मकारके वे बड़े प्रेमी थे। उन्होंने अपनी पत्नीको तो घरपर रख छोड़ा था और कोबेमें कई औरतें रख ली थीं। इन रखेलियोंमें एक स्त्री बड़ी सुन्दर थी। इससे उनके चार सन्तानें हुईं, जिनमें एकका नाम पड़ा टोयोहिको। टोयोहिको बड़ा होनहार बालक था, इसलिए पिताजीने उसे जारज सन्तान बनाये रखना पसन्द न किया और क़ानूनन गोद ले लिया। भोग-विलासपूर्ण जीवनका जो परिणाम होना था, वही हुआ। जब यह बालक चार वर्षका ही था कि पिताजीका देहान्त हो गया और माता भी उसी समय चल बसीं। कागावा अपनी बड़ी बहनके साथ अपनी सौतेली माँ तथा दादीके पास रहनेके लिए गाँवको भेज दिये गए।

ये दोनों स्त्रियाँ बिलकुल एकान्तमें नीरस जीवन व्यतीत कर रही थीं। घर क्या था, उजड़ा हुआ बग़ीचा था। पुत्रहीन माँ और विधवा पत्नीकी दशा दयनीय थी। उन दोनोंको इन भाई-बहनका आना भार-स्वरूप प्रतीत होने लगा। सौतेली माँ तो कभी कागावासे बोलती ही नहीं थी

और दादीकी गाली-गलौजके मारे दोनों बच्चोंकी जान आफ़तमें थी। कभी कागावा सोतेमें बिस्तरपर ही पेशाब कर देता था। इसके लिए बेचारे चार वर्षके बच्चेकी काफ़ी पिटाई होती थी और किसी गरम चीज़से वे झुलसाये भी जाते थे, जिससे उनकी यह आदत छूट जाय। बहन कुछ झक्की-सी थी। घरके पिछवाड़े कोनेमें बैठे-बैठे आँसू बहाना उसका नित्य-प्रतिका काम था। वह निरन्तर बीमार रहा करती थी। कागावाको बेचारी प्रेम भी क्या कर सकती थी! दादी उसे मज़दूरनी समझकर कठोर-से-कठोर काम लेती थीं और हर रोज़ उसे पीटती भी थीं। बहनको निर्दयतापूर्वक पिटते देखकर कागावाका हृदय विचलित हो उठता था, नतीजा यह होता था कि दादी उसे घरके बाहरकी अँधेरी कोठरीमें बन्द कर देती थीं! उन जेलखानोंकी याद कागावाको इतने दिनों बाद भी आ जाती है। उन दिनों बेचारा कागावा घरसे भागकर पासके वेणु-कुंजमें आश्रय लेता अथवा नदी-तटपर घूम-घूमकर अपना वक़्त काटता। हाँ, जब कभी कोई अतिथि घरपर आता तो सौतेली माँ और दादी दिखा-वटके लिए उनके सामने कागावाको बड़ा प्रेम करने लगतीं! उस समय तो वे दयाका अवतार बन जातीं! कागावाके अन्धकारमय जीवनमें तब प्रकाशकी एक किरण झलक जाती।

चार वर्ष नौ महीनेकी उम्रमें वे एक प्रारम्भिक पाठशालामें भर्ती कराये गए और वहाँ अन्य बच्चोंके साथ पढ़ने लगे। चूंकि घरपर उनके साथ अत्यन्त कठोरताका बर्ताव किया जाता था, इसलिए उनके हृदयमें अपनेको अत्यन्त क्षुद्र समझनेकी भावना इतनी छोटी उम्रमें ही पैदा हो गई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अन्य बच्चोंके साथ हिल-मिल नहीं सके। हाँ, एक किसानके लड़केसे, जो उनसे उम्रमें दो वर्ष बड़ा था, उनकी मित्रता अवश्य हो गई। इस लड़के का पिता कागावाकी ज़मीनपर ही खेती करता था और वहीं एक कच्चे मकानमें रहता भी था। यद्यपि सांसारिक पोज़ीशनके ख़यालसे दोनोंमें महान अन्तर था; पर

आत्माओंके राज्यमें इस प्रकारकी असमानताका अस्तित्व ही नहीं रहता। कनफयूशिसके ग्रन्थ पढनेके लिए वे बौद्ध मन्दिरोंमें भेजे जाते थे और उनके जीवनपर इस शिक्षाका काफ़ी प्रभाव पड़ा है।

जब कभी कोई बौद्ध त्यौहार आता तो उन्हें एकाध पैसा मिल जाता। आज भी कागावा उस प्रसन्नताका स्मरण कर लेते हैं, जो उन्हें पैसा मिलने पर होती थी। वे भागते हुए मन्दिरपर जाते और कोई खिलौना ख़रीद लेते। बच्चोंको मिठाईका शौक हुआ ही करता है, कागावा-को भी था। इसलिए वे चोरीसे दियासलाईकी डिबियामें शक्कर भरकर ले जाते और किसी खेतमें जाकर खाते! यद्यपि कागावाको स्कूलकी पढ़ाईका काम पसन्द था; पर उनकी रुचि खेतीकी ओर थी और धानकी बुआईके वक्त वे बराबर किसानोंके लड़कोंके साथ ही रहते थे। धानकी कटाईके समय भी छोटा-सा हँसिया लिये हुए वे बराबर मौजूद रहते थे। धानके पौधोंसे वे खड़ाऊँ बनाते थे और अपने पहननेके लिए कपड़ा भी बुन लेते थे। मछली पकड़ना और पक्षियोंका पालना भी उनके ही सुपुर्द था। घरके घोड़ेके लिए घास खोदनेको कागावा ही भेजे जाते थे और यह काम उन्हें पसन्द भी था। घोड़ेसे उन्हें प्रेम था और सिरपर घासका गट्ठा लादे हुए जब वे घर लौटते थे तब उनके मनमें स्वभावतः यह इच्छा उत्पन्न होती थी कि शाबाशीका एक शब्द भी उन्हें माता या दादीके मुँहसे सुननेको मिल जाता; पर वहाँ तो इसका भी टोटा था!

इन दिनों कागावाके जीवनमें एक ऐसी दुर्घटना हुई कि उसकी याद वे अभी तक नहीं भूले। पड़ोसकी एक लड़कीके कहीं ज़ोरकी चोट आ गई थी और वह उसकी वजहसे मृत्यु-शय्यापर लेटी हुई थी। गाँववालोंने झूठमूठको कागावाका नाम ले दिया! इस सोलह आने असत्य समाचारसे —अनभ्र बज्रपातसे—कागावाके हृदयको बड़ा धक्का लगा। उनके कोमल हृदयमें मानों किसीने पैनी कटारी चुभा दी। उन्हें पता लग गया कि घरवाले ही नहीं गाँववाले भी उनसे घृणा करते हैं। एक दिन तो

उन्होंने खाना छुआ भी नहीं और तीन दिन तक बराबर रोते रहे। कागावाके पास उस समय सात-आठ रुपये थे, सो उन्होंने जाकर उस लड़कीको दे दिये, यद्यपि वे जानते थे कि वे सर्वथा निरपराध हैं। लड़कीके मातापितासे उन्होंने क्षमा-याचना भी की। कागावा उस समय दस-ग्यारह वर्षके थे; पर अड़तीस-उन्तालीस वर्ष पहलेकी यह दुर्घटना उन्हें आज भी याद है। बेकसूर होनेपर जो इलज़ाम उनपर लगाया गया था, उसने उनके हृदयको घायल कर दिया और आज भी वह घाव पुरा नहीं है।

कागावाके एक बड़ा भाई भी था; पर वह ज़मीदारीके व्यसनोंमें फँसा हुआ था और थोड़े ही दिनोंमें उसने सारी ज़मीन-जायदाद फूँक डाली। कागावाने अपने भाईसे कहा—"मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इस ग्रामको छोड़कर बाहर जा सकूँ। यहाँ मेरा मन नहीं लगता।" आज्ञा मिलनेपर कागावा निकटके टोकूशिमा नामक नगरको चले आये।

अवा छोड़कर कागावा टोकोशिमाके मिडिल स्कूलमें भरती हो गये। यहाँ भी उन्हें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। उनकी उम्र अन्य लड़कोंके देखे कई वर्ष कम थी, इसलिए उन्हें मज़ाकका पात्र बनना पड़ता था। बड़े लड़कोंकी चारित्रिक कमज़ोरियोंको देखकर उनके हृदयमें घृणाका संचार हो गया। कागावाने सोचा था कि स्कूलमें नये-नये लड़कोंसे मित्रता करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा और इस प्रकार उनकी आत्मामें प्रेमकी जो भूख वर्षोंसे लगी हुई थी, उसकी तृप्ति कुछ अंशोंमें तो हो ही जायगी; पर यहाँ मामला उल्टा ही हुआ! अपने ग्रामपर उन्हें प्रकृति माताकी गोदमें रहनेका अवसर तो प्राप्त होता था, यहाँ वह भी हाथसे चला गया और छात्रालयके लड़कोंसे भी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध भी स्थापित न हो सका। यह काल कागावाके जीवनमें अत्यन्त निराशाका था।

इन दिनों कागावाका परिचय अपने स्कूलके ईसाई शिक्षक श्री काटायामासे हुआ, और कुछ दिनों बाद उनका सम्बन्ध डाक्टर मायर्स

और डाक्टर लौगनसे हो गया। दोनों पादरियोंने कागावाके जीवनमें एकदम क्रान्ति ही कर दी। इन दोनों पादरियोंके यहाँ कागावाका हृदयसे स्वागत होता था। पादरी साहब बड़े प्रेमके साथ उन्हें चाय पिलाते, रोटी खिलाते और गाना भी सुनवाते। कहाँ तो छात्रालयका शुष्क जीवन और कहाँ पादरियोंके घरका प्रेमपूर्ण व्यवहार! यहाँ कागावा बाइबिल भी पढ़ने लगे। जब यह समाचार उनके चाचाको लगा (कागावा अब उन्हींके अतिथि थे), तो उन्होंने कागावाको बहुत समझाया-बुझाया, डराया-धमकाया कि अगर तुम ईसाइयोंके चक्करमें पड़े तो पिताकी बची खुची जायदादसे भी वंचित कर दिये जाओगे। पर कागावाने उनकी एक न सुनी और चाचाने उन्हें अपने घरसे निकाल दिया!

सन् १९०५ में कागावा टोक्योके प्रेसबीटेरियन कालेजमें भर्ती होगये। उन्हें पढ़नेका खब्त था और दो वर्ष के भीतर उन्होंने कालेजकी लाइब्रेरीके प्रायः सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थ पढ़ डाले! क्लासमें उनकी उपस्थितिसे अनेक शिक्षक घबराते थे, क्योंकि कई विषयोंपर उनका ज्ञान अनेक अध्यापकोंकी अपेक्षा अधिक था। कागावाके साथी विद्यार्थी तो उन्हें देखकर आश्चर्य करते थे। कागावा जुंगी आदमी थे। जिस विषयसे प्रेम होता उसे पढ़ते और जिस विषयके प्रति रुचि न होती उसे छोड़ देते। नतीजा यह होता कि किसी-किसी विषयमें वे क्लासमें फिसड्डी रह जाते। इसके सिवा कागावामें एक झक और भी थी। जो सद्भाव उनके मनमें आते, उन्हें वे कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए भी उद्यत रहते थे। कहींपर एक बिल्लीका बच्चा मोरीमें डूब रहा था। आप उसे उठा लाये और नहलाकर उसे अपने कमरेमें रख लिया! एक मरघिल्ले कुत्तेको भी, जो न घरका था और न घाटका, आपने अपनी संरक्षकतामें ले लिया! जब साथके छात्रोंने इस पागलपनका विरोध किया तो आपने कहा—"किसी सुन्दर और हृष्ट-पुष्ट कुत्तेको तो चाहे जो प्रेम कर सकता है; पर इस अभागे लेंड़ी कुत्तेकी चिन्ता कौन करेगा?" कुत्ते और बिल्ली तक

तो ग़नीमत थी; पर अबकी बार कागावाने एक और भी अधिक आपत्तिजनक काम किया। आप रास्तेपरसे एक भिखारीको ले लाये और उसे अपने कमरेमें स्थान दे दिया और उसे अपने पाससे भोजन भी कराने लगे मानों वह उनका भाई ही हो! जो थोड़े से रुपये उन्हें मिलते थे, उनमें से भी वे दान देते थे, यहाँ तक कि अपने जूते और कपड़े भी दे डालते थे। अपनेसे भी ग़रीब विद्यार्थियोंकी सेवा करनेके लिए वे सदा उद्यत रहते थे।

टाल्सटायके ग्रन्थोंको पढ़कर कागावा अहिंसावादी बन गये। उन दिनों रूस-जापानका युद्ध हो रहा था। कालेजकी मीटिंगमें कागावाने युद्धका विरोध और शान्तिका समर्थन किया। नतीजा यह हुआ कि साथी विद्यार्थियोंने उन्हें देशद्रोहीकी उपाधि दे डाली और उनसे सब सम्बन्ध तोड़ दिया। विद्यार्थियोंको यह आशा थी कि कागावा दब जायँगे; पर वे दबनेवाले नहीं थे। आखिर उन्होंने एक षड्यन्त्र किया। रातके वक्त वे कागावाको भरमाकर कालेजके बाहर खेलनेकी जगह पर ले गये और वहाँ बीस विद्यार्थियोंने उनकी अच्छी तरह मरम्मत की। "इस विश्वासघाती, 'देशद्रोही', 'शान्तिवादी' की अच्छी तरह ख़बर लो।" कहकर जब उनके साथी उनपर घूसोंकी बौछार कर रहे थे, उस समय कागावा हाथ जोड़ हुए खड़े थे और कह रहे थे—"परमपिता! इन्हें क्षमा करो, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं?" इन पीटनेवालोंमें धर्म-विज्ञान-कक्षाके विद्यार्थी भी थे!

कालेजमें जब वे द्वितीय वर्षमें थे तब उन्हें क्षयकी बीमारी हो गई। मुँहसे खून गिरने लगा, इसलिए उन्हें कालेज छोड़कर समुद्रतटके एक ग्राममें जाकर रहना पड़ा। वहाँ रहते हुए उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास का प्रारम्भ किया। इस उपन्यासने आगे चलकर उन्हें जापानके सर्वश्रेष्ठ लेखकोंकी श्रेणीमें बिठला दिया। वह अत्यन्त निर्धनताकी दशामें लिखा गया था, यहाँ तक कि उस समय उनके पास लिखनेके लिए काग़ज

भी नहीं था। पुराने रद्दी मासिक पत्रों के पृष्ठोंपर कूचीसे यह उपन्यास लिखा गया था। अपनी दृढ़ इच्छा-शक्तिके कारण ही कागावा क्षय-जैसी भयंकर बीमारीके चक्करसे छूट सके।

सन् १९०९ का बड़ा दिन कागावाके जीवनका एक महत्वपूर्ण दिवस है। उस दिन उन्होंने अपनी गठरी उठाकर गाड़ीपर रख दी और कालेजसे सीधे शिकावाकी गन्दी बस्तीकी ओर चल पड़े। जिस कोठरीको उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया, उसका क्षेत्रफल था ३६ वर्गफीट, यानी वह दो गज़ लम्बी थी और दो गज़ चौड़ी। उस कोठरीमें कुछ दिन पहले एक खून हो चुका था। लोगोंमें यह भी अफवाह फैली हुई थी कि उसमें भूत रहते हैं और वह इसलिए खाली पड़ी हुई थी। व्यापारमें मन्दी आजानेके कारण भिखमंगोंकी संख्या और भी बढ़ गई थी। उन्होंने कागावाको घेरना शुरू किया। कैसे-कैसे आदमियोंको कागावाने आश्रय दिया, उनका ब्यौरा भी सुन लीजिए:

एक लड़केके तमाम शरीरपर खुजली हो रही थी। उसने शरण ली। कागावाने उसे अपनी कोठरीमें रख लिया। नतीजा यह हुआ कि कागावाको भी खुजली हो गई!

एक शराबी आदमी कई महीने इस कोठरीमें रहा।

एक हत्यारा था, जो जेल भी काट चुका था और जिसके दिलमें यह भय बैठ गया था कि मेरे द्वारा मारा हुआ आदमी भूत बनकर मेरा पीछा कर रहा है! यह कागावाके पास ही सोता था और डरके मारे कागावाका हाथ किचकिचाकर पकड़ लेता था!

एक आदमीने आकर कहा कि कई दिनसे मुझे पानीके सिवा कुछ भी नहीं मिला। उसे भी कागावाने आश्रय दिया।

इस प्रकार कागावाके कुटुम्बमें चार आदमी हो गये। उन्हें अपने धर्म-विज्ञान-कालेजसे कुल-जमा २२ शिलिंग यानी सोलह रुपये प्रतिमास-का वज़ीफा मिलता था, उसमें चार आदमियोंकी गुजर करना मुश्किल

हो गया। इसलिए उन्हें १५) महीनेपर लालटेन साफ करनेका काम करना पड़ा।

एक बार तो इस कोठरीमें दस आदमी आ घुसे ! कहीं बैठनेको भी जगह नहीं रही। आखिर एक दीवार तोड़ डाली गई। एक आदमी तो उनमें क्षयके रोगसे पीड़ित था और उसके कपड़े कागावा खुद अपने हाथसे धोते थे। एकका दिमाग़ ठिकाने नहीं रहा था, गोकि वह काफी पढ़ा-लिखा था, पर उसके घरवालोंने तथा दोस्तोंने भी उसे छोड़ दिया था। एक बीमार वेश्या थी, जिसे सिफलिसका रोग था।

एक भिखारी था, जिसकी आँखोंमें ट्रेकोमाकी बीमारी थी। कागावाको भी यह भयंकर बीमारी लग गई और इससे उनकी दृष्टि अत्यन्त मन्द पड़ गई है !

एक भिखारीने आकर कहा—"तुम बड़े ईसाई बनते हो ! मैं तब जानूं, जब तुम अपना कुरता मुझे दे दो !" कागावाने उसे अपना कुरता दे दिया। दूसरे दिन अपना कोट और पाजामा भी उसके हवाले कर दिया।

किसीने यह झूठी ख़बर फैला दी कि कहींसे कागावाको बहुत-सा रुपया ग़रीबोंकी सेवामें ख़र्च करनेको लिए मिला है। बस, फिर क्या था, जुआरियोंके सरदारने उनकी कोठरी पर धावा बोल दिया और ४५ रुपये माँगे। कागावा कुछ बहाना बनाकर बाहर निकले और वहाँसे भागे। उस धूर्तने पाँच गोली कोठरीके दीवारमें दागीं और एक भिखारीसे कहा—"जब कागावा लौटकर आवे तो कह देना कि मैं व्यर्थकी धमकी नहीं देता था।"

एक बार कागावा बुरी तरह फँस गये। एक गुण्डेने कहा—"तीस शिलिंग दो, नहीं तो अभी तुम्हारे प्राण लेता हूँ।" कागावाने ३० शिलिंग देकर जान बचाई।

कागावाके आसपासकी कोठरियोंमें दुराचारोंके अड्डे थे। उन्हें

वेश्यालय कहना अधिक उपयुक्त होगा। कागावाने वेश्यागमनके विरुद्ध व्याख्यान देना शुरू किया। कई वेश्याओंने पश्चात्ताप किया और अपना पेशा छोड़ मेहनत-मजूरी करनेका वचन दिया। जिन धूर्तोंको इन वेश्यालयोंमे लाभ होता था, वे बड़े नाराज़ हुए और एकने आकर कागावाको धमकाया और उनके खाने-पीनेके सारे बर्तन ही तोड़ डाले !

शिकावाकी गन्दी बस्तियोंमें जिन्दगीका कोई मूल्य ही नहीं था। हत्या कर डालना तो एक मामूली-सी बात थी। जो हत्या कागावाकी कोठरीमें उनके आनेके पूर्व हुई थी, उसका कारण थी सिर्फ़ पाँच आनेकी रक़म ! कागावाको पहले वर्षमें ही सात हत्याएँ अपने आसपास देखनी पड़ीं ! एक हत्या मुर्गीके बच्चेके लिए की गई थी। दो आदमियोंमें औरतके लिए झगड़ा हुआ। एक कहता था मेरी है, दूसरा कहता था मेरी। इसीमें एकका क़त्ल हो गया। तेरह बरसके एक बच्चेने इसी उम्रके दूसरे बच्चेको मार डाला !

इन गन्दी बस्तियोंका अधिक विवरण देनेकी आवश्यकता नहीं। इनमें प्रायः रिक्शा खींचनेवाले, सडक खोदनेवाले, मज़दूर, कुली, सस्ती मिठाई बेचनेवाले, छोटे-मोटे ज्योतिषी, हत्यारे, वेश्याएँ और उनके दलाल रहा करते थे। चोरों और जुआरियोंके अड्डे भी यहीं थे।

कागावाने जब २१ वर्षकी उम्रमें शिकावाकी गन्दी बस्तीमें प्रवेश किया, उस समय उन्होंने अपने मनमें कहा था—'मुझे किसी बातका डर नहीं है; न बीमारीका, न मारे जानेका और न चोर-डकैतोंका। आखिर मरना तो है ही, मेरी उम्र भी ज़्यादा नहीं होगी, भय किसका करूँ ?' एक अहिंसावादी वीर योद्धाकी भाँति वे इस क्षेत्रमें उतर पड़े और उनके १५ वर्ष तक युद्ध करनेका जो परिणाम हुआ, उसे पाठक पढ़ ही चुके हैं।

अपनी अनुभूतियोंको कागावाने लिखना प्रारम्भ किया। क्षयरोगसे पीड़ित अवस्थामें उन्होंने जो उपन्यास लिखा था, उसे उन्होंने कैजो नामक मासिक पत्रके प्रकाशकको दिखलाया। प्रकाशक महोदयको उसमें प्रतिभाके

बीज दीख पड़े और उन्होंने उसे २५० पौण्डमें खरीद लिया। पहले तो वह मासिक रूपमें निकला और फिर पुस्तकाकार छपा। पुस्तककी लोक-प्रियताका इसीसे अनुमान हो सकता है कि थोड़े समयमें ही उसकी ढाई लाख कापियाँ बिक गईं!

कागावाने अपनी ४५वीं वर्ष तक (यानी १९३२ तक) कितना साहित्यिक कार्य किया था, इसका अनुमान निम्न-लिखित अंकोंसे किया जा सकता है।

तबतक वे पचास ग्रन्थ लिख चुके थे और उनकी बारह लाख प्रतियाँ खप चुकी थीं। तीस पुस्तिकाएँ उन्होंने लिखी थीं और ३५ पर्चे, जिनमें पहलेकी तीन लाख और दूसरेकी ५० लाख प्रतियाँ निकल चुकी थी। दस किताबें उस समय उनके सामने थीं, कोई आधी लिखी हुई, कोई तिहाई तो कोई चौथाई। इन पुस्तकोंके विषय हैं—धर्म, दर्शनशास्त्र, कविता, अर्थशास्त्र, राजनीति, मज़दूर-आन्दोलन, जीव-विज्ञान इत्यादि। उनके कई ग्रन्थोंने तो खपतके क्षेत्रमें सबसे ऊँचा स्थान पाया है—

'Across the Death line' की ढाई लाख प्रतियाँ बिकीं,
'The Shooter at the Sun' की एक लाख ग्यारह हज़ार,
'Passing from Star to Star' की एक लाख,
'A Grain of Wheat' की एक लाख।

कागावाकी सफलताका मुख्य कारण यह है कि वे जो-कुछ लिखते हैं, हृदयसे लिखते हैं, दिल खोलकर लिखते हैं और एक उच्च उद्देश्यको लेकर लिखते हैं। अपने भाषणोंके संग्रहकी भूमिकामें उन्होंने लिखा था—

"मेरी पुस्तकोंके पढ़नेवाले बहुतेरे हैं; पर ग्रन्थ-रचना ही मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं। मैं तो एक सिपाही आदमी हूँ और सर्वसाधारणके अन्तःकरणको जाग्रत करनेके लिए आन्दोलन करना ही मेरा काम है। मेरे ग्रन्थोंमें मेरी अन्तरात्मा रोती है और उसके रोनेको जो कोई सुनता है, वही मेरा सच्चा मित्र है।

"जापानके साढ़े पाँच सौ वेश्यालयोंको दफ़न करना है, १५ करोड़ पौण्डकी शराबकी धाराको रोकना है, ९४ लाख मज़दूरोंका उद्धार करना है और २ करोड़ किसानोंको स्वाधीन बनाना है। यही मेरे जीवनकी आशा है और इसी आशामें मैं अपनी पुस्तक सर्वसाधारणकी सेवामें अर्पित कर रहा हूँ।

"मनुष्यकी आत्मा ही राजनीति है, अर्थशास्त्र है, शिक्षा है और विज्ञान है, इसलिए अन्तरात्माको सुसंस्कृत बनाना ही सबसे अधिक आवश्यक है। यदि हम अन्तरात्माको सुसंस्कृत बना लें तो राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा और विज्ञानके प्रश्न स्वयं ही हल हो जायँगे। मेरे ये भाषण अन्तरात्माकी पुकार हैं।"

यद्यपि कागावाको अबतक तीन लाख रुपयेसे अधिक अपनी पुस्तकोंसे रायल्टीके रूपमें मिल चुका है; पर उन्होंने उसका पैसा अपनी तीन संस्थाओंपर ही व्यय किया है। अपना खर्च उन्होंने नहीं बढ़ाया। इस वक्त वे सौ रुपये महीनेमें अपनी स्त्री तथा तीन बच्चोंका पालन-पोषण करते हैं। यह कहनेकी आवश्यकता नही कि इसमें सिर्फ़ कुटुम्बकी गुज़र ही हो पाती है। टोक्यो महानगरीके एक बाहरी स्थानपर उन्होंने अपने हाथसे काठका एक मकान बना लिया है। जब जापानमें महान भूकम्प आया था, उस समय निराश्रित लोगोंके लिए जो कामचलाऊ मकान बने थे, उन्हींके बचे-खुचे काठ-कबाड़को ख़रीदकर ढाई सौ रुपयेमें उन्होंने अपने हाथसे अपना मकान तैयार कर लिया है। टोक्योका ही नहीं, जापानका सर्वश्रेष्ठ नागरिक सस्ते-से-सस्ते काठके मकानमें रहता है। यद्यपि कागावाको अपने ग्रन्थोंसे कभी-कभी ३० हज़ार रुपये सालकी आमदनी हो जाती है, पर वे अपने ऊपर उसे ख़र्च नहीं करते। जीवन-निर्वाहके विषयमें उनके विचार सुन लीजिए—

"जीवन-निर्वाहका सर्वोत्तम तरीक़ा यह है कि आदमी इतनी सादगीके साथ रहे कि उसे किसी दूसरेकी सेवा न लेनी पड़े, अपनी सेवा वह ख़ुद

कर सके। यदि कोई आदमी अपने हाथसे बनाई हुई झोंपड़ीमें रहे, स्वयं ही उसमें अपना रसोईघर बनावे, अपने हाथसे उगाई हुई तरकारियाँ खावे, अपने करघेपर बुना हुआ कपड़ा पहने और सादगीके साथ अपने घरका प्रबन्ध खुद ही करे, तो उसे कितनी स्वाधीनता मिल सकती है! इस प्रकारके जीवनमें मनुष्य न तो किसीको अपना ग़ुलाम बनाता है और न किसीको अपना शासक। वह खुद ही अपना शासक, रसोइया, कलाकार और मज़दूर बन जाता है। इस प्रकारके जीवनसे दुनियाके उलझे हुए प्रश्न सुलझ सकते हैं। यदि कोई मनुष्य किसी तालाबके किनारे मित्रतायुक्त वृक्षोंकी सघन छायामें अपनी झोपड़ी बनावे और पशु-पक्षी और वृक्ष-जगतसे अपना नित्यप्रतिका सम्बन्ध रखे, तो उसके लिए असह्य शोरग़ुलवाले नगरोंके जीवनका क्या आकर्षण रह सकता है?"

गन्दी बस्तियोंमें काम करते-करते कागावाके मनमें यह ख़याल आया कि समाज-सेवाके कार्यमें अन्य लोगोंने जो-जो प्रयोग किये हैं, उनका अध्ययन करनेकी ज़रूरत है। इसी विचारसे सन् १९१४में वे अमेरिकाके लिए रवाना हुए और दो वर्ष तक प्रिंसटन-विश्वविद्यालयमें अमेरिकाकी सामाजिक सेवा करनेवाली संस्थाओंका अध्ययन करते रहे। इन दो वर्षोंमें उनके जापानके स्कूलकी तीन लड़कियाँ फुसलाकर वेश्याएँ बनादी गई और तीस लड़के गठकटे बन गये, जिसके कारण उन्हें जेलकी हवा खानी पड़ी। गम्भीर विचार करनेके बाद कागावा इस परिणामपर पहुँचे कि जबतक मज़दूरोंको स्वाधीनता नहीं मिलती तबतक गन्दी बस्तियोंका प्रश्न हल हो ही नहीं सकता।

जापानमें मज़दूरोंके लिए एक संस्था क़ायम हो चुकी थी, जिसका नाम था 'मज़दूर-हितकारिणी सभा'। कागावाने पहले इस संस्थाको विकसित कराके 'जापान-मज़दूर-संघ'की स्थापना कराई और तब अपने स्थानके मज़दूरोंकी समितिको उसकी शाखा बना दिया। सन् १९२१में कोबेके ३० हज़ार जहाज़ी मज़दूरोंने हड़ताल कर दी। कागावाने

उनका नेतृत्व ग्रहण किया। पुलिसने यह हुक्म जारी कर दिया था कि मज़दूर लोग सभा न करें। कागावाने पुलिसकी आज्ञाका उल्लंघन करके मज़दूर-यूनियनकी स्थापना की। जापानकी यह पहली ही मज़दूर-यूनियन थी। कागावाकी इस कार्रवाहीसे पुलिसको बड़ा क्रोध आया और ख़ुफ़िया-विभागके आदमी निरन्तर उनका पीछा करने लगे। वे पकड़े गये। पुलिसके एक आदमीने उनका कपड़ा फाड़ डाला और उनके दो-चार डंडे भी जमा दिये! उनको हथकड़ियाँ पहनाई गई और बिना टोपीके नंगे पाँव वे थानेपर ले जाये गए। जज साहब रहमदिल आदमी थे उन्होंने कागावाको सिर्फ़ तेरह दिनकी सज़ा दी। इन तेरह दिनोंमें उन्होंने अपने एक नवीन उपन्यासका पूरा-पूरा प्लाट अपने मस्तिष्क-पटलपर लिख डाला!

तेरह दिन बाद जब कागावाका जेलसे छुटकारा हुआ तो उन्होंने उसका उत्सव बड़े विचित्र ढंगसे मनाया। अपनी बस्तीके १०० ग़रीब बच्चोंको वे समुद्र-तटपर दिन-भरके लिए हवा खिलाने ले गये। वहाँ बड़ी दिल्लगी रही। कुछको अपनी माँकी याद आई और रोने लगे! कितने ही कूदते-फाँदते फिरे और पेट भरके खाना तो सभीने खाया।

गन्दी बस्तियोंके प्रश्नोंको हल करते समय कागावाका ध्यान किसानोंके सवालोंकी ओर गया। कागावाका मस्तिष्क वैज्ञानिक ढंगपर काम करता रहा है और वे उन बस्तियोंको अपनी प्रयोगशाला समझते रहे हैं। कागावा-को तुरन्त ही पता लग गया कि गन्दी बस्तियोंके अधिकांश निवासी ग्रामोंसे आते हैं। खेतीसे गुज़र न होनेके कारण बेचारे बड़े-बड़े शहरोंमें आते है और यहां धक्के खा-खाकर आख़िर उन बस्तियोंमें जा पड़ते हैं। कागावा-को वेश्यागमनका स्रोत भी ग्रामोंमें ही मिला। वेश्यालयोंके लिए मालिक ख़ास तौरसे किसान लड़कियोंको ही बहका-बहकाकर शहरोंमें लाते हैं, और फ़ैक्टरियोंके मालिक भी इन्हींको अपना शिकार बनाते हैं। जापानमें

जो ८ लाख ५० हज़ार क्षयके रोगी हैं, उनमेंसे अधिकांश ग्रामोंके ही निवासी हैं। सन् १९२१में कागावाके घरपर किसान-सभाकी स्थापना हुई और उसकी शाखाएँ जापानके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें खोली गईं। ज़मींदारोंके साथ किसानोंके जो झगड़े होते थे, उनमें इस सभाके द्वारा किसानोंकी सहायता की जाती थी। उन्हीं दिनों 'भूमि और स्वाधीनता' नामक एक मासिकपत्र भी निकाला गया। सन् १९२१के अन्तमें 'अखिल जापानी किसान-संघ'का अधिवेशन हुआ। इससे जापान-सरकार तथा ज़मींदारोंके कान खड़े हो गये। कागावाने किसानोंके हितके लिए देश-भरमें घूमना शुरू किया। कहीं-कहीं तो उन्हें बोलने ही नहीं दिया गया और अनेक स्थलोंपर उनके भाषणोंकी रिपोर्टपर पुलिसने अपनी क़ैंची चलाई। एक जगहपर तो पुलिसने उन्हें पकड़कर हिरासतमें रख दिया। कागावाने किसानोंकी जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है, उसका विस्तृत वर्णन करनेके लिए यहाँ स्थान नहीं।

कागावाके मतानुसार बीसवीं शताब्दीकी बीमारियाँ तीन हैं: (१) बड़े-बड़े नगरोंमें बहुसंख्यक आदिमयोंका जमघट। (२) मशीनोंका बाहुल्य और मनुष्यपर मशीनोंका प्रभुत्व। (३) पूंजीका थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें केन्द्रित रहना। कागावा लिखते है:

"पहली बीमारी—नगरोंमें जनसंख्याकी बढ़तीके साथ-ही-साथ मनुष्यके लिए शारीरिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक ख़तरे भी बढ़ जाते हैं। उन स्थानोंमें दृढ़ व्यक्तित्व और बुलन्द आवाजवाले आदमी पैदा ही नहीं हो सकते, जहाँ मनुष्योंको मित्रतायुक्त वृक्षोंके संसर्गसे वंचित रखा जाता है, जहाँ वे नई ताज़ी घासकी सुगन्धिसे अपने दिमाग़को तरोताज़ा नहीं कर पाते, जहाँ वे कीट-पतंगोंकी मधुर ध्वनिको सुन नहीं पाते और जहाँ शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन उन्हें अपना संगीत नहीं सुना सकती। जहाँ मनुष्य शान्तिपूर्ण जलाशयोंके निकट रहकर एकान्तमें उनके स्वास्थ्यप्रद सम्पर्कमें नहीं आ सकता, जहाँ वह घाटियों, पहाड़ियों और पर्वततटीपर

फैलनेवाली धूपमें स्नान नहीं कर सकता और जहाँ वह प्रकृतिकी रहस्य-वादी छटाओंके साथ हार्दिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता, वहाँ दृढ़ व्यक्तित्वका विकसित होना सम्भव नहीं।

"नगरोंकी आबादी अधिक-से-अधिक चालीस हज़ार होनी चाहिए और दो लाखसे ऊपरकी आबादीके नगर तो मानव-समाजके लिए अत्यन्त भयंकर हैं।"

दूसरी बीमारी—मनुष्यपर मशीनोंका प्रभुत्व है। इससे आदमीकी क्रियात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है और वह ख़ुद मशीन बन जाता है। इससे उसमें स्वयं सोचकर किसी कार्यको प्रारम्भ करनेकी शक्ति नहीं रहती, एक-दूसरेसे आगे बढ़नेका उत्साह नष्ट हो जाता है, उन्नतिकी इच्छाका विनाश हो जाता है और अन्ततोगत्वा मशीन बनकर आदमी महकमा बेकारीमें जा पड़ता है।

तीसरी बीमारी है—थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें पूँजीका इकट्ठा होना। इससे धनका उपयुक्त विभाजन नहीं होता, ग़रीबों और निर्बलोंका शोषण शुरू हो जाता है और निर्धनता बढ़ती जाती है।

सैकड़ों मीटिंगोंमें कागावा इस बातको कह चुके हैं, "सबसे अधिक आवश्यक कार्य है किसानके जीवनका पुनर्निर्माण।"

कागावाका जीवन भारतीय युवकोंके लिए आदर्श है। जिन लोगोंको अपनी अस्वस्थतासे कुछ निराशा उत्पन्न होती हो, वे इस बातपर विचार कर सकते हैं कि कागावा आधे अन्धे हैं, उनको गुर्देकी बीमारी है, फेंफड़े उनके कमज़ोर हैं और दिल वक़्त-बेवक़्त फ़ेल करनेकी धमकी दिया करता है! पर कागावा क्षत्रिय हैं। वे कहते हैं—"कई बार मैं मरते-मरते बचा। अब जो ज़िन्दगी मुझे मिली है, वह तो मुनाफ़ेमें है। खाटपर पड़कर मैं नहीं मरना चाहता। दौड़के आख़िरी मील तक मैं चलता ही रहूँगा, बीचमें नहीं बैठनेका। रेलपर सफ़र करते हुए या समुद्र-यात्रामें

परलोकसे मुझे बुलावा आवेगा, यह मैं नहीं जानता। मेरा काम निरन्तर चलना है। बाक़ी बात ईश्वरके हाथमें है।"

कागावासे बहुतसे लोगोंने कहा कि वे मज़दूर दलकी ओर से पार्लमेण्टकी मेम्बरीके लिए खड़े हो जायँ; पर उन्होंने इसे सदा अस्वीकार ही किया है। मज़दूर दलकी एकताके लिए वे तन-मन-धनसे प्रयत्न करते हैं। जो कुछ पैसा उनके पास बचता है, वे उसे इस दलको दे देते हैं; लेकिन जब मेम्बरीके लिए कहा जाता है तो वे यही उत्तर देते हैं—"शक्तिशाली पुरुषोंकी पंक्तिमें मैं नहीं बैठना चाहता, क्योंकि उससे मेरे और ग़रीब आदमियोंके बीचमें, जिनकी मैं सेवा करना चाहता हूँ. एक दीवार खड़ी हो जायगी।"

जब सन् १९३०-३१में टोक्योके मेयरने उन्हें दो हज़ार रुपये मासिक वेतन (और मोटरकार अलग) पर समाज-सेवा करनेका अनुरोध किया तो उन्होंने कहा, "मैं बिना वेतनके ही काम करूँगा। नगर पर मैं अपने वेतनका बोझ नहीं डालना चाहता।" और उन्होंने अवैतनिक ही कार्य किया। उस समयकी उनकी बनाई हुई योजनाएँ देश-भरके लिए आदर्श सिद्ध हुईं। कागावाके जीवनका सबसे आकर्षक गुण उनका भोलापन है। घरसे ओवरकोट पहने हुए निकले हैं, रास्तेमें कोई भिखारी मिल गया। उसने सर्दीसे बचनेके लिए कपड़ा माँगा, आपने ओवरकोट दे दिया! इस प्रकार न-जाने कितने ओवरकोट वे दान कर चुके हैं। वे कहते हैं—"छोटे-छोटे बच्चे नक्षत्रोंसे बातचीत करते हैं, पुष्पोंसे मित्रता करते हैं, तालाबोंकी अन्तरात्मासे सम्भाषण करते हैं, वृक्षोंको अपना दोस्त बनाते हैं और टिड्डियाँ तथा तितलियाँ उनपर ख़ास तौर पर कृपाभाव रखती हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि मैं एक बार फिर वैसा ही बालक बन जाऊँ!" और दरअसल कागावा अब भी बालक ही बने हुए हैं—४९ वर्षके बालक!

निस्सन्देह कागावा जापानकी ही नहीं, संसारकी एक विभूति हैं। अधिक क्या कहें—

विद्या-विलास-मनसो धृतशीलशिक्षा :
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिताः ये
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ।।

अगस्त १९३७]

: १३ :

सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉट

पत्रकार-जगत्में मुख्यतया दो प्रकारके पत्रकार पाये जाते हैं : एक तो आदर्शवादी और दूसरे व्यापारिक मनोवृत्तिवाले। पहलेके लिए जहाँ जनताकी सेवा करना, भ्रमपूर्ण मार्गपर जानेसे उसे बचाना तथा उसे ठीक-ठीक मार्ग बतलाना मुख्य कर्तव्य है, वहाँ दूसरेका मुख्य लक्ष्य इस व्यापारमें आर्थिक सफलता प्राप्त करना ही है। जबकि पहला राजनैतिक अथवा सामाजिक तूफ़ानोंमें चट्टानोंकी तरह स्थिर रहकर भूली-भटकी जनताके लिए प्रकाश-स्तम्भका काम देता है, वहाँ दूसरा 'जैसी बहै बयार पीठ तब तैसी दीजै'की नीतिका अनुसरण करता है। दुर्भाग्यसे संसारमें दूसरे प्रकारके पत्रकारोंकी संख्या अधिक है और दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है। श्रद्धेय गणेशजीने 'पत्रकार-कला' नामक पुस्तक-की भूमिकामें लिखा था :

"क्या यह ठीक होगा कि इस समय संसारके अन्य बड़े देशोंमें समाचारपत्रोंके चलनेकी जो लकीर है उसका हम अनुकरण करें या यह कि हम अपने आदर्शके सम्बन्धमें अधिक सजगता और सतर्कतासे काम लें ? मैं यह धृष्टता तो नहीं कर सकता कि यह कहूँ कि संसारके अन्य सब बड़े पत्र ग़लत रास्तेपर जा रहे हैं और उनका अनुकरण नहीं होना चाहिए; किन्तु मेरी धारणा यह अवश्य है कि संसारके अधिकांश समाचारपत्र पैसे कमाने और झूठको सच और सचको झूठ सिद्ध करनेके काममें उतने ही लगे हुए है, जितने कि संसारके बहुतसे चरित्र-शून्य व्यक्ति। अधिकांश बड़े समाचारपत्र धनी-मानी लोगों द्वारा

संचालित होते हैं। इसी प्रकारके संचालन या किसी दल-विशेषकी प्रेरणा ही से उनका निकलना सम्भव है। अपने संचालकों या अपने दलके विरुद्ध सत्य बात कहना तो बहुत दूरकी वस्तु है, उनके पक्ष समर्थनके लिए वे हर तरहके हथकण्डोंसे काम लेना अपना नित्यका आवश्यक काम समझते हैं। इस काममें तो वे इस बातका विचार रखना आवश्यक नहीं समझते कि सत्य क्या है। सत्य उनके लिए ग्रहण करनेकी वस्तु नहीं है, वे तो अपने मतलबकी बात चाहते हैं। संसार भरमें यही हो रहा है। इने-गिने पत्रोंको छोड़कर, सभी पत्र ऐसा कर रहे हैं। जिन लोगोंने पत्रकार-कलाको अपना काम बना रखा है, उनमें बहुत कम ऐसे लोग हैं, जो अपने चित्तको इस बातपर विचार करनेका कष्ट उठानेका अवसर देते हों कि हमें सचाईकी भी लाज रखनी चाहिए, केवल अपनी मक्खन-रोटीके लिए दिन-भरमें कई रंग बदलना ठीक नहीं है। इस देशमें भी दुर्भाग्यसे समाचारपत्रों और पत्रकारोंके लिए यही मार्ग बनता जाता है। हिन्दी पत्रों और पत्रकारोंके सामने भी यही लकीर खिचती जा रही है। यहाँ भी अब बहुतसे समाचारपत्र सर्वसाधारणके कल्याणके लिए नहीं रहे, सर्वसाधारण उनके प्रयोगकी वस्तु बनते जा रहे हैं।"

ऐसी परिस्थितिमें संसारके एक आदर्शवादी पत्रकार सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉटका जीवन-चरित हमारे लिए शिक्षाप्रद सिद्ध होगा।

सी० पी० स्काट (चार्ल्स प्रेस्टविच स्काट) का जन्म अक्टूबर सन १८४६ में हुआ था। उनके पिताका नाम था रसेल स्काट और माताका इसाबेला। स्काट नौ भाई-बहन थे, जिनमें सात स्काटसे बड़े थे और एक छोटा। इन भाई-बहनोंके साथ स्काटकी बाल्यावस्था बड़े आनन्दसे बीती। लड़कपनमें स्काट काफ़ी अभिमानी थे। उनसे जो बच्चा छोटा था, उसकी मृत्यु हो गई। इसलिए वे ही सबसे छोटे रह गये थे। शायद भाई-बहनों और माता-पिताके लाड़-प्यारके कारण उनमें अभिमानकी

यह मात्रा आ गई थी। बड़े होनेपर स्कॉटने कहा था—"हाँ, लड़कपनमें मैं बड़ा सुन्दर छोटा बच्चा था। मैं कहता फिरता था, 'देखो तो सभी प्यारे चार्लीको (मुझे) प्यार करते हैं', क्या ही घमंडी बालक मैं रहा होऊँगा!"

बाल्यावस्थामें स्काटको फूलोंसे बड़ा प्रेम था और उनका यह प्रेम ज़िन्दगी-भर क़ायम रहा। वृद्ध होनेपर वे कहा करते थे—"मेरे जीवनके सबसे अधिक सुखी वर्षोंमें सन् १८५७ की गणना करता हूँ, जबकि मैं ग्यारह वर्षका था। उस वर्ष मुझे अपने घरवालोंके साथ एलजियर्स जाना पड़ा था। उस समय मैंने अपने भाई लारेन्सके साथ जंगलोंमें घूम-घूमकर दो हज़ार तरहके जंगली फूल इकट्ठे किये थे। यह संग्रह अब भी मौजूद है।"

स्काटकी शिक्षाका प्रारम्भ ब्राइटनमें हुआ और उसके बाद वे क्लैफम ग्रामर स्कूल (Clapham Grammar School) और आइल ऑव वइट (Isle of Wight) में पढ़नेके लिए भेजे गये। जब वे पिछले स्थानमें पढ़ते थे, तभीसे वे अपने पिताजीके साथ सार्वजनिक प्रश्नोंपर पत्र-व्यवहार किया करते थे। उनके पिताजीमें एक बड़ा गुण था, वह यह कि वे यह हर्गिज नहीं चाहते थे कि हमारा लड़का किसीका अन्धानुकरण करे। विरोधी विचार रखनेवालोंके लिए उनके हृदयमें काफ़ी सहिष्णुता थी। स्कॉटके लिए उनका यही आदेश था—"सब प्रश्नोंपर स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी बुद्धिसे विचार करो।"

स्कॉटकी सत्रहवीं वर्षगाँठके अवसरपर उन्होंने एक चिट्ठी स्कॉटको भेजी थी, जिसका निम्न-लिखित अंश काफ़ी महत्त्वपूर्ण है:

"One thing more I will just say, for unfortunately time presses—that is, if in the formation of your opinions, you should be led to the adoption of views materially different from mine, it will be to me a matter of but

slight regret, provided only I can feel a perfect conviction that your views, whatever they may be, are fairly arrived at. That no fear of the world's opinion, or even of the world's scorn, no deference to a majority, no shadow of influenc from considerations of what may be most conducive to your own interest, your own advancement, or even to your own opportunities of being useful, has consciously or unconsciouly, determined them."

अर्थात्--"हाँ, एक बात मुझे और कहनी है (दुर्भाग्यवश वक़्तकी मुझे तंगी है), वह यह कि यदि अपनी राय क़ायम करते समय तुम ऐसी सम्मति निर्धारण करो, जो मेरी सम्मतियोंसे काफी भिन्न हो तो इससे मुझे बहुत कम रंज होगा, बशर्ते कि मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास हो जाय कि तुमने अपनी सम्मतियोंके निर्माण करनेमें न्याय और ईमानदारीसे काम लिया है। मैं इस बातकी दिलजमई चाहता हूँ कि संसारकी सम्मतिके डरसे अथवा लोकनिन्दाके भयसे या बहुमतके रौबमें आकर तुमने सम्मति नहीं बनाई। यही नहीं, बल्कि मैं तो यह भी कहूँगा कि मैं इस बातका विश्वास चाहता हूँ कि तुम स्वार्थकी प्रेरणासे, अथवा अपनी उन्नतिको ध्यानमें रखकर, या अपनेको उपयोगी बनानेके अवसरोंकी प्राप्तिके ख़यालसे, जान-बूझकर अथवा बिना जाने, अपनी सम्मतियोंका निर्माण न करोगे।"

इससे प्रकट होता है कि रसेल स्कॉट 'प्राप्तेषु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्' की नीतिका अनुसरण करनेवाले थे।

सन् १८६५ में स्कॉट आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीमें पढ़नेके लिए गये। वहाँ वे एक वर्ष ही पढने पाये थे कि उनकी बुआके लड़के मि० जॉन एडवर्ड टेलरने, जो 'मैनचेस्टर गार्जियन' के संचालक थे, उनसे अपने पत्रके सम्पादकीय विभागमें काम करनेके लिए पत्र-व्यवहार करना शुरू कर दिया।

टेलरने अपने ममेरे भाईके कुछ निबन्ध पढ़नेके लिए मँगाये, जो उन्हें खूब पसन्द आये और उन्होंने स्कॉटको लिख भेजा कि तुम हमारे पत्रमें काम करनेके लिए चले जाओ। सन् १८७१ में, जब वे २५ वर्षके ही थे, तब उन्होंने 'मैनचेस्टर गार्जियन' में काम करना शुरू किया था।

सबसे पहला काम जो मैनचेस्टरमें आनेपर उन्होंने किया, वह था अपने लिए एक अच्छा मकान तलाश करना। चार पौण्ड प्रतिमास किराये-पर एक सुन्दर मकान मिल गया, जो आफिससे दो मीलके फ़ासलेपर था। फिर उन्होंने इस बातका निश्चय किया कि मैनचेस्टरकी आब-हवाको अपने उपयुक्त बनाऊँगा। इसके लिए उन्होंने अपना जीवन बिल्कुल नियमित कर लिया और नियमानुकूल व्यायाम करना भी शुरू कर दिया। टेनिस वे खूब खेला करते थे। आफिसको वे बराबर पैदल जाते थे और वहाँसे पैदल ही लौटते थे। उन दिनों उनका कार्यक्रम यह था:

७॥ बजे उठना, कलेवा करना और 'मैनचेस्टर गार्जियन' शुरूसे आखिरतक पढ़ना, फिर पैदल चलकर दस बजे आफिस पहुँचना और आफिसमें दिन-भर काम करके ६ बजे टहलते हुए घर लौटना। उसी समय भोजन करना और तत्पश्चात् कुछ लिखना पढ़ना और करीब दस बजे रातको सो जाना। इसके सिवाय सप्ताहमें दो-एक बार तीसरे पहर इधर-उधर टहलनेका प्रोग्राम भी उन्होंने रखा था।

उन दिनों मैनचेस्टरमें ग़रीबोंके मकान बड़ी दुर्दशामें थे। स्कॉटका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। ३ दिसम्बर सन् १८७१ की चिट्ठीमें उन्होंने अपने पिताको लिखा था—"हम लोग ग़रीबोंके मकानोंके सुधारके लिए पहले आपसमें दस हज़ार पौंड इकट्ठा कर लेना चाहते हैं, इसके बाद जनतासे अपील करेंगे। मेरी अपनी इच्छा है कि इस आन्दोलनमें यथाशक्ति अधिक-से-अधिक चन्दा दूँ। मैं चाहता तो यह हूँ कि अपनी पैतृक सम्पत्तिमें से ५०० पौण्ड इस कार्यके लिए दे दूँ; पर शायद यह रक़म आपको ज़्यादा प्रतीत होगी। मैं इस काममें दिलोजानसे लग जाना चाहता

हूँ, और मुझे उम्मीद है कि इस तरहसे मैं जनताका अधिक-से-अधिक शारीरिक तथा नैतिक हित कर सकूंगा ।"

जनवरी सन् १८७२ में स्कॉट 'मैनचेस्टर गार्जियन'के प्रधान सम्पादक नियुक्त हो गये। उस समय उनकी उम्र लगभग २६ वर्ष की थी। उस समय जो लोग उनके अधीन काम करते थे, वे उनसे उम्रमें काफ़ी बड़े थे। कोई-कोई तो स्कॉटके जन्मके पहलेसे भी इस पत्रमें काम कर रहे थे और ऐसे लोगोंको काम करनेका आदेश देना सरल कार्य नहीं था; पर एक तो स्कॉटका चेहरा बड़ा गम्भीर था, दूसरे उन्होंने दाढ़ी रख ली थी और इन दोनोंकी सहायतासे वे अपने साथियोंपर यथोचित शासन कर सकते थे ! अपने आफिसमें वे कठोर शासक समझे जाते थे; पर बाहरवालोंकी समझमें यह बात मुश्किलसे आ सकती थी कि दर-असल स्कॉट कठोर शासक है ।* पर इसके साथ स्कॉटमें यह दुर्लभ गुण भी था कि वे स्वयं भी अथक परिश्रम करनेवाले थे। 'मैनचेस्टर गार्जियन' का हित ही उनके हृदयमें सर्वोच्च स्थान रखता था और इसी बातकी आशा वे अपने सहयोगियोंसे भी करते थे। निरन्तर ५८ वर्ष तक वे अपने पत्रके लिए घोर परिश्रम करते रहे। ८० वर्षकी उम्रमें स्कॉट कितना परिश्रम करते थे, इसका वृत्तान्त सुन लीजिए। शामके समय आकर दैनिकके लिए अग्रलेख लिखा। रातकी गाड़ीसे मैनचेस्टरसे लन्दनके लिए रवाना हुए। प्रातःकाल प्रधान-मंत्री लायड जार्जके साथ कलेवा किया। फिर कई घंटे मिस्टर वेनीज़ेलसके साथ बालकनके प्रश्नोंपर बातचीत की। तत्पश्चात् लार्ड सेसिलके साथ भोजन किया। तीसरे पहरकी गाड़ीसे मैनचेस्टरको वापस आये और फिर आकर अपने पत्रके लिए अग्रलेख लिखा !

***स्वर्गीय श्रद्धेय गणेशजीके विषयमें भी उनके सहयोगी यही बात कहते हैं। स्वयं गणेशजी घोर परिश्रमी थे।—लेखक**

स्कॉटको विलायतके प्रधान कार्यकर्ताओंसे निरन्तर मिलना पड़ता था और बीसियों आदमियोंसे, जिनकी अधिकारपूर्ण सम्मतियोंका महत्त्व हो सकता था, पत्र-व्यवहार भी करना पड़ता था, क्योंकि बिना ऐसा किये न तो वे स्वयं समयकी गतिके साथ चल सकते थे और न उनका दैनिक पत्र ही अप-टू-डेट रह सकता था। इसके सिवा अपने सहकारी सम्पादकोंको सैकड़ों ही विषयोंपर उन्हें आदेश या परामर्श देना पड़ता था। कभी बाइसिकलोंके विषयमें नोट लिखनेका आदेश दे रहे हैं तो कभी घरपर डबल रोटी बनानेके विषयमें; कभी यूगोस्लेविकाके मामलेपर तो कभी स्त्रियों के वेतनपर ! और इन सब विषयोंके लाखों ही नोट उन्हें अपने जीवनमें लिखने पड़े होंगे। जो आदमी स्वयं कठिन-से-कठिन परिश्रम नहीं कर सकता, वह न तो ठीक ढंगसे दूसरोंसे काम ले सकता है और न उनपर शासन ही कर सकता है।

सन् १८७४ में स्कॉटने अध्यापक जॉन कुककी सबसे छोटी लड़की मिस रचेल कुकके साथ विवाह कर लिया। मिस कुक बड़ी सुन्दरी थी और बड़ी योग्य भी। केम्ब्रिज-यूनिवर्सिटीसे उन्होंने एम० ए० की परीक्षा पास की थी और अरस्तूके विषयमें उन्होंने जो निबन्ध लिखा था, उसकी उनके परीक्षकोंने बड़ी प्रशंसा की थी और उसे सर्वोत्तम बतलाया था।

स्कॉट भी मिस रिचेलकी योग्यतासे बड़े प्रभावित हुए और उनसे-मिलनेके थोड़े दिन बाद ही मिस रचेल 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए पुस्तकों की आलोचना लिखने लगीं। दोनोंकी मित्रता प्रेमके रूपमें परिवर्तित हो गई और २० मई, १८७४ को लन्दनमें उनका विवाह हो गया। मिसेज़ स्कॉट अपने पतिके सम्पादन-कार्यमें बहुत सहायक सिद्ध हुई। कभी-कभी तो यह होता था कि शामके ६ बजे दोनों व्यक्ति अंडे, दूध, रोटी और मक्खन लेकर आफिसको साथ ही जाते और वहाँसे रातके दो बजे लौटते थे। रेलकी लम्बी यात्राओंमें मिस्टर और मिसेज़ स्कॉट दोनों ही लेख लिखते थे और पासके तारघरसे वे लेख तार द्वारा 'मैनचेस्टर

गार्जियन' को भेजे जाते थे। सन् १८७४ से १९०५ तक मिसेज़ स्कॉट अपने पतिको पत्र-सम्पादन-कार्यमें सहायता देती रहीं। नवम्बर सन् १९०५ में जब उनका स्वर्गवास हुआ तो मि० स्कॉटके हृदयको बड़ा आघात पहुँचा; पर बड़े धैर्यपूर्वक उसे उन्होंने सहा।

अपने नगरके प्रति उनका जो कर्तव्य था, स्कॉट उसे नही भूले। मैनचेस्टरमें वे साठ वर्ष रहे और इन साठ वर्षोंमें उन्होंने अपने नगरके लिए महान् कार्य किया। ग़रीबोंके घरोंके सुधारनेके कार्यमें उन्होंने जो भाग लिया था, उसका ज़िक्र हम पहले कर चुके हैं। स्त्रियोंकी उच्च शिक्षाके आन्दोलनमें स्कॉटने काफ़ी सहयोग दिया। सन् १८९० में विथिंगटन गर्ल्स स्कूलकी स्थापना हुई और वे उसके संस्थापकोंमें अग्रगण्य थे। चालीस वर्ष तक वे उसकी कौसिलके चेयरमेन रहे। जब वे अन्य सब कार्योंसे त्यागपत्र दे चुके थे, उस समय भी उन्होंने उस संस्थाकी देखरेख नही छोड़ी। स्त्रियोंकी उच्च शिक्षाका यह प्रश्न उनके जीवनका एक मुख्य प्रश्न ही बन गया था और उनका अन्तिम मुख्य लेख (जो १ नवम्बर सन् १९३० के 'मैनचेस्टर गार्जियन' में छपा था) गर्टनके महिला विद्यालयके लिए आर्थिक सहायताके विषयमें था।

मैनचेस्टर-विश्वविद्यालयके अनेक अध्यापकोंसे स्कॉटने मित्रता करली थी और यह मित्रता उनके लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई। पहले तो मैनचेस्टर-विश्वविद्यालय विशेष प्रख्यात नही था; पर पीछे वह आक्सफोर्ड, केम्ब्रिज तथा लन्दन विश्व-विद्यालयोंका मुक़ाबला करने लगा था। सम्पादकोंके लिए और ख़ासतौरसे दैनिक पत्रोंके सम्पादकोंके लिए, जिन्हें दिन-रात परिश्रम करना पड़ता है, सजीव विद्वानोंका सत्संग कितना आवश्यक है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं।

मैनचेस्टरमें जब टाउन हॉल बना, तो उस समय उसके लिए आर्ट-

गैलरी तैयार करानेमें मि० स्कॉटका बड़ा हाथ था। ब्लेकके चित्रों तथा कलाकार ब्राउनके संग्रहको प्राप्त करनेका श्रेय भी मुख्यतया उन्हींको था। वे ४३ वर्ष तक ओवन्स कालेज तथा यूनिवर्सिटी कोर्टके सदस्य रहे। सन् १९२१ में मैनचेस्टर यूनिवर्सिटीने उन्हें एल-एल० डी० की उपाधि दी। स्कॉट उपाधियाँ पसन्द नहीं करते थे और इन व्याधियोंसे बचनेका ही प्रयत्न करते थे। सुप्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ सर माइकेल सैडलरने अपने एक पत्रमें उन्हें लिखा था—"I suppose no living man has refused more honours and titles than you have."

अर्थात्—"जितनी उपाधियाँ और सम्मानसूचक पद आपने अस्वीकृत किये हैं, उतने शायद ही किसी अन्य व्यक्तिने किए होंगे।"

इन्हीं सैडलर साहबने स्टॉकको लिखा था—"You have made the 'Manchester Guardian' a university."—"आपने अपने पत्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' को एक विश्वविद्यालय-सा बना दिया है।" भला जिसका पत्र ही विश्वविद्यालयका काम कर रहा हो उसके लिए किसी विश्वविद्यालयकी डिग्रीका क्या महत्व हो सकता है? दर असल मैनचेस्टर-यूनिवर्सिटीने स्कॉटको एल-एल० डी० की उपाधि देकर स्वयं अपनेको गौरवान्वित किया था।*

स्कॉट सहकारी सम्पादकोंके चुनावमें बड़ी सावधानीसे काम लेते थे। आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटीके सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियोंको, जिनमें लिखनेकी प्रतिभा होती थी, वे अपने यहाँ स्टाफमें रखते थे। स्कॉट कहा करते थे—"मेरे लिए समाचारपत्र जनताको केवल क्षणिक खबरें पहुँचाने अथवा

***इस सिलसिलेमें हमें यह बात दुःखके साथ लिखनी पड़ती है कि अपनेको गौरवान्वित करनेका एक उत्कृष्ट अवसर हिन्दू-विश्वविद्यालयने खो दिया। पूज्य द्विवेदीजीको डी० लिट्०की उपाधि देकर यूनिवर्सिटी अपना सम्मान ही करती।—लेखक**

राजनैतिक विषयोंपर भली-बुरी टिप्पणियाँ लिखनेका साधनमात्र नहीं है। यदि ऐसा होता तो पत्रकारकला मेरे लिए कोई रुचिकर चीज़ न रहती और मैं उसे कभीका छोड़ बैठता।"

स्कॉटकी आकांक्षा थी कि उनके पत्रके पाठकोंको देशके योग्य-से-योग्य लेखकों और विचारकोंके विचार पढ़नेको मिलें और इसीके लिए वे निरन्तर प्रयत्न किया करते थे। विलायतमें शायद ही कोई ऐसा सुप्रसिद्ध लेखक रहा हो, जिससे स्कॉटने अपने पत्रके लिए लेख न लिखाए हों। और कितने ही तो ऐसे थे, जो ख़ास तौरसे 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए ही लिखते थे। स्वाधीनचेता लेखकोंके लिए 'मैनचेस्टर गार्जियन' में लिखना स्वाभाविक और आसान भी था क्योंकि स्कॉट स्वतन्त्रताके प्रेमी थे और अपने लेखकोंको विचारोंकी पूर्ण स्वतन्त्रता देते थे। 'मैनचेस्टर गार्जियन' की इतनी शान और धाक थी कि उसमें अपना नाम छपा हुआ देखकर लेखकोंको एक प्रकारका गौरव प्रतीत होता था। एक सुप्रसिद्ध लेखक जब आयरलैण्डके कुछ ज़िलोंकी यात्रापर जा रहे थे, उस समय उन्हें अपना विशेष संवाददाता बनाते हुए स्कॉटने लिखा था—"कृपया इस कार्यको आरामके साथ और खूब अच्छे ढंगपर कीजिए। कोई मुज़ायका नहीं, अगर इस काममें तीन-चार हफ्ते ख़र्च हो जायँ। आयरलैण्ड-के निवासियोंको, सहानुभूतिपूर्वक और उनके हृदयतक पहुँचकर समझने-की कोशिश कीजिए। उनके जीवनका अध्ययन् करके लिखिये और इस खूबीसे लिखिये कि आयरलैण्ड-निवासियोंके जीवन-क्रम सम्बन्धी लेखोंसे राजनैतिक शिक्षा खुद-बखुद ही निकले। हाँ, एक बात निश्चित है, वह यह कि आप जो कुछ भी लिखें, पूर्ण स्वाधीनतापूर्वक और अपने ढंग पर।"

यही कारण था कि 'रिव्यू आव रिव्यूज़' के सम्पादक मि० डब्ल्यू० टी० स्टेड तथा मि० ब्रेल्सफोर्ड जैसे स्वाधीन प्रकृतिके आदमी 'मैनचेस्टर गार्जियन' के लिए लिखते थे। स्टेड साहब तो इस पत्रके मुख्य संवाददाता बनकर हेग-कान्फरेन्समें गये थे।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, अपने सहकारियोंके चुनावमें स्कॉट बड़ी सावधानीसे काम लेते थे। चाहे कोई खाली जगह महीनों तक न भरे, चाहे शेष आदमी काम करते-करते पिसें; पर जबतक योग्य आदमी न मिलता, वे स्थान खाली पड़ा रहने देते थे। वे कहते—"नियुक्ति करते समय हमें होशियारीसे काम लेना चाहिए। नियुक्त होनेपर किसी आदमी को निकालना मुश्किल हो जाता है।"

गार्जियनमें सहकारी सम्पादकका एक स्थान ख़ाली हुआ। अर्ज़ियाँ मँगाई गईं। स्कॉट उन्हें पढ़नेके लिए बैठे। एक सिफ़ारिशी चिट्टी पढ़ रहे थे, प्रत्येक वाक्यको गम्भीरतापूर्वक पढ़ते जाते थे और कभी-कभी उसपर टिप्पणी भी करते जाते थे। अन्तमें एक वाक्य आया—"And he is a brilliant conversationalist." अर्थात्—"और ये सज्जन बातचीत करनेमें भी बड़े निपुण हैं।" स्कॉटने कहा—"I think we have enough of them already." अर्थात् —"बातचीत करनेवाले तो हमारे कार्यालयमें पहलेसे ही बहुत काफ़ी मौजूद हैं!"

स्कॉट इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि दुनियामें कोई आदमी पूर्ण या सर्वज्ञ नहीं है और न हो ही सकता है। हम यदि एक चीज़में कमज़ोर हैं तो दूसरा उसीमें मज़बूत है। संस्थाओंकी सफलताका रहस्य इस सिद्धान्तमें है कि संस्थापक ऐसे व्यक्तियोंका संग्रह करे, जो एक-दूसरेकी त्रुटियोंके पूरक हों। स्कॉट इस रहस्यको भलीभाँति समझते थे, इसलिए उन्होंने अपने सम्पादकीय स्टाफमें ऐसे सुयोग्य व्यक्तियोंका संग्रह किया था, जो किसी-किसी बातमें स्वयं स्कॉटसे कहीं अधिक योग्य थे। एक सहकारीमें उनसे कहीं अधिक मौलिकता थी, दूसरा बुद्धिमें उनसे तीक्ष्ण था और तीसरेमें प्रबन्धशक्ति और उद्योगका माद्दा अधिक था। स्कॉटने अपनी सब आकांक्षाओंको, अपने सब अभिमान तथा गौरवको, 'मैनचेस्टर गार्जियन' के निर्माणमें खपा दिया था; पर उन्होंने यह कभी खयाल न

किया कि मैं ही अकेला 'मैनचेस्टर गार्जियन' का निर्माता हूँ। वे इस बातको ख़ूब जानते थे कि उसके निर्माणमें सहयोगियोंके मस्तिष्क तथा परिश्रमका काफ़ी हिस्सा है। समाचार-पत्रोंको उन्होंने रुपये कमानेकी मशीन या व्यापार कभी नहीं समझा। वे समाचार-पत्रोंको सार्वजनिक संस्था मानते थे।

स्कॉटने समाचार-पत्रोंके लिए जो उच्च आदर्श रखा था, वह उनके निम्न-लिखित शब्दोंसे, जो उन्होंने अपने एक भाषणमें कहे थे, प्रकट होता है:

"Fundamentally it (journalism) implies honesty, cleanness, courage, fairness, a sense of duty to the reader and the community. The newspaper is of necessity something of a monopoly, and its first duty is to shun the temptations of a monopoly. Its primary office is the gathering of news. At the peril of its soul it must see that the supply is not tainted. Neither in what it gives, nor in what it does not give, nor in the mode of presentation, must the unclouded face of truth suffer wrong. Comment is free, but facts are sacred. Propaganda, so called, by this means is hateful. The voice of opponents, not less than that of friends, has a right to be heard. Comment is also justly subject to a self-imposed restraint. It is well to be frank: it is even better to be fair."

अर्थात्—"जर्नेलिज़्म (अख़बारनवीसी) के मूल सिद्धांत ये हैं—ईमानदारी, सफाई, साहस, न्यायप्रियता और पाठक तथा समाजके प्रति अपना जो कर्तव्य है, उसे समझना। समाचारपत्र प्रायः एक आदमी या एक संस्थाकी

सम्पत्ति होते हैं, उनपर किसी-न-किसीका एकाधिकार होता है और एकाधिकारवालोंके मार्गमें कितने ही प्रलोभन होते हैं। एकाधिकारके इन प्रलोभनोंको घृणाकी दृष्टिसे देखना, उनसे दूर रहना, समाचारपत्रका मुख्य कर्तव्य है। अख़बारोंका ख़ास काम ख़बरोंका इकट्ठा करना है। पत्रकारका कर्तव्य है कि वह अपने जीवनको ख़तरेमें डालकर भी इस बातका खयाल रखे कि कहीं ख़बरें इकट्ठा करनेमें असत्यताकी मिलावट तो नहीं की जा रही। जो चीजें छपती हैं, उनमें, अथवा जो रोकी जाती हैं, उनमें—समाचारोंके छापने या न छापनेमें—कहीं सत्यपर परदा तो नहीं डाला जा रहा। घटनाओंकी रिपोर्ट ज्यों-की-त्यों होनी चाहिए, उनमें मिलावट करनेका अधिकार किसीको नहीं। हाँ, टीका-टिप्पणीकी स्वतन्त्रता सबको है। अपने पक्षकी ख़बरोंको छपाकर, विपक्षकी दबाकर, अथवा नोन-मिर्च मिलाकर समाचारोंको प्रकाशित करना अनुचित है—प्रचारका यह ढंग घृणापूर्ण है। अपने मित्रोंकी ही नहीं, अपने विपक्षियोंकी भी आवाज़को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वह जनता तक पहुँचे। और न्यायका यह तक़ाज़ा है कि टीका-टिप्पणी करनेमें पत्रकार अपने ऊपर संयम रखे। स्पष्टवादिता बहुत अच्छी चीज़ है; पर न्यायप्रियता उससे भी बढ़कर है।"

सन् १९२६ में आक्सफोर्ड-यूनिवर्सिटीके एक अधिकारीको, जो अध्यापन-कार्य छोड़कर उनके पत्रमें काम करना चाहते थे, मि० स्कॉटने लिखा था—"मि० वेल्डविनने मेरे उन शब्दोंको, जो मैंने पत्रकारके कर्तव्योंके विषयमें लिखे थे, एक भाषणमें उद्धृत किया था।* अगर वे मेरे हाथ लग गये तो मैं तुम्हें भेज दूँगा। दरअसल बात यह है कि 'मैनचेस्टर गार्जियन' मुनाफ़ेके ख़यालसे नहीं, बल्कि समाज-सेवाके भावसे चलाया जा रहा है। मैंने शायद आपसे कहा था कि जबसे पत्र हमारे

---

*मि० स्काटके ये शब्द हमने ऊपर दे दिये हैं।—लेखक

अधिकारमें आया है—यानी २० वर्षसे—हमने एक पैसा भी मुनाफ़ेका नहीं लिया और यद्यपि आजकल हमारे पत्रमें काफ़ी लाभ हो रहा है, मुनाफ़े-की यह तमाम रक़म या तो पत्रको अधिक उन्नत बनानेमें लगा दी जाती है अथवा रिज़र्व फण्डमें जमा कर दी जाती है, जिससे भविष्यमें पत्रको किसीका पराधीन न बनना पड़े। मैं अपने इस कार्यके लिए कोई विशेष श्रेय नहीं चाहता। मैंने ये बातें आपको इसलिए लिख दी हैं कि यदि आप अपना शिक्षा-सम्बन्धी काम छोड़कर, जो आपको भविष्यके लिए काफ़ी वैभवपूर्ण तथा तेजस्वितायुक्त होगा, पत्र-सम्पादनकी लाइनमें आना ही चाहें तो आपको इस बातका ज्ञान चाहिए कि आप जिस पत्रमें आना चाहते हैं, उसका ध्येय क्या है और किन आदर्शोंकी पूर्तिके लिए आपको काम करना होगा।"

स्कॉटने अपने ५८ वर्षीय सम्पादकीय जीवनमें (सन् १८७१ से १९२९ तक) इन आदर्शोंके साथ कितना महान् कार्य किया, दुनिया इसकी साक्षी है। एक ऐसे पत्रको, जिसका प्रभाव केवल एक नगर-भर (मैनचेस्टर) में था, उन्होंने संसारके समाचारपत्रोंमें एक ख़ास शक्ति बना दिया।

स्कॉटने स्त्रियोंके मताधिकारके आन्दोलनमें, राजनीतिमें लिबरल सिद्धान्तोंके प्रचारके लिए, ब्रिटेनकी वैदेशिक नीतिके निर्धारणमें और आयरलैण्डके मसलेको हल करनेमें जो कार्य किया, उसका वर्णन करनेके लिए एक अलग ही लेख लिखना होगा। दक्षिण अफ्रिकाके बोअर-युद्धके दिनोंमें 'मैनचेस्टर गार्जियन' ने जिस निर्भीकताके साथ न्यायका पक्ष लिया, उसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी। उस समय बोअरोंके पक्षमें कुछ भी कहना ख़तरेसे खाली न था। स्कॉटकी इस निष्पक्षताके कारण उनके पत्रकी लोकप्रियताको भी ज़बरदस्त धक्का लगा था; पर इसका उन्होंने कुछ भी ख़याल नहीं किया। जनता उनसे तथा उनके पत्रसे इतनी अधिक नाराज़ हो गई थी कि पुलिसको उनके घर तथा आफिसकी ख़ास

तौरसे रक्षा करनी पड़ती थी। एक कारटून किसीने छपाया था, जिसमें बोअर प्रेसिडेन्ट क्रूगरको स्कॉटको रिश्वत देते हुए दिखलाया गया था! यही नहीं, स्कॉटके अनेक मित्र भी उनसे अत्यन्त रुष्ट हो गये थे। एक महाशयने तो इसी कारण उनसे तथा 'मैनचेस्टर गार्जियन'से बिलकुल सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। बोअर-युद्धके दिनोंमें स्कॉटने जिस निष्पक्ष दृढ़तासे काम लिया, उसके लिए वे चिरस्मरणीय रहेंगे।

महात्माजी भी स्कॉटकी न्यायप्रियताके प्रशंसक रहे हैं। पिछली बार जब महात्माजी गोलमेज परिषद्में गये, उस समय वे स्कॉटसे मिलनेके लिए भी गये थे। उस भेंटका ज़िक्र करते हुए श्री महादेव देसाईने 'इंग्लैण्डमें महात्माजी' नामक पुस्तकमें लिखा था—"पत्रकारोंके महारथी मि० स्कॉटकी मुलाक़ात तो स्वयं गान्धीजीके शब्दोंमें एक तीर्थ-यात्राकी तरह थी।..इस समय उनकी अवस्था ८५ वर्षकी है; किन्तु हमने उन्हें ओवरकोट लेनेके लिए नसेनीपरसे जिस दृढ़ता और स्थिरताके साथ चढ़ते-उतरते देखा, उससे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उनमें अब भी उत्साह बीस वर्षके नवयुवक-जैसा है..ज्योंही वृद्ध स्कॉट उनका स्वागत करनेके लिए आगे बढ़े, गान्धीजीने उनसे कहा—'यह तो केवल तीर्थ-यात्रा है। ग़लत-फहमी और विपरीत प्रचारके विरुद्ध आपके पत्रने अपूर्व काम किया है और मैंने सोचा कि और कुछ नहीं तो केवल कृतज्ञता-प्रदर्शनके लिए ही मुझे आपसे मिलना चाहिए।"

स्कॉट आफिसमें शामके ६ बजे पहुँचा करते थे। बड़ी दृढ़ता-पूर्वक अपने कमरेकी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए जब वे बाएँ हाथ से दरवाज़ेके किवाड़पर ज़ोरके साथ धक्का देकर उसे हटाते तो आफिसके कार्यकर्ताओंको पता लग जाता कि प्रधान-सम्पादक महोदय आ गये हैं! पहले अपने पाससे निकालकर वे नौकरको खानेका थोड़ा-सा सामान देते, जो वे घरसे लाते थे और फिर शामको निकलनेवाले अखबारोंको पढ़ते। सबसे महत्त्व-

पूर्ण कार्य था उनके लिए अग्रलेख लिखना। वे कहा करते थे कि पत्रका मुख्य उद्देश्य यही चीज़ है। अपने सहकारियोंसे बातचीत करके वे यह आदेश देते थे कि मुख्य लेख किस विषयपर लिखा जायगा और जिन लेखक महोदयको यह लेख लिखना होता था, उनके लिए बिलकुल निश्चिन्ततासे एकान्तमें बैठनेका प्रबन्ध कर दिया जाता था, जिससे कोई उनके कार्यमें बाधा न डाल सके। जब स्कॉट स्वयं अग्रलेख लिखते थे तो उस समय चाहे कोई भी आवे, उनसे मिलने नहीं पाता था। कभी कटिंगकी जिल्द मँगाते तो कभी इस कमरेसे उस कमरेमें अपने किसी सहयोगीसे परामर्श लेने जाते, फिर नोट लिखकर अग्रलेख लिखने बैठ जाते। लिखते तो वे स्याहीसे थे; पर संशोधन पेंसिलसे करते थे। कोई ग़लत चीज़ लिख गई, झट मेज़के खानेमें से रबर निकाली, उसे मिटाया और पेंसिलसे संशोधित शब्द या वाक्य लिखा और बड़ी तेज़ीके साथ रबरको फिर खानेमें बन्द कर दिया। मुख्य लेख खतम करनेके बाद वे चिट्ठियाँ लिखते। ज्यादातर तो वे चिट्ठियाँ अपने हाथसे ही लिखते थे और यह नियम उन्होंने अपनी वृद्धावस्था तक जारी रखा। जब उनके दाहिने हाथमें चोट लग गई तो उन्होंने बाएँ हाथसे लिखनेका प्रयत्न किया; पर वह चला नहीं।

चिट्ठी लिखनेकी कलाको वे अत्यन्त महत्व देते थे और जितना महत्व वे मुख्य लेख अथवा आलोचनाको देते थे, उतना ही पत्र-लेखनको भी। मौज़ूं शब्द तलाश करके रखनेमें तो वे पारंगत थे। पत्र लिखकर वे अपने किसी साथीको सुनाते और उसकी सम्मति माँगते। शतरंजका कोई खिलाड़ी जिस सावधानीसे अपने विरोधीकी अगली चालोंका ख़याल करके चाल चलता है, पत्र लिखते समय स्कॉट भी वैसी ही सावधानीसे काम लेते थे। पत्र लिखनेमें उनका सदा एक मुख्य उद्देश्य होता था। एक बार उनके एक साथीने पूछा—"आपने पत्रके उस मुख्य पैराका तो जवाब ही नहीं दिया!" स्कॉटने मुस्कराकर उत्तर दिया—"उसका उत्तर न

देना ही सर्वोत्तम उत्तर है। वे महोदय, जिन्हें चिट्ठी भेजी गई है, यह समझ जायँगे।"

लम्बे पत्रोंको स्कॉट नापसन्द करते थे। मतलबकी वात संक्षेपमें लिखना उन्हें प्रिय था। कभी कोई लम्बी चिट्ठी आती तो कहते––"लो, एक खरीता अमुक महाशयका आ पहुँचा, ज़रा इसे पढ़कर देखो। क्या मुझे खुद जवाब लिखना चाहिए?" स्कॉटने यह नियम बना लिया था कि वे आवश्यक पत्रोंका तुरन्त ही और ख़ुद ही जवाब देते थे। हां, ऊटपटाँग चिट्ठियोंका उत्तर वे नहीं देते थे।

स्कॉट निरन्तर अपनी दृष्टि प्रतिभाशाली नवयुवक लेखकोंपर रखते थे। वे सदा इस बातका प्रयत्न किया करते थे कि जबतक किसी दूसरे सम्पादककी निगाह किसी प्रतिभाशाली नवयुवक लेखकपर पड़े, उसके पहले ही उसे अपने पत्रके लिए ठीक कर लिया जाय। किफ़ायतशारीके खयालसे भी यह बात अच्छी थी और स्कॉट बड़े किफ़ायतशार थे। वे सोचते थे कि प्रारम्भमें नवयुवक लेखकोंको पारिश्रमिक कम देना पड़ेगा और पीछे दूसरे पत्रोंमें लेख छपनेपर उनके पुरस्कारका रेट बढ़ जायगा। यदि किसी नवीन लेखककी कोई अच्छी रचना छपती तो वे तुरन्त अपने सहकारी सम्पादकोंको आदेश देते कि उसे प्रोत्साहन दिया जाय।

युद्धके दिनोंमें विलायती पत्रोंमें एक कुप्रथा चल पड़ी थी। वह यह कि बड़े-बड़े उपन्यासकारोंको काफ़ी रुपया देकर ऐसे प्रश्नोंपर भी, जिन्हें वे ख़ाक-धूल नहीं जानते थे, उनकी सम्मतियाँ तथा लेख लेकर छापे जाते थे। स्कॉट इस दम्भपूर्ण कार्रवाहीसे नफ़रत करते थे। एक बार किसीने स्कॉटसे कहा––"अमुक उपन्यासकारको प्रति लेखपर ४० पौण्ड मिलता है।" स्कॉटने बड़े तपाकसे जवाब दिया––"जनाब, चालीस पौण्ड तो उन हज़रतकी भी क़ीमत न होगी।"

स्कॉट लेखककी प्रसिद्धिका खयाल न करके लेखोंकी उत्तमता या निकृष्टतापर ही ध्यान देते थे। एक बार एक सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवीने

'युद्धके बादका यूरोप' इस विषयपर अपने विचार लिख भेजे और स्कॉटसे कहा कि बहुत-थोड़ा-सा नाममात्रका पुरस्कार देकर वे उसे 'मैनचेस्टर गार्जियन' में छाप दें। स्कॉटको लेखमाला ठीक नही जँची और उन्होंने उसे वापस कर दिया। उन महान् साहित्यिक महोदयने कुछ दिन बाद लिखा—"वही लेखमाला जिसे आपने अस्वीकृत किया था, एक अन्य सम्पादकने एक सौ पौण्डमें स्वीकृत कर ली है।"

बड़े आदमियोंको अनुचित महत्व देते हुए समाचारपत्रोंमें जो पैराग्राफ छपा करते हैं, उन्हें स्कॉट बहुत नापसन्द करते थे। एक बार उन्हीके पत्रमें एक पैरा छपा, जिसमें लिखा था—"माननीय. . . .महाशयकी आँतके फोड़ेका आपरेशन सुप्रसिद्ध डाक्टर सर फ्रेडरिक ट्रीव्स द्वारा किया गया।"

इसपर टिप्पणी करते हुए स्कॉटने अपने सहकारी सम्पादकको लिख भेजा कि इस खबरकी बिल्कुल जरूरत न थी, क्योंकि—

(क) पहली बात तो यह है कि "माननीय अमुक महाशय" नगण्य महाशय है।

(ख) दूसरे, सभी बड़े-बड़े महाशयोंको आजकल आँतके फोड़ेकी बीमारी हो रही है।

(ग) तीसरे, सुप्रसिद्ध डाक्टर सर फ्रेडरिक ही सभीका आपरेशन करते हैं।

स्कॉट पत्रकी ग्राहक-संख्या, विज्ञापन, प्रचार, अथवा सर्क्यूलेशन को उतना महत्त्व नहीं देते थे, जितना पत्रके प्रभावको। वे ग्राहक-संख्यामें वृद्धि अवश्य चाहते थे, जिससे उनके विचार अधिकाधिक आदमियों तक पहुँचें। पत्रका प्रचार भी उन्हें इष्ट था, क्योंकि प्रचार बढ़नेसे विज्ञापन अधिक मिलता है, उससे पत्रकी स्थिति ठीक होती है और परिणाम-स्वरूप पत्रकी शक्ति भी बढ़ती है। पर वे विज्ञापनदाताओंकी खुशामद नहीं करते थे और बिना कारण उन्हें असन्तुष्ट भी नहीं करते थे। एक बार किसी

अनुभवहीन नवयुवकने स्कॉटसे कहा—"अमुक विषयपर पत्रमें लेख छपना कठिन होगा, क्योंकि उसमें विज्ञापनदाताओंके दबावमें आना पड़ेगा।" स्कॉटने इसका ज़िक्र करते हुए अपने एक अनुभवी सहकारीसे कहा—"जब वह नवयुवक विज्ञापनदाताओंके दबावमें आनेकी बात कह रहा था, मेरे मनमें यह भावना उत्पन्न हुई कि उसे ठोकर मारकर सीढ़ियों के नीचे गिरा दूँ।"

सबसे बड़ा गुण स्कॉटमें चित्तकी स्थिरता और दृढ़ता थी। साठ वर्षकी उम्रमें उनपर पत्नी-वियोगका भयंकर दुःख पड़ा, उसके दो वर्ष बाद उनका ज्येष्ठ पुत्र, जिससे उन्होंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं और जो उनके कामको आगे चलकर सम्हालनेवाला था, स्वर्गवासी हुआ; पर स्कॉटने अपने कर्तव्य-पालनमें ज़रा भी शिथिलता नहीं आने दी। वे कहते थे कि वह आदमी कायर है, जो दुर्घटनाओंसे कर्तव्यच्युत हो जाता है। ८४ वर्षकी उम्रमें भी वे साइकिलपर अपने आफिस जाया करते थे। अपने कष्टों और दुःखोंकी चर्चा किसीसे न करते। 'साईं निज मनकी व्यथा, मन ही राखो गोय'—स्कॉट इस उपदेशके अनुयायी थे। वे पक्के आशावादी थे। कवितामें उन्हें कालरिजकी निम्नलिखित पंक्तियाँ बहुत प्रिय थीं—

And winter slumbering in the open air.
Wears on his smiling face a dream of spring.

—Coleridge.

मुक्त वायु में सुप्त शिशिरके सस्मित अधरोंपर अविकार
है सुखस्वप्न खेलता भावी नव वसन्तऋतुका सुकुमार

—मिलिन्द

१ जनवरी सन् १९३२ को स्कॉट स्वर्गवासी हुए। जिन्होंने अपने ५८ वर्षके दीर्घव्यापी सम्पादकीय जीवनमें पत्रकार-कलाके उच्च आदर्शोंको

सामने रखकर अपने कर्तव्यका पालन किया, न बड़े आदमियोंकी खुशामद की और न छोटोंकी उपेक्षा; जो जनताकी खुशी या नाराज़गीका ख़याल न करते हुए अपनी अन्तरात्माके आदेशके अनुसार अपने विचार प्रकट करते रहे; थोड़ी-सी व्यापारिकता और सांसारिकताके द्वारा जो, जिस दिन चाहते, महल खड़े कर लेते और लार्डकी उपाधिसे विभूषित होकर बुढ़ापेमें चैनकी वंशी बजाते; पर जिन्होंने सांसारिक वैभवको अपनी स्वाधीनताके सामने नगण्य समझा, और अपनी योग्यता, दृढ़ता और न्यायप्रियताके कारण संसारके बुद्धिमान व्यक्तियोंके लिए आदरणीय बन गये, यहाँ तक कि महात्मा गाँधी जैसे जगतवंद्य महापुरुष उनके दर्शनको तीर्थ-यात्राके समान समझने लगे, वे सम्पादकाचार्य सी० पी० स्कॉट हम लोगोंके लिए स्मरणीय हैं, अभिनन्दनीय हैं, अनुकरणीय हैं।

अगस्त १९३५]

: १४ :

एच० डब्ल्यू० नेविनसन

भगवान वेदव्यासने महाभारतमें जिन चरित्रोंका चित्रण किया है, उनमें हमें बलरामका चरित्र बहुत पसन्द है। बलराममें एक उत्साहप्रद फक्कड़पन है, एक निराला व्यक्तित्व है और वह अजीबोग़रीब गुण भी, जो महाभारतके अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोंमें नहीं पाया जाता— यानी जिसे वे अपनी अन्तरात्माके अनुसार न्याययुक्त अथवा सत्य समझते हैं, उसपर डटे रहनेकी उनमें असाधारण क्षमता है। इस विषयमें वे भीष्म, द्रोण और कृपाचार्यको मीलों पीछे छोड़ जाते हैं। उद्योगपर्वके दूसरे अध्याय-में जब पाण्डवोंकी मन्त्रणा-सभा बैठी थी, उसमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कह दिया था कि युधिष्ठिरने अपने दोषसे राज्य खोया है। वे जुआ खेलने गये ही क्यों? इसलिए लड़ाई करके दुर्योधनसे राज्य माँगना अन्याय है। शान्तिसे, नम्रतापूर्वक ही, उससे व्यवहार करना चाहिए—

'अयुद्धमाकांक्षत कौरवाणां
साम्नैव दुर्योधनमाह्वयध्वम्।'

इसके बाद जब दुर्योधन और अर्जुन श्रीकृष्ण और बलरामको अपने-अपने पक्षमें लेनेके लिए द्वारिका गये, उस समय श्रीकृष्ण भगवान्ने तो समझौता कर लिया कि एक ओर मैं निःशस्त्र रहूँगा और दूसरी ओर मेरी दस हज़ार नारायणी सेना रहेगी, पर बलराम अपनी बातपर डटे रहे। उन्होंने साफ़ कह दिया कि मैं दोनों पक्षोंमें किसीकी ओर नहीं जा सकता। उन्होंने अपने छोटे भाई कृष्णको भी बहुत समझाया कि तुम भी किसी ओर मत हो, पर कृष्णने उनकी बात नहीं मानी! अन्तमें

बलरामने यही तय किया कि इन लोगोंको छोड़कर सरस्वती-तीर्थपर जाकर रहूँगा। उनके वचन ये थे--"नष्ट होते हुए कौरवोंकी मैं उपेक्षा नहीं कर सकता।"--

'न हि शक्ष्यामि कौरव्यान्नश्यमानानुपेक्षितुम्।'

और बलरामके चरित्रका सबसे अधिक उज्ज्वल पहलू तब दीख पड़ता है, जब वे महाभारतके अन्तमें भीम और दुर्योधन दोनोंके गदा-युद्धको देखनेके लिए गये हैं। दोनों ही बलरामके शिष्य थे। भीषण युद्ध हुआ। उस समय भीमने बेईमानी की। उन्होंने दुर्योधनकी जाँघपर गदा मारी और यह बात गदा-युद्धके नियमोंके सर्वथा विरुद्ध थी, क्योंकि इस युद्धमें नाभिके ऊपर ही आघात करनेका नियम है। दुर्योधनके ज़बरदस्त चोट लगी और वे कातर आवाज़के साथ ज़मीनपर लेट गये। अन्य लोग, जिनमें श्रीकृष्ण भगवान् भी थे, इस अन्यायको देखते रहे, पर बलरामसे यह न देखा गया। वे क्रोधसे जल उठे और हल उठाकर भीमपर पिल पड़े। बड़ी मुश्किलसे श्रीकृष्णने उन्हें शान्त किया। उस समय बलरामने जो शब्द कहे थे, वे चिरस्मरणीय हैं। उन्होंने कहा था--"हे कृष्ण, केवल दुर्योधन ही नहीं गिरा है, जो विषम होते हुए भी मेरे समान योद्धा था, पर मेरा भी पतन हुआ है, क्योंकि दुर्योधन यहाँ अकेला था और मेरा आश्रित था। आश्रितकी दुर्बलतासे आश्रयकी भी निन्दा होती है।"--

"ना चैव पतितः कृष्ण
केवलं मत्समोऽसमः
आश्रितस्य तु दौर्बल्यात्
आश्रयः परिभर्त्स्यते।"

(शल्यपर्व)

अभी उस दिन हमें हेनरी डब्ल्यू० नेविनसनका आत्मचरित (Fire of Life by Henry W. Nevinson) पढ़ते हुए कई बार बलरामका ख्याल आ गया। अन्यायका विरोध करनेके लिए अपनी जान लड़ा

देनेवाला अगर कोई पत्रकार इंगलैण्डमें है तो वह नेविनसन है। कमज़ोरों और अन्याय-पीड़ितोंका पक्ष लेनेमें उसे मज़ा आता है। हथेलीपर जान लिये घूमना किसे कहते हैं, यह बात अगर कोई पत्रकार सीखना चाहे तो नेविनसनसे सीख सकता है। जब कवीन्द्र रवीन्द्र सन् १९२१में नेविनसनसे मिले थे तो उन्होंने अपने १० अप्रैलके पत्रमें मि० ऐण्ड्रूज़को लिखा था—

"इंगलैण्ड आनेपर पहले-पहल जिनसे मेरी मुलाक़ात हुई, उनमें नेविनसनका नाम उल्लेखनीय है। उनसे मिलकर मेरा यह विश्वास हो गया कि जिस भूमिने इस पुरुष-पुंगवको जन्म दिया है, उस देशमें मानव-आत्मा अवश्य जीती-जागती विद्यमान है। किसी देशके विषयमें यदि हम फ़ैसला करना चाहें तो हमें उसके सर्वश्रेष्ठ निवासियोंको मद्देनज़र रखना चाहिए और मैं यह बात बिना किसी संकोचके कह सकता हूँ कि अंगरेज़ोंमें जो सर्वोत्तम हैं, वे मानव-समाजके सबसे बढ़िया नमूने हैं।"

मि० नेविनसन इस समय ८० वर्षके हैं, पर उनके आत्म-चरितमें केवल ७० वर्ष तकका हाल है। आइये, इस वीर पत्रकारके विचित्र संस्मरणोंका कुछ परिचय हम लोग भी पा लें। सन् १८९६की बात है। नेविनसन उस वक़्त ३९ वर्षके युवक थे। उस समय ग्रीक लोगोंने टर्कीके अत्याचारोंके विरुद्ध बग़ावतका झण्डा खड़ा किया था। चूंकि नेविनसन एक बार ग्रीसकी यात्रा कर चुके थे और उसकी प्राचीन सभ्यताके कारण ग्रीसके प्रति आपके हृदयमें अत्यन्त सम्मान भी था, आपने यह निश्चय किया कि अंगरेज़ स्वयं-सेवकोंकी एक टुकड़ी बनाई जानी चाहिए, जो ग्रीस पहुँचकर उनकी मदद करे। आप बाइरन-सोसाइटीके अधिकारियोंके पास गये, पर वहाँ पता लगा कि किसीने पहले ऐसा प्रस्ताव नहीं किया था। फिर आप ग्रीक राजदूतके पास गये, पर उन महाशयने भी उन्हें धन्यवाद देकर नम्रता-पूर्वक टरका दिया! इसके बाद ५ मार्चको क्वीन्स हॉलमें एक मीटिंग हुई। उसमें कितने ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ बोलनेवाले थे। जब टर्कीकी निन्दाका प्रस्ताव, जैसा कि हुआ करता है, सर्वसम्मतिसे

पास हो चुका तो आप अपनी कुर्सीपर उठ खड़े हुए और लगे लेक्चर देने—"यह मौखिक सहानुभूति तो बहुत हो चुकी, अब हमें कुछ क्रियात्मक सहानुभूति दिखलानी चाहिए। हमें स्वयं-सेवकोंकी एक फ़ौज बनाकर ग्रीसको भेजनी चाहिए। कोरमकोर प्रस्तावोंसे कुछ नहीं होना-जाना।"

इतना कहना था कि तमाम श्रोतागण बड़ी नाराज़ीके साथ नेविनसनका विरोध करने लगे और उन्हें बोलनेसे रोकने लगे, पर नेविनसन रुकनेवाले आदमी नहीं थे, दनादन बोलते ही गये! चारों ओर शोरगुल होने लगा। अन्तमें प्रबन्धकोंने आपको कुर्सीपरसे पकड़कर नीचे घसीट लिया! मीटिंगके एक प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञने नेविनसनसे कहा कि जो बात तुम्हें कहनी है, उसे लिखकर दो। आपने यही किया, नोट लिख-कर उनके पास भेज दिया। उन्होंने दूसरे सज्जनको दिया, पर उसपर कार्रवाई किसीने कुछ भी न की! आपने सोचा कि और कोई ग्रीस जाय या नहीं, मैं तो ज़रूर जाऊँगा और इस घटनाके दस दिन बाद आप ग्रीसके लिए रवाना हो गये!

चलनेके एक दिन पहले एक सज्जन आपको नेशनल लिबरल क्लबमें ले गये और वहाँ आपका परिचय 'डेली क्रॉनिकल'के सम्पादक मि० एच० डब्ल्यू० मैसिंगहमसे कराया गया। आधा मिनट भी न होने पाया था कि मि० मैसिंगहमने कहा—"क्या आप ग्रीससे हमारे पत्रके लिए संवाद भेज सकेंगे?" नेविनसनने कहा—"अवश्य।" बस, उस एक मिनटमें नेविनसनके जीवनका कार्यक्रम निश्चित हो गया। सन् १८९७से लेकर पिछले महायुद्ध तक जब-जब मौक़ा मिला, आपने अनेक युद्ध-क्षेत्रोंमें जाकर संवादाताका काम किया है। इस बार आपने ग्रीस-यात्रामें जिन कठिनाइयोंका सामना किया, उसे पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कई जगह आपको गोलियोंकी बौछारके बीचसे निकलना पड़ा। कानके पाससे सनसनाती गोलियाँ निकल जाती थीं और आप भयके भूतको दबानेकी बहुत कोशिश करते थे, पर भय मस्तिष्कसे निकलता ही न था! यह

लड़ाई तीस दिनमें ख़तम हो गई। इस बीच नेविनसनने कितने ही बार अपने प्राण संकटमें डाले। लड़ाई ख़तम होनेके बाद आपने अपने परिचित ग्रीक अफ़सरोंको एक भोज दिया था।

जून सन् १८९७में 'डेली क्रानिकल'के संपादकने नेविनसनको तार भेजा--'क्रीट जाकर वहाँके ईसाइयोंसे मिलो और उनसे पूछकर लिखो कि उनकी आकांक्षाएँ क्या-क्या हैं ?" एक दुभाषियेको लेकर आप चल पड़े। हर वक़्त जान जोखोंमें थीं। तुर्क लोगोंकी गोलीका शिकार होनेका भय बराबर लगा रहता था, पर नेविनसन एक अप्रसिद्ध पहाड़ी रास्तेसे निकल गये और ठीक-ठिकाने जा पहुँचे। वहाँ लोगोंसे मिलकर उन्होंने विद्रोहियोंसे, जो टर्कीके ख़िलाफ़ लड़ रहे थे, उनकी शर्तें पूछी। दूसरे दिन जब वे चलने लगे तो एक इटालियन सेनापतिने उनसे कहा--"आप जा तो रहे हैं, पर आपकी ज़िन्दगीका भरोसा नहीं है। क्रीट-निवासी आपका ख़ात्मा कर देंगे और तुर्क लोग फाँसीपर लटका देंगे।" इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसन लिखते हैं--"मैंने मनमें सोचा कि एक ही साथ मैं दो मौतोंका शिकार होनेसे तो रहा, इसलिए यही बेहतर है कि ख़तरेमें पड़ा जाय और घोड़ेपर सवार होकर चल पड़ा।" जब नेविनसन और उनका साथी दुभाषिया 'न्यूट्रल ज़ोन'से निकल रहे थे तो दोनों ओरकी निष्पक्ष(!)गोलियाँ उनके आस-पाससे निकल जाती थीं।

लौटनेपर मैसिंगहमने उन्हें अपने पत्रके स्टाफमें बुला लिया और अग्रलेख लिखनेके लिए कहा। उन दिनोंका बड़ा मनोरंजक वर्णन नेविनसनने किया है। आत्मविश्वासकी उनमें कमी थी और यह सोचते थे कि दूसरोंके कहनेपर लीडिंग आर्टिकल कैसे लिखा जायगा ! पर जब लिखने बैठे तो मज़ेमें लिख डाला ! कुछ दिनों बाद वह इस पत्रके साहित्य-विभागके सम्पादक बना दिये गए। उन दिनों बर्नर्ड शा आपके पत्रके लिए आलोचनाएँ लिखा करते थे। एक दिन आपने बर्नर्डशाको गायनाचार्य वेगनरके विषयमें चार-पाँच किताबें और गान-विद्या-

विषयक कुछ ग्रन्थ भेजे और डेढ कालममें सबकी संयुक्त आलोचनाके लिए लिखा। बर्नर्ड शाने जवाब दिया—"मैं यह काम हर्गिज़ नहीं करूँगा और करूँगा तो अपनी शर्तोंपर और गोकि मेरे दिलमें आपके एडीटरकी काफ़ी इज़्ज़त है, फिर भी जनाब, किसीके भरोसे न रहियेगा। आपकी इस हिमाक़तकी रिपोर्ट लेखक-संघसे की जायगी और जो नतीजा होगा, सो देख लेना।"

नेविनसनने इस पत्रका उत्तर दिया—

"प्रिय महाशय,

ऐडीटर साहबने मुझसे कहा है कि मैं आपको यह लिख दूँ कि वे उस लेखके लिए पाँच पौण्डसे एक कौड़ी भी ज़्यादा नहीं देनेके। आप ज़्यादा माँगेंगे तो आपको धता बता दी जायगी। आपका...."

बर्नर्ड शाने इसका उत्तर दिया—

"प्रिय महाशय,

आप अपने एडीटर साहबको इत्तला दे दीजिये कि इतने रुपयेपर लेख लिखनेके बजाय मैं यह कहीं पसन्द करूँगा कि आप, वे और 'क्रानिकल' के सम्पादकीय विभागके सब आदमी जहन्नुम रसीद हों और वहाँ नरकाग्निमें उबाले जायँ!

आपका...."

इसके उत्तरमें नेविनसनने लिख भेजा—"तब आप हमारी किताबें वापस भेज दीजिए, जिससे हम किसी अन्य आलोचकसे लेख लिखा सकें, जो आर्थिक दृष्टिसे आपकी अपेक्षा कम भारी-भरकम हो।" पर बर्नर्ड शाने, जैसी कि आशा थी, लेख लिख भेजा।

नेविनसनको अपने पत्रके संवाददाताकी हैसियतसे स्पेन और आयरलैण्ड भी जाना पड़ा था। आप आइरिश लोगोंकी एक मीटिंगमें गये। ब्रिटिश पुलिस वहाँ मीटिंगके निकट ही तैनात थी—बन्दूक़ और डण्डे लिये हुए! व्याख्याता महोदयने खड़े होकर कहा ही था—"यदि आज

ख़ून-ख़राबी हुई तो उसकी सारी ज़िम्मेदारी पुलिसपर होगी" कि पुलिस टूट पड़ी और जो सामने आया, डंडेसे उसका सिर तोड़ डाला। नेविनसन लिखते हैं—"उस वक़्त मैं सड़कके ठीक बीचोंबीच बिल्कुल शान्त भावसे खड़ा रहा और मेरा सिर साफ़ बच गया। तबसे जब कभी मुझे पुलिस और जनताकी मुठभेड़ोंका सामना करना पड़ा है, मैंने इसी चालाकीसे काम लिया है और बराबर सफल हुआ हूँ।"

८ सितम्बर सन् १८९९को नेविनसन बोअर-युद्धमें संवाददाताका काम करनेके लिए रवाना हो गये और केपटाउन पहुँचे। लड़ाई उस वक़्त तक शुरू नहीं हुई थी। किनारेपर जहाज़ पहुँचते ही आपने यह तय किया कि जल्दी-से-जल्दी ब्लोमफानटीन और प्रिटोरिया पहुँचना चाहिए। इसलिए आप दूसरे ही दिन प्रातःकालके समय छिपकर जहाज़से चल दिये और कारू तथा आरेंज नदीको पार करते हुए दूसरे दिन रातके वक़्त ब्लोमफानटीन पहुँचे। वहाँ आप ख़ास-ख़ास आदमियोंसे मिले। प्रिटोरियामें आप प्रेसिडेंट क्रूगरके भवनपर भी मिलनेके लिए गये; लेकिन वहाँ जवाब मिला कि प्रेसिडेंट नहीं मिल सकते, क्योंकि प्रार्थना कर रहे हैं। इसके बाद स्टेट-सेक्रेटरी रीज़ तथा जनरल स्मट्ससे भी मिले। तत्पश्चात् आप ५ अक्तूबरको लेडीस्मिथ वापस चले गये। जब बोअर लोगोंने लेडीस्मिथके चारों ओर घेरा डाल लिया तो उसमें आप भी घिर गये। उन दिनोंका वर्णन आपने अपनी पुस्तक 'लेडीस्मिथ' ('Lady Smith') में किया है। इस बीचमें आप बीमार पड़ गये और डाक्टरोंने कह दिया कि तुम्हारे बचनेकी आशा नहीं है। बीमारी थी मलेरिया और पीलियाकी, पर आप चेत गये। कभी-कभी आपको अत्यन्त भयंकर परिस्थितिमें और एक अपरिचित देशमें नदी-नाले और पहाड़ी रास्ते तय करने पड़े, पर आपने हिम्मत कभी नहीं हारी। घोड़े मर गये, खाना कम पड़ गया, रास्ता जंगली, जगह-जगह लाशें पड़ी हुईं और तीन सौ मीलका सफ़र! पर महाप्राण नेविनसनके लिए वह सब मानों बच्चोंका खेल था।

बोअर-युद्धसे लौटनेके बाद आपको तीन वर्ष तक 'डेली क्रानिकल'के स्टाफमें काम करना पड़ा। आपके पुराने परिचित सम्पादक मि० मैसिंगहम तब तक इस पत्रको छोड़ चुके थे और नये सम्पादक उतने उदार विचारोंके नही थे। उन तीन वर्षोंका जो संक्षिप्त वर्णन आपने आत्मचरितमें किया है, उससे पता लगता है कि एक स्वाभिमानी और स्वतन्त्र विचारोंके पत्रकारको एक ऐसे पत्रके स्टाफपर, जिससे उसके विचार न मिलते हों, काम करनेमें कितनी मानसिक वेदना होती है। जिन पत्रकारोंकी आत्मा रबरकी तरह लचीली होती है और जो अपने मनको समझा लेते है–"भई, हमें तो अपनी रोटी-दालसे काम, पत्रकी नीति कुछ भी क्यों न हो", उनका मार्ग तो सरल होता है, पर जो पत्रकार अपना निजी व्यक्तित्व रखते हैं, उनकी जान आफ़तमें रहती है। नेविनसन लिखते हैं—"चुप रहना मेरे लिए मुश्किल था। मेरे लिए अपनी ज़बानको रोकनेके मानी थे मृत्यु। अगर मैं चुप रहता तो मेरी सारी सजीवता ही नष्ट हो जाती। आलसी बन मुर्दा हो जानेके मानी थे डबल मौत।"

इस संकट कालमें १९ जून, सन् १९०१को एक घटना ऐसी हुई, जिसमें नेविनसनको अपनी ज़िन्दादिली दिखानेका एक मौक़ा हाथ आ गया। उस दिन क्वीन्स-हॉलमें शान्तिके पक्षमें एक मीटिंग होनेवाली थी। इस मीटिंगका उद्देश्य था कि बोअर लोगोंसे सुलह कर ली जाय। लायड जार्ज इस मीटिंगमें बोलने वाले थे। साधारण जनता इस मीटिंगके सख़्त ख़िलाफ़ थी। बड़ी मुश्किलसे नेविनसेन धक्कम-धक्कोंके बीचमेंसे गुज़रकर क्वीन्स-हॉलमें पहुँच पाये। लायड जार्जका अत्यन्त प्रभावशाली भाषण हुआ। भाषणके समाप्त होते ही नेविनसनने सोचा कि चलो, जल्दीसे निकल चलें और अपने पत्र 'क्रानिकल'के आफ़िसमें पहुँचकर इस मीटिंगकी रिपोर्ट लिखें, लेकिन हॉलसे बाहर निकलना आसान काम न था। हॉलके चारों ओर क्रुद्ध जनता विद्यमान थी। हालके पीछेके रास्ते-पर पहुँचते ही पुलिसवालोंने नेविनसनसे

कहा—"क्या ज़िन्दगी भारी पड़ी है? जनता तुम्हें जानसे मार डालेगी।"

नेविनसनने कहा—"कुछ भी क्यों न हो, मुझे तो अपने पत्रके आफ़िस-पर पहुँचना ही है।"

एक पुलिसवालेने कहा—"अच्छा, एक तरकीव हम करेंगे। हम यह बहाना करेंगे कि तुम इस मीटिंगमें ऊधम मचाते थे, इसलिए बाहर निकाल दिये गए हो और हम झूठमूठको तुम्हें पीटेंगे, जिससे जनता इस धोखेमें आ जाय कि यह भी हमारे ही मतका है और बोअर लोगोंका विरोधी है!"

नेविनसन लिखते हैं—"मैं इस बातपर राज़ी हो गया और मीटिंगसे बाहर निकाले जानेका बहाना करने लगा। पुलिसवाले मुझे दिखावटी तौरपर पीटने लगे—थोड़ा नहीं बहुत—और मेरा सिर इधर-से-उधर टकराने लगा। कान्स्टेबल लोगोंने डंडे भी जमाये और मुझे ऐसा भ्रम होने लगा कि इस नाटकके बहाने वे अपने राजनैतिक विश्वासोंका प्रदर्शन भी मेरे सिरपर कर रहे हैं! उनकी चोटोंकी खाईसे बचकर जो मैं निकला तो अत्यन्त क्रुद्ध जनताकी खन्दकमें आ गिरा! भला वे क्यों इस झूठमूठके नाटकसे धोखेमें आने लगे! कविवर ब्राउनिंगने ठीक ही लिखा है कि ब्रिटिश लोगोको चकमा नहीं दिया जा सकता। जिस तरह शिकारी कुत्ते लोमड़ीपर टूट पड़ते हैं, उसी तरह वे सब मुझपर टूट पड़े। नतीजा यह हुआ कि मेरा कालर खुल गया, कोट टुकड़े-टुकड़े हो गया और कमीज़ फट गई। चिल्ला-चिल्लाकर वे लोग मुझसे कह रहे थे—'तुम दुश्मन बोअर लोगोंके पक्षपाती हो।' गोया कोई नई ख़बर मुझे सुना रहे हों, जिसका मुझे पता न हो! एक ख़ैरियत थी, वह यह कि जनता इतनी ठसाठस खड़ी थी कि मुझपर दो-तीन आदमी ही एक साथ चोट कर सकते थे। थोड़ी दूरपर एक मोटरबस खड़ी थी। उन चोटोंके बीचमें वह फ़ासला मुझे अनन्त-सा प्रतीत हुआ। ज्यों-त्यों करके मैं बस तक पहुँचा। उसकी लोहेकी छड़ियोंको मैंने हाथसे पकड़ा ही था कि ऊपर बैठी हुई

औरतें चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगीं—'लो, यह आया एक बोअरोंका समर्थक', 'देखो वह दूसरा आया !' मानों उनकी निगाह किसी गन्दे खटमलपर पड़ गई हो। फिर क्या था ! उन्होंने अपने छातोंकी मूठोंसे मेरे सिरपर चोट करना शुरू किया। उन दिनों छातोंके नीचे लोहेकी ठोस गोलीसी रहती थी, इसलिए सिर भिन्ना गया। इन औरतोंने मेरे मुँहपर थूका भी और बसका डंडा मेरे पंजेसे छुड़ाकर गिरानेकी कोशिश भी की ! उस दिनसे मुझे इस बातमें कोई शक नहीं रहा कि स्त्रियोंमें राजनैतिक उत्साह कितना अधिक है और उस उत्साहके प्रकट करनेके अधिकारको वे कितने वैधानिक तरीक़ेपर काममें ला सकती हैं ! खूनमें लथपथ और फटे कपड़े पहने मै अपने आफ़िसमें पहुँचा। एडीटर साहबने क्रोध और घृणाके साथ पूछा—'जनाब, उस मीटिंगमें बोअर लोगोंके समर्थककी हैसियतसे गये होंगे !' मैंने जवाब दिया—'बेशक ! और मैंने एक सबक़ भी सीख लिया है। इब्सनने अपने नाटकमें एक जगह लिखा है कि सत्य और न्यायका पक्ष लेकर कही जाना हो तो अपनी सर्वोत्तम पतलून पहनके मत जाना। यह बात आज मेरी समझमें आ गई है।"

एडीटर साहबकी मनोवृत्ति और नेविनसनके दृढ़ विश्वासोंमें ज़मीन-आस्मानका अन्तर था और अधिक दिन तक गंगा मदारका यह साथ रह नहीं सकता था। सन् १९०२में नेविनसनने पत्रके संचालकसे कहा—"मुझे एक बार अफ्रिका फिर जाने दीजिए, क्योंकि सन्धि होनेवाली है और मैं आपके पत्रके संवाददाताकी हैसियतसे वहाँ जाऊँगा।" संचालक महोदय राज़ी हो गये और नेविनसन फिर अफ्रिकाके लिए रवाना हुए। इस बारकी यात्रामें उनकी भेंट प्रधान-सेनापति किचनरसे भी हुई।

नेविनसनने जिन-जिन युद्धोंमें संवाददाताका काम किया और जिन-जिन ख़तरोंमें वे पड़े, उन सबका वृतान्त संक्षेपमें देनेके लिए भी यहाँ स्थान नहीं है। सन् १९०३में आप सैलोनिका गये थे। तुर्क लोगोंने बल्गेरियाके निवासियोंपर जो ज़ुल्म किये थे, उनकी जाँच की थी। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश

पत्रकार ब्रेल्सफ़ोर्ड उस समय आपके साथ थे। जिन दिनों रूसमें ज़ारशाहीके ज़ुल्मोंका दौरदौरा था, उस समय दो बार आप रूस गये थे। चीन-जापान-युद्धमें जानेकी आपने बहुत कोशिश की, पर अवसर ही नहीं मिला। पिछले महायुद्धमें भी आपने संवाददाताका काम किया था। हथेलीपर जान लिए घूमनेमें नेविनसनको मज़ा आता है। न्यूयार्ककी हार्पर्स कम्पनीने जब आपसे कहा—"हम एक हज़ार पौण्ड आपको देंगे, अगर आप हमारे लिए कोई विचित्र यात्रा करें" तो आप फ़ौरन् राज़ी हो गये और आपने पोर्चुगीज़ वेस्ट सेण्ट्रल अफ्रिकाकी, जहाँ गुलामीका व्यापार होता था, यात्रा करनेकी ठानी। आप अफ्रिका पहुँचे। कितने ही आदमियोंने आपको दोस्ताना तरीक़ेपर सलाह दी कि आप जानसे मार डाले जायँगे, पर आप भला क्यों डरने लगे! जाँच करके इस गुलामी-प्रथाकी वह पोल खोली कि प्रथा आखिर बन्द ही कर दी गई! इस सिलसिलेमें एक बड़ी मनोरंजक घटना नेविनसनने लिखी है।

जब अफ्रिकासे लौटनेपर आपने गुलामी-प्रथाके विरुद्ध आन्दोलन किया तो एक बार आपको वैदेशिक विभागके एक उच्च अफ़सरसे मिलनेके लिए जाना पड़ा। अफ़सरने मिलते ही कहा—"अखबारोंमें पोर्चुगीज़ अफ्रिकाकी गुलामीके बारेमें जो कष्ट-प्रद लेख निकल रहे हैं, वे क्या जनाबके ही लिखे हुए हैं? और जो कड़ी रिपोर्ट निकली है, क्या उसके रचयिता आप ही हैं?" नेविनसनने जवाब दिया—"जी हाँ, मुझे इस बातसे प्रसन्नता है कि वे लेख आपको कष्ट-प्रद प्रतीत हुए और रही रिपोर्टकी बात, सो वह तो काफ़ी कड़ी नहीं है।" हाकिमाना शानमें बड़ी घृणाके साथ उस अफ़सरने कहा—"क्या आप यह चाहते हैं कि धनधान्य-समृद्ध वे टापू वीरान बना दिये जायँ?" नेविनसनने कहा—"जो अत्याचार मैंने अपनी आँखोंसे वहाँ देखे हैं, उनके मुक़ाबलेमें यही बेहतर होगा कि ये टापू वीरान बना दिये जायँ?" इसपर अफ़सरके दिमाग़का पारा और भी चढ़ गया और उसने कहा—"क्या आप यह चाहते हैं कि दुनियामें

जहाँ कहीं भी गुलामी हो, वहाँ इंगलैण्ड पुलिसका काम करे ?" नेविनसनने भी बिल्कुल अफ़सराना ढंगपर जवाब दिया—"The answer is in the affirmative."—"इस प्रश्नका उत्तर स्वीकारात्मक है।"

रूसी ज़ारशाहीके ज़ुल्मोंके विषयमें रिपोर्ट करनेके लिए दो बार आप रूस गये। पहली बारकी यात्रामें आपको टाल्सटायके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। नेविनसन लिखते हैं, "टाल्सटायने उस समय मुझसे कहा था—"तुम एक नवयुवक हो (यह बात सन् १९०५की है और मैं उस वक़्त पचास वर्षका था) और मैं बुड्ढा हो चुका, लेकिन ज्यों-ज्यों तुम्हारी उम्र बढ़ती जायगी और दिन-पर-दिन बीतते जायँगे, तुम्हें अपनेमें कोई फ़र्क़ न मालूम पड़ेगा, पर किसी दिन अकस्मात् तुम्हें यह सुनाई पड़ेगा कि लोग तुम्हें 'बूढ़ा आदमी' बतला रहे हैं! इतिहासमें युगकी बात भी ऐसी ही है। दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं और कोई बड़ा फ़र्क़ नहीं मालूम होता, पर एक दिन अकस्मात् ऐसा प्रतीत होता है कि युग बीत चुका, ख़तम हो चुका। रूसमें जो आन्दोलन तुम देख रहे हो, वह कोई विद्रोह नहीं है और न कोई क्रान्ति है, वह तो एक युगका ख़ात्मा है और जो युग खत्म हो रहा है, वह साम्राज्योंका युग है। भला, रूसमें और फिनलैण्ड, पोलैण्ड तथा काकेशसमें क्या हार्दिक सम्बन्ध है? आस्ट्रिया-का हंगरी, बोहीमिया, स्टीरिया या टाइलोरसे क्या हार्दिक प्रेम है? और इंग्लैण्डका आयर्लेण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया अथवा भारतसे क्या हार्दिक सम्बन्ध है? साधारण जनता इस राजनैतिक सम्बन्ध या साम्राज्यवादके खोखलेपनको समझती जाती है और अन्तमें साधारण जनताकी बात ही अधिक तर्कयुक्त सिद्ध होती है। इसलिए मैं समझता हूँ कि साम्राज्योंके युगका अब अन्त हो रहा है। लोग मुझसे कहते हैं कि यदि रूसी साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया तो जापानी हमारे मुल्कपर चढ़ बैठेंगे और हम लोगोंका नाश कर देंगे, लेकिन जापानी जनता भी समझदार है और

जब वे यही आकर देखेंगे कि रूसी साम्राज्यके टूट जानेपर हम लोग कितने प्रसन्न हैं तो वे भी अपने घर लौटकर हमारे आदर्शका अनुकरण करेंगे।" टाल्सटायकी ४१ वर्ष पहले की हुई यह भविष्यवाणी विचारणीय है।

दूसरी बार जब नेविनसन रूसको जाने लगे तो उनके मित्रोंने और विरोधियोंने भी आपको अनेक बार सावधान किया कि वहाँ मत जाओ, क्योंकि वहाँ पहुँचते ही तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ा दी जायगी। बात यह थी कि रूसमें उन दिनों ज़ारशाहीका ज़माना था। डूमा (पार्लमेण्ट) बर्ख़ास्त कर दी गई थी। उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेके लिए इंग्लैण्डके उदार दलवालोंने घोषणा-पत्र निकाला था और यह तय पाया गया था कि एक डेपूटेशनके हाथ सहानुभूतियुक्त पत्र रूसको भेजा जाय। मि० ब्रेल्सफ़ोर्डको पासपोर्ट नहीं मिला, इसलिए वे तो जा नहीं सके, आखिर यह काम नेविनसनने अपने ऊपर ही लिया। रूससे ख़बरें आ रही थीं कि जहाँ नेविनसनने रूसी भूमिपर पैर रक्खा कि राजभक्त रूसी सैनिक उनके टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

नेविनसन लिखते हैं—"उस वक़्त अपने शरीरको टुकड़े-टुकड़े होनेसे बचानेके लिए मैंने दो तरकीबें कीं। अगर भोले-भाले रूसी लोगोंमें थोड़ी भी अक़ल होती तो वे इन तरकीबोंको फ़ौरन् ताड़ जाते। पहली तरकीब तो यह थी कि मैं उस रूसी सीमापर गया ही नहीं, जहाँ ज़ारके भक्त सिपाही बर्छी और भाले लिये मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं हैमबर्ग, कोपनहैगन, स्टाकहोम और हैलिंगफ़ोर्स होकर चुपचाप सेन्टपीटर्सबर्ग पहुँच गया। दूसरी तरकीब मैंने यह की कि घोषणा-पत्रको मैंने अपनी क़मीज़के साथ सिलवा लिया था और मज़ेकी बात यह थी कि इसके बाद भी कोई अधेड़ उम्रका बुर्जुआ नागरिक जितना मोटा लगता है, उससे ज्यादा मोटा भी मैं नहीं जँचता था!"

सन् १९०७में आप एक नवीन पत्र 'नेशन'में काम करने लगे। आपके पुराने मित्र मि० मैसिंगहम इस पत्रके सम्पादक नियुक्त हुए थे।

ब्रेल्सफोर्ड भी इसी पत्रमें काम करते थे। १९०७के अक्तूबरमें आप भारतवर्ष पधारे और यहाँके ख़ास-ख़ास नेताओंसे मिले। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा श्री अरविन्द घोषसे भी आप मिले थे। कालेज-स्क्वायरकी एक मीटिंगमें, जिसमें श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका भाषण हुआ था, आप शामिल हुए थे और उसमें आप बोले भी थे। इस कारण आपको ऐंग्लो इण्डियन पत्रोंके कटाक्ष सहने पड़े। आपने उसका ज़िक्र करते हुए लिखा है:—"ऐसा प्रतीत होता है कि ऐंग्लो-इण्डियन-पत्र गालियाँ कम्पोज़ कराके रख छोड़ते हैं और मौक़ा लगते ही झट उनका प्रयोग अपने विरोधियोंपर करने लगते हैं!" दूसरे दिन प्रातःकालके समय आप गवर्नरके यहाँ चाय पीनेके लिए गये। ख़ैरियत यह थी कि तबतक 'स्टेट्समैन' और 'इंगलिश मैन' तथा भारतीय पत्रोंके अंक गवर्नर साहबके पास पहुँचे नहीं थे। ज्योंही ये अंक पहुँचे, गवर्नर साहबका रुख़ बदल गया। शायद इस बातसे वे और भी नाराज़ हो गये कि नेविनसन उसी रातको अरविन्द घोषसे भी मिले थे और इसकी ख़बर ख़ुफ़िया पुलिसने उनके कानों तक पहुँचा दी थी। विलायत लौटकर आपने एक पुस्तक लिखी थी, जिसका नाम था, 'भारतवर्षमें नवीन भावना' ('The New Spirit in India')।

स्त्रियोंके मताधिकारके आन्दोलनमें जितना ज़बरदस्त हाथ नेविनसनका रहा, उतना शायद ही किसी दूसरे पत्रकारका रहा होगा। इसके लिए आपको तेरह वर्ष तक निरन्तर उद्योग करना पड़ा। देश भरमें व्याख्यान देने पड़े। जो जुलूस औरतोंके मताधिकार प्राप्त करनेके लिए निकलते थे, उनमें आप बराबर शामिल होते थे। एक मीटिंग औरतोंकी थी और इसमें लायड जार्ज बोलनेवाले थे। कुछ ऐसी औरतें भी इस मीटिंगमें शामिल हुई थीं, जो जेलख़ानेकी हवा खा आई थीं। जब लायड जार्ज व्याख्यान दे रहे थे, इन महिलाओंने अपने ऊपरके कपड़े उतार फेंके और जेलके कपड़ोंमें, जो नीचे थे, खड़ी

हो गई ! लायड जार्ज शान्तिपूर्वक भाषण देते रहे। इतनेमें एक जगहसे आवाज़ आई—'Deeds, not words'—'हमें ठोस काम चाहिए, शुष्क शब्द नहीं।' बस, फिर ऐसा होहल्ला मचा कि कुछ पूछिये नहीं। मीटिंगके प्रबन्धकोंने औरतोंको पकड़-पकड़कर निकाल बाहर फेंकना शुरू किया। भला, नेविनसन कैसे चुप रह सकते थे ! आप उठ खड़े हुए और बोले—"मि० लायड जार्ज, क्या इस बार फिर 'बेरहमी'से कार्रवाही की जायगी ?"

बात यह हुई थी कि अपनी एक पहली मीटिंगमें लायड जार्ज प्रबन्धकोंको आज्ञा दे चुके थे—"Fling them out ruthlessly."—"इन औरतोंको बेरहमीसे निकाल बाहर करो।" नेविनसन अपनी जगहपर खड़े-खड़े बार-बार यही सवाल दुहराते रहे। आख़िर लायड जार्जका ध्यान इधर आकर्षित हुआ और वे बोले—"Oh Mr. Nevinson, I wonder at a man of your education behaving like this"—"ओह मि० नेविनसन, आपकी तरहका सुशिक्षित आदमी भी ऐसी हरकत कर सकता है ?"

इस घटनाका ज़िक्र करते हुए नेविनसन लिखते हैं:—"शिक्षा हो या अशिक्षा, मैं तबतक चिल्लाता ही रहा, जबतक मीटिंगके प्रबन्धकोंने मुझे घेर नहीं लिया और पकड़कर हॉलके बाहर घसीटने न लगे। 'टेलीग्राफ'के रिपोर्टरने इस झगड़ेकी रिपोर्टमें लिखा था—'नेविनसनने कन्धेसे धक्का देकर एक प्रबन्धकको धराशायी कर दिया।' मुझे याद नहीं कि मैंने यह वीरतापूर्ण कार्य किया था या नहीं, पर मैं आशा करता हूँ कि यह बात सत्य थी। जब प्रबन्धक मुझे पकड़ रहे थे, मैं छुड़ाकर प्लैटफ़ार्मकी ओर भागा और वे लोग मेरे पीछे-पीछे ! इससे गुल-गपाड़ा और भी बढ़ गया। आख़िर उन्होंने मुझे पकड़ लिया और गर्दनपर ऐसे ज़ोरसे घूँसा जमाया कि मैं सुन्न पड़ गया, फिर बेहोशीमें मुझे घसीटकर बाहर फेंक दिया। मैं बिल्कुल हाँफ उठा था। ज्योंही

सम्हलकर बैठा तो देखता क्या हूँ कि कितनी ही औरते, जो मेरी तरह निकाल बाहर फेंकी गई थीं, वहाँ पड़ी हुई है। एक बात देखकर मुझे बड़ी हँसी आई कि ये औरतें उठकर पहला काम यह करती थीं कि सिरपर अपनी टोपी (अगर टोपी सही-सलामत बच रही तो !) ठीक तौरपर रखती थीं, चाहे उनके कितनी ही भयंकर चोट क्यो न लगी हो और चाहे उनके कपड़े कितने ही क्यों न फट गये हों !

"घर पहुंचते ही मुझे अपने सम्पादक ए० जी० गार्डनरका एक रुक्का मिला—'आप अपनी नौकरीसे मुअत्तिल किये जाते हैं।' मै साइकिलपर सम्पादक महोदयके पास पहुंचा और कहा—'मैंने यही किया, जो वहाँ उपस्थित किसी भी भले आदमीको करना चाहिए था।' अपने पक्षके समर्थनमें मैंने जो यह तर्क किया, वह ज़रा ग़ैरमौज़ूँ था, क्योंकि हमारे सम्पादक महोदय उस मीटिगमें लायड जार्जके पीछे ही विराजमान थे ! सम्पादकने कहा—'यह मामला डाइरेक्टर लोगोंके सामने उपस्थित किया जायगा, तबतक आप कबड्डी खेलिये।' जब ब्रेल्सफोर्ड प्रभृति हमारे साथी-संगियोंने यह बात सुनी तो उन्होंने धमकी दी कि अगर नेविनसनके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई की गई तो हम भी इस्तीफ़ा दे देंग।' आखिर मामला यों ही रफ़ा-दफ़ा कर दिया गया।"

पीछे जब जेलमें औरतोंको ज़बरदस्ती ठूँस-ठूँसकर खाना खिलाया गया तो आपने 'मेनचेस्टर गार्जियन'में इस अत्याचारका घोर विरोध किया। जब आपके पत्र 'डेली न्यूज़'में ही सम्पादकने एक अग्रलेख इस प्रथाके पक्षमें लिखा तो आपने अपनी नौकरीसे त्याग-पत्र दे दिया और आपके साथ ब्रेल्सफ़ोर्डने भी नौकरी छोड़ दी। नौकरीसे इस्तीफ़ा देदेनेसे नेविनसनको घोर आर्थिक संकटका सामना करना पड़ा, पर अपने सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिए नेविनसनने क्या-क्या नहीं किया ? वे ग़रीब पत्रकार ही, जिन्होंने कभी इस पथका अनुसरण किया

है, नेविनसनकी कठिनाइयोंकी कल्पना कर सकते हैं। फ़रवरी सन् १९१८में जब स्त्रियोंको मताधिकार मिल गया तब स्त्रियोंकी एक मीटिंग हुई (२८ अप्रैल, १९१८), जिसमें नेविनसनको धन्यवाद दिया गया और २८० पौण्डकी एक थैली भी भेंट की गई। उस दिनको नेविनसन अपने जीवनके स्मरणीय दिवसोंमें गिनते हैं। आपने लिखा है—"क्या ही अच्छा होता, यदि उस मनोहर उत्सवसे समाप्त होनेके बाद ही मेरे जीवनकी भी समाप्ति हो जाती! पर मृत्युके लिए उपयुक्त अवसर थोड़े ही आदमी चुन सकते हैं।"

नेविनसनने आयरलैण्डके निवासियोकी स्वतन्त्रताके लिए भी भरपूर उद्योग किया था और कई वर्ष उसमें लगा दिये थे। सर रोज़र केसमेण्टको, जिन्होंने युद्धके दिनोंमें ब्रिटेनके विरुद्ध बग़ावत की थी, फाँसीसे बचानेके लिए नेविनसनने बहुत प्रयत्न किया, पर इसमें वे सफल नहीं हुए। सुप्रसिद्ध देशभक्त मेकस्विनीकी लाश जब इंग्लैण्डसे आयरलैण्ड ले जाई गई थी तब आप भी उसके साथ थे।

नेविनसनके चरित्रमें यह ख़ूबी है कि आप अच्छे आदमियोंसे मित्रता स्थापित करनेमें सफल हुए हैं। सुप्रसिद्ध अराजकवादी प्रिंस क्रोपाटकिनसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनके कार्यमें आपने सहायता भी दी थी। एडवर्ड कारपेण्टरसे तो आपकी ख़ासी अच्छी दोस्ती थी। टाल्सटाय, रस्किन, कार्लाइल, सी० पी० स्काट, ए० ई० (जार्ज रसेल), माननीय मि० गोखले तथा अन्य प्रसिद्ध-प्रसिद्ध व्यक्तियोंके आपने दर्शन किये थे और उनसे परिचय प्राप्त किया था। स्थानाभावसे हम उन महापुरुषोंके संस्मरणोंका यहाँ ज़िक्र नहीं कर सकते, जिनका वर्णन नेविनसनने अपने ग्रन्थमें किया है।

ख़ास-ख़ास ऐतिहासिक मौक़ोंपर उपस्थित होना तो मानों नेविनसनके भाग्यमें ही बदा था। जिस दिन जर्मनीमें गत महायुद्धकी घोषणा हुई

थी, उस दिन आप बर्लिनमें मौजूद थे और ब्रिटिश राजदूतके साथ ही वहाँसे रवाना हुए थे। युद्धमें संवाददाता बनकर आप गये भी थे और अनेक स्थलोंपर आपने अपने जीवनको भी खतरेमें डाला था। सबसे अधिक ध्यान देने-योग्य बात यह है कि आपने मानव-समाज-सेवाके भावको देशभक्तिसे कहीं ऊँचा समझा है। नेविनसन इस बातको अच्छी तरह जानते हैं कि जब हमारा अपना देश ग़लत मार्गपर जा रहा हो, उस समय सबसे बड़ी देश-सेवा यही है कि स्वदेशकी उस भूलके विरुद्ध विद्रोह किया जाय।

नेविनसनका जीवन-चरित पढ़ते हुए एक बातका ख़्याल हमें बार-बार आया है, वह यह कि नेविनसन सरीखे निर्भीक पत्रकार किसी स्वाधीन देशमें ही जन्म ले सकते हैं। इस अभागे देशमें, जहाँ पत्रकारोंको हृदयहीन पूँजीपति मालिक, सदा सशंक विरोधी सरकार और गुणग्राहकता-विहीन जनताके बीचमें काम करना पड़ता हो, नेविनसनके गुणोंका विकसित होना सम्भव नहीं। नेविनसनका वीरतापूर्ण अक्खड़पन जितना चित्ताकर्षक है, उतनी ही उनकी सहज विनम्रता हृदयहारिणी है। नेविनसन महोदय अच्छे कवि भी हैं, पर आप लिखते है—"जब कभी मेरी कविताओंके विषयमें कोई आलोचना—प्रशंसा या निन्दा—करता है तो मेरे मनमें वही भाव उत्पन्न होते हैं, जो किसी परदेमें रहनेवाली स्त्रीके परदा उठा देनेपर।"

सबसे बड़ी प्रशंसा आप किस चीज़को समझते हैं, सो भी सुन लीजिए। सन् १९२६में आप पैलेस्टाइन गये हुए थे। उस समय वहीं आपकी इकहत्तरवीं वर्षगाँठ हुई। जेरूसलमकी तीर्थ-यात्रा करके मोटरके रास्ते बग़दादको रवाना हुए। पाँच मोटरें थीं, जिनमें दो मेल कम्पनीकी थीं। बीचमें पानी आ गया। दिन-रात आपको भीगते हुए सफ़र करना पड़ा। डाकसे लदी मोटरोंके पहिये कीचड़में घुस जाते थे। उतरकर उन्हें निकालानेमें नेविनसन सत्तर वर्षके होते हुए भी ख़ूब मदद देते थे। जब

आप बग़दाद पहुंचे तो सारा शरीर कीचड़से लथपथ था और ऐसा प्रतीत होता था मानों आप कीचड़की मूर्ति बन गये हों ! मोटरोंके पाँच नवयुवक ड्राइवरोंने, जो अंगरेज़ थे और युद्धके बाद यहीं बस गये थे, अपनी मेल कम्पनीके हेडक्वार्टरपर जाकर कहा--"Look here! Whatever happens, we must keep Old Bill as a digger on the Staff."—'देखिये साहब, चाहे कुछ हो, हमें हर हालतमें इस बुड्ढेको अपने यहाँ खुदाईके कामपर नौकर रख ही लेना चाहिए।' इसपर टिप्पणी करते हुए नेविनसनने लिखा है--'अपने लम्बे और विविध अनुभवपूर्ण जीवनमें मुझे जो तारीफ़ें मिली है, उनमें इस प्रशंसाको मैं सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ।'

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरका यह कथन सर्वथा सत्य है कि जबतक इंग्लैण्डमें नेविनसन सरीखे व्यक्ति विद्यमान हैं तबतक उसकी आत्मा सजीव है। एक क्षुद्र पत्रकारकी हैसियतसे हम भी नेविनसनको अपने एक कवि-बन्धुके इन शब्दोंके साथ प्रणाम करते हैं—

> **"न होने देते हरण कदापि स्वत्व दीनों के पूज्य महान,**
> **सहन होता है तनिक न तुम्हें देवियों का रंचक अपमान;**
> **कहीं यदि होता है अन्याय, त्रसित होती मानव सन्तान,**
> **अड़ा देते हो अपनी देह, लड़ा देते हो अपनी जान।"**

: १५ :

आचार्यवर गीडीज़

[आज जाति-जाति, देश-देश और मानव-मानवके बीच भेदकी जो गहरी खाई विद्यमान है उसे पाटकर विश्वमें एकताका सन्देश फैलानेवालों को हम 'सेतुबन्धके इंजीनियर' (Bridge Builder) कह सकते हैं और आचार्य गीडीज उन्हीं इंजीनियरोंमें अग्रगन्य थे।

सन् १९१३में नागरिकता और नगर-निर्माणकी जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी वेलजियममें हुई थी उसके मूलमें आचार्य गीडीजकी यही ऐक्य भावना थी। उन्होंने उक्त प्रदर्शिनीका सामान भारतवर्षको जहाज द्वारा भिजवाया था, पर दुर्भाग्यवश जर्मन जहाज ऐमडन द्वारा वह समुद्रमें डुबा दिया गया। पर प्रोफ़ेसर गीडीजने हिम्मत नहीं हारी और अपने मित्रोंकी सहायतासे फिरसे उसी प्रकारकी प्रदर्शिनी तैयार की और वह भारतवर्ष भेजी गई। यह बात उल्लेखनीय है कि भारतवर्षमें नगर निर्माणकी वैज्ञानिक आयोजनाओंका प्रारम्भ इसी प्रदर्शिनीके बादसे हुआ है। उनकी विश्वऐक्यकी स्कीमका आधार घर था और घरों, मुहल्लों और नगरोंके संघसे प्रारम्भ करके वे उसे जनपदों और प्रान्तों तक ले जाना चाहते थे और तत्पश्चात् उसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय रूप देनेके पक्षपाती थे। वे जनताका राष्ट्र-संघ चाहते थे, न कि सरकारोंका।

जनपदीय जाँच और संगठनके वे प्रवर्तक तथा प्रबल पक्षपातीं थे। वे कहते थे, "जनपदीय होनेके मानी यह थोड़े ही हैं कि जहाँ आपका जन्म हुआ हो, जिन्दगी-भर आप वहाँ रहें और वहीं मरें। उसका अर्थ यह

है कि अपने जन्मस्थान तथा आसपासका आप विधिवत् अध्ययन कर, पूरे-पूरे विवरणके साथ तथा सभी दृष्टिकोणोंसे। कलाको पुनर्जीवन प्रदान करनेका यही उपाय है।"

जो महानुभाव आज हिन्दी-जगत्के जनपदीय आन्दोलनका विरोध कर रहे हैं उन्हें आचार्य गीडीज़के जीवन-चरितका अध्ययन करना चाहिए। अपने ऐडिनबराके Outlook Tower की तरहका एक 'दूरदर्शी बुर्ज' बम्बईके लिए भी बनाना चाहते थे जिसमें ये विभाग रखनेका उनका विचार था: बम्बई नगर, पश्चिमी भारत, भारत, एशिया, यूरेशिया और अखिल जगत्। इन सबके निरन्तर प्रगतिशील सम्बन्धोंको जनताके सामने प्रकट करना ही उनका लक्ष्य था।

जनपदीय अन्दोलनोंके विरोधियोंका कथन है कि इससे जनपदीय बोलियाँ जागृत होकर उठ बैठेंगी और फिर इनसे खड़ी बोलीको ख़तरा होगा। इस शंकाके उत्तरमें स्वयं आचार्य गीडीज़के निम्नलिखित शब्द उद्धृत करना पर्याप्त है:

"बिलाशक ज़िन्दा रहनेमें ख़तरा है। जीवित रहना निस्सन्देह भयंकर है। सबसे अधिक सुरक्षित स्थान तो क़ब्र है, जहाँ निर्भयतापूर्वक लेटा जा सकता है।"

आचार्य गीडीज़का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। उनका सम्पूर्ण जीवन उनके व्यापक दृष्टिकोणका प्रमाण था। विद्यार्थी अवस्थामें वे यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंमें शिक्षा पानेके लिये घूमे थे और तत्पश्चात् भारतवर्षमें तथा पूर्वीय देशोंमें उन्होंने दस वर्ष व्यतीत किये थे। अमरीका भी अनेक बार गये थे।

उनका विस्तृत जीवनचरित The Interpreter Geddes (By Amelia Defries) लन्दनसे प्रकाशित हुआ था। उसकी भूमिका कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने लिखी थी। उनका एक अत्युत्तम स्केच ए० जी० गार्डिनर Pillars of Society नामक पुस्तकमें दिया

है। नवम्बर सन् १९३६के 'माडर्न रिव्यू'में उनके सुपुत्र आर्थर गीडीज़का लेख भी पठनीय है। साथके रेखा-चित्रका आधार यही तीन चीज़ें हैं।]

घर बैठे तीर्थराजका आगमन। इन्दौरका हिन्दी साहित्य-सम्मेलन। महात्मा गांधीजी तथा प्रोफ़ेसर गीडीज़के संयुक्त दर्शन। यह शुभ घटना सन् १९१८की है। सम्मेलनके साथ पत्रों तथा पुस्तकोंकी एक प्रदर्शिनी भी हुई थी और साहित्य-विभागके मन्त्री होनेके नाते उसका प्रबन्ध हमारे हाथोंमें ही था। जिस दिन प्रदर्शिनीका उद्घाटन हुआ था उसी दिन उस भवनमें हमने दो ऋषियोंके--भविष्यके दो निर्माताओंके--एक साथ ही दर्शन किये। प्रोफ़ेसर गीडीज़ एक विस्तृत प्लेटफ़ार्मपर टँगे हुए नक़शोंको बड़े उत्साह-पूर्वक महात्माजीको दिखला रहे थे। वे चित्र सम्भवतः इन्दौरके नव-निर्माणके थे। उन दोनों द्रष्टाओंके उस स्मरणीय मिलनका दृश्य अब भी हमारी आँखोंके सामने है।

महात्मा गांधीजी तथा प्रोफ़ेसर गीडीज़ दोनों नामोंको एक साथ देखकर भले ही किसीको आश्चर्य हो; पर बात वास्तवमें यह है कि भावी संसारके निर्माणमें इन दोनों महापुरुषोंका उल्लेखयोग्य भाग होगा। यदि निकटसे देखा जाय तो प्रोफ़ेसर गीडीज़ भी सच्चे महात्मा थे और यदि कभी यह जगत रहने-लायक बनेगा, कभी इस रेगिस्तानमें उपवन लगेंगे, स्वार्थमय बालूकी जगह आदर्शवादिताकी हरियाली दीख पड़ेगी तो इस परिवर्त्तनके लिए हम प्रोफ़ेसर गीडीज़के उतने ही ऋणी होंगे जितने अन्य किसी महापुरुषके। यदि हम कहीं शिक्षा-विभागके अधिकारी होते तो उच्च कक्षाओंमें संसारके सर्वश्रेष्ठ महापुरुषोंके जीवनचरित पाठ्य पुस्तकोंके रूपमें अवश्य रखते। जिन महापुरुषोंके द्वारा भावी संसारकी रचना होगी उन स्वप्नदर्शी तथा व्यवहारकुशल व्यक्तियोंके वृत्तान्त पढ़ानेके बजाय हम लोग अपने विद्यार्थियोंको बिल्कुल निरर्थक और ऊलजलूल किताबें पढ़ाकर उनका और अपना वक्त बर्बाद कर रहे हैं। हमारे विश्व-विद्यालयोंकी ऊसर भूमिमें करील-रूपी प्रोफ़ेसर दृष्टिगोचर

होते हैं, जिनका व्यक्तित्व टेंटीकी तरह टुटिहर (क्षुद्र) और जिनका ज्ञान बालूकी तरह शुष्क होता है। हमारे विश्वविद्यालयोंने एक नवीन जातिका निर्माण कर दिया है, जो साधारण जनता तथा उसके कार्य-कर्त्ताओंको अछूत समझकर अलग ही अपना फ़ालतू जीवन व्यतीत करती है। प्रोफ़ेसर गीडीज़ उस प्रकारके प्रोफ़ेसर नहीं थे। वास्तवमें उनका दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालयोंके कुलपतियोंकी तरह था और उनका जीवन भी वैसा ही निस्स्वार्थ था। योग्य-से-योग्य शिष्योंके निर्माणमें ही वे अपना गौरव मानते थे और इस प्रकार आधुनिक युगमें आचार्य-शिष्य-परम्पराको उन्होंने हमारी आँखोंके सामने उपस्थित कर दिया था। ज्ञान-विज्ञानकी कितनी ही शाखाओंके वे विशेषज्ञ थे और आज उन शाखाओंके आचार्योंमें जिन लोगोंकी गणना होती है वे या तो गुरुवर गीडीज़के शिष्य रह चुके हैं या उनके विचारोंसे पूर्णरूपसे प्रभावित। वनस्पति शास्त्रके वे माने-हुए आचार्य थे, नगर-निर्माण-कलाके प्रथम प्रवर्तक, गार्डन सिटीज़ (उद्यान नगर)की कल्पना उन्हींके उर्वर मस्तिष्क द्वारा प्रसूत हुई थी, जनपदीय भूगोलकी शिक्षाका प्रारम्भ उन्हींके द्वारा हुआ था, जीव-विज्ञान, प्रजनन-शास्त्र और सैक्स (यौन-शास्त्र) आदि विषयोंपर उनके ग्रन्थ महत्वपूर्ण माने जाते हैं। समाज-शास्त्रके तो वे विश्व-विख्यात आचार्य थे ही।

सबसे अधिक उल्लेखनीय बात आचार्य गीडीज़के विषयमें यह थी कि वे शुष्क ज्ञानके घोर विरोधी थे। संचित ज्ञानको जनताकी सेवामें अर्पित करना, यही उनके जीवनका उद्देश्य था। घूरेपर फूल उगा देना, दलदलको उपवनके रूपमें परिवर्तित कर देना और गन्दी गलियोंको स्वस्थ बीथियोंमें बदल देना, उस व्यवहार-कुशल स्वप्नदर्शी वैज्ञानिकके बाएँ हाथका खेल था!

प्रोफ़ेसर गीडीज़का जन्म सन् १८५३में स्काटलैण्डमें हुआ था। उनके पिता रायल हाइलैन्डर सेनामें कप्तान थे और वे अपनी सच्चाई,

उदारता, भलमनसाहत तथा दयालु स्वभावके लिए चारों ओर विख्यात थे। उन्होंने ख़ासी अच्छी उम्र पाई थी। परिश्रम-शीलता प्रोफ़ेसर गीडीज़को अपने पिताजीसे पैतृक सम्पत्तिके रूपमें मिली थी। सत्तर-बहत्तर वर्षकी उम्रमें वे जितना काम कर सकते थे उतना बीस-पच्चीस वर्षके युवकोंके लिए भी कठिन है। एक बार आप कहीं भाषण दे चुके थे कि श्रोताओंमेंसे किसीने मिस डेफ्रीस से, जिन्होंने आचार्यकी जीवनी लिखी है, कहा :

"या तो प्रोफ़ेसर गीडीज़का ज्ञान बिल्कुल उथला है या फिर उन्होंने रटनेकी शक्तिशाली मशीनका आविष्कार कर लिया है। कोई आदमी इतने भिन्न-भिन्न विषयोंपर इतना अधिक कैसे जान सकता है ?"

जब यह बात प्रोफेसर साहबसे कही गई तो वे बोले, "तुम समझती हो कि मै कोई प्रतिभाशाली महापुरुष हूँ। जनाब, बिल्कुल नहीं। बात असली यह है कि मै अधिकांश आदमियोंसे अधिक मेहनत कर सकता हूँ और शरीरसे हट्टा-कट्टा तन्दुरुस्त हूँ। गोवंशमें जैसे बूढ़ा किन्तु सबल साँड़ हुआ करता है वैसे ही मै भी एक शक्तिशाली वंशका वृषभ हूँ। हाँ, और कुछ नहीं।"

सर चिमनलाल सीतलवाडने, जो उन दिनों बम्बई विश्वविद्यालयके वाइसचान्सलर थे जब गीडीज़ साहब बम्बईमें समाज-शास्त्रके अध्यापक थे, उनके विषयमें लिखा था :

"उनकी पोशाक, रंग-ढंग और आत्म-विस्मृतिको देखकर कोई इस बातका अन्दाज़ भी नहीं कर सकता कि प्रोफ़ेसर गीडीज़ कितने गम्भीर विद्वान् और कितने क़ाबिल आदमी हैं। लेकिन यदि आपको उनको निकटसे जाननेका सौभाग्य प्राप्त हो तो आप यह देखकर आश्चर्य करेंगे कि इस छोटेसे मस्तिष्कमें इतना विशाल और इतने भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान कहाँसे समा गया ! अन्यत्र ऐसी गम्भीर विद्वता दुर्लभ ही समझिये।

साथ ही उनमें सहृदयता और हास्यरसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति भी अद्भुत मात्रामें विद्यमान है और उनकी परिश्रमशीलताका क्या कहना! उसे देखकर ताज्जुब होता है। मैंने बम्बई विश्व-विद्यालयमें प्रातःकालसे रात तक काम करते हुए उन्हें देखा है और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि इस उम्रपर वे इतना काम कर कैसे सकते हैं।"

आचार्य गीडीज़ में शिष्य-भावना ख़ूब विद्यमान थी और वे अपनी युवावस्थामें यूरोपके भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयोंमें ज्ञान-संचय करते हुए घूमते फिरे थे। उन्होंने अपना यह नियम बना लिया था कि वर्षभरमें वे तीन महीनेसे अधिक अध्यापन-कार्य नहीं करेंगे। शेष नौ महीने वे इधर-से-उधर घूमनेमें, स्थान-स्थानसे ज्ञान तथा अनुभवका संचय करनेमें, बिताते थे। यदि आजसे सैकड़ों वर्ष पहले उनका जन्म भारतमें हुआ होता तो वे नालन्दा और तक्षशिलाकी शिक्षा समाप्त कर आचार्य कुमारजीवके साथ चीनकी पैदल यात्रा करते। अर्थ-संचयकी ओर उनका ध्यान बिल्कुल ही नही था और यह बड़े सौभाग्यकी बात थी कि उन्हें बड़ी सन्तोषशील पत्नी मिली थीं, जिन्होंने अपने संन्यासी वृत्तिवाले पतिदेवकी सनकोंपर कभी उद्विग्नता प्रकट नहीं की। यही नही, बल्कि पतिदेवके शिष्योंको पुत्र-पुत्रीवत् मानकर, उनकी भी सहायता करती रहीं।

आज हमारे विश्वविद्यालय जैसे निर्जीव बने हुए हैं उन्हें देखकर प्रोफेसर गीडीज़को हार्दिक वेदना होती थी। वे चाहते थे कि ये यूनीवर्सिटियाँ जिस जनपद या क्षेत्रमें विद्यमान हों वहाँके जीवनमें उनका पूरा-पूरा प्रवेश हो, बल्कि यों कहिए कि उक्त जनपद या क्षेत्रकी वे जान बन जावें, उनकी आत्माका रूप धारण करलें, विश्वविद्यालयोंके साधारण जनताके सम्पर्कमें आनेका जो आन्दोलन हुआ है उसके सूत्रपात करनेवालोंमें आचार्य गीडीज़ अग्रगन्य थे।

जनपदीय जाँच तथा जनपदीय संगठनकी भावना उन्हींके मस्तिष्ककी

उपज थी, वही उनके पिता थे। उनके कार्यक्षेत्रका केन्द्र यदि किसी क्षुद्र नगरका मुहल्ला या गली थी तो उसकी परिधिमें सम्पूर्ण संसार आ जाता था। अपना घर, गली, नगर, जनपद प्रान्त तथा देश और फिर संसार और इन सबकी सेवाओंका सामंजस्यपूर्ण समन्वय, यही आचार्य गीडीज़के जीवनकी फिलासफ़ी थी, यही उनका दर्शनशास्त्र था।

प्रोफ़ेसर गीडीज़के शिक्षा-सम्बन्धी विचार बिल्कुल क्रान्तिकारी थे। शिक्षाका अर्थ वे बतलाते थे आसपासकी स्थितिके प्रति जागरुकता। अपने लड़कोंको भी उन्होंने इसी पद्धतिसे पढ़ाया था। हृदय, मस्तिष्क और हाथोंकी शिक्षाको ही वे वास्तविक शिक्षा मानते थे। उनकी शिक्षापद्धतिका मूल सूत्र था : "Look and see, find out and do" "देखो-भालो, पता लगाओ और काम करो।"

यदि उनके उपदेशोंका सार एक वाक्यमें लिखा जा सके तो वह यह होगा :

"Do something. Don't write about it. Be a citizen first, a scholar, if time permits."

अर्थात्—"कुछ काम करो। उसके बारेमें लिखो मत। पहले नागरिक बनो, उसके बाद यदि वक़्त बचे तो विद्वान् बन सकते हो।"

उनके लड़के स्वर्गीय एलेस डेयर गीडीज़के विषयमें फ़ौजी अधिकारियोंने लिखा था—"तमाम ब्रिटिश फ़ौजमें उसकी बराबरीका अन्वेषक (Observer) कोई नहीं था।" एलेस डेयर युद्धमें मारे गये थे। उन्होंने ग्रामीण विद्यालयमें, पब्लिक स्कूलमें और विश्वविद्यालयमें शिक्षा पाई थी, कलाके विद्यार्थी रहे थे, उद्यानमें मालीका काम उन्होंने सीखा था, बाज़ारमें साग-तरकारी और फल-फलैरी उन्होंने बेची थी, गाय-बैल चराये थे, हल हाँके थे, जहाज़पर रसोई बनानेका काम किया था, आर्कटिक-की यात्रामें नक़शे बनानेका काम किया था। वे अच्छे ऐक्टर थे और नाच-गा भी सकते थे। जहाज़की नौकरी करते हुए पैसे बचाकर उन्होंने

एक साइकिल ख़रीदी थी और उसपर सवार होकर इंगलैण्ड, नीदरलैण्ड तथा फ्रांसकी यात्रा की थी। फ्रेंच तथा जर्मन तो वे धाराप्रवाह बोल सकते थे। फ्लेमिश भाषाके अच्छे जानकार थे और गैलिकमें भी आपकी गति थी। प्रोफ़ेसर गीडीज़के मतानुसार युवकोंको किस प्रकार शिक्षा दी जानी चाहिए, इसके उदाहरण आपके उक्त सुपुत्र थे।

प्रोफ़ेसर गीडीज़ ध्यान और चिन्तनको बहुत महत्व देते थे। अगर रातको दो-तीन या चार बजे नीद खुल जाती तो सवेरे सात या साढ़े सात बजे तक, जबकि कार्य प्रारम्भ करते थे, वे चिन्तन किया करते थे। प्रातःकालके ब्राह्म मुहूर्तोंको वे कभी नष्ट नहीं होने देते थे। जिस प्रकार कोई वीणा बजानेवाला प्रातःकालमें अपना अभ्यास करता है उसी प्रकार वे भी मस्तिष्कका यह अभ्यास किया करते थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि ठोस काम करनेके लिए गम्भीर चिन्तनकी अत्यन्त आवश्यकता है और वह एकान्तमें ही किया जा सकता है। वे कीर्तिलोलुप बिल्कुल नहीं थे और विज्ञापनकी दुनियासे दूर भागनेवालोंमें से थे। एक कार्यके समाप्त होनेके बाद दूसरेको प्रारम्भ करनेके लिए वे उत्सुक रहते थे। उन्होंने एक बार कहा था :

"जिस प्रकार बच्चोंको एक खेल खेलनेके बाद दूसरा खेल खेलनेमें मज़ा आता है उसी प्रकार हम लोगोंकी रुचि नवीन अनुसन्धान (नवीन कार्य)के प्रति रहती है। एकान्त कोठरीका, तपोवनका, स्वाध्याय-मन्दिर और प्रयोगशालाका, यही तो उपयोग है। लन्दनवाले राजनीति, पूंजी, मज़दूर इत्यादिके विषयमें बहुत कुछ बकवाद तो किया करते हैं, लेकिन पार्लामेन्टकी तमाम कार्रवाई प्रायः निरर्थक और निष्फल होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि पार्लामेन्टके मेम्बरोंके पास कोई एकान्त स्थल या स्वाध्यायभवन नहीं है, जहाँ शान्तिपूर्वक बैठकर वे कुछ चिन्तन कर सकें, कोई नवीन विचार जनताके सम्मुख ला सकें। लेकिन अब वक़्त आ पहुँचा है जब पुराने ज़मानेके मठोंकी तरहके मठ समाजविज्ञानके साधकोंके

लिए बनाने होंगे जहाँपर बैठकर वे कुछ साधना, कुछ तपस्या कर सकें। सामाजिक प्रश्नोंको हल करनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।"

इस प्रकार एकान्तमें बैठकर जो विचार वे करते थे उनको वे लिख लेते थे और उनके विचारोंके ढेर-के-ढेर इकट्ठे हो गये थे, जिनसे बीसियों सन्दूक़चे भरे पड़े थे ! विश्वविद्यालयोंके विषयमें वे एक पुस्तक लिखना चाहते थे और उसके बारेमें चालीस वर्षसे मसाला इकट्ठा कर रहे थे। विचारोंको ही वे अपनी सबसे बड़ी पूंजी मानते थे, पर उनको पेटेन्ट करानेके (उनपर अपना सर्वाधिकार रक्षित करनेके) वे सर्वथा विरोधी थे। विचारोंको बेचना वे अपनी सन्तान बेचनेके समान ही पापमय कर्म समझते थे। उनका यह कहना था कि यदि विचारोंको विधिवत् विषयानुसार छाँटकर रक्खा जाय, पत्रोंके कटिंग काट-काटकर उन्हें ढंगके साथ चिपका दिया जाय और यह सब मसाला किसी एक स्थानपर सुरक्षित रहे तो लेखकों, शिक्षकों, व्याख्यान दाताओंके लिए वह संग्रहालय बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। क्या ही अच्छा हो यदि हिन्दी जगत्की कोई संस्था प्रोफ़ेसर गीडीज़के इस विचारको कार्यरूपमें परिणत कर दे।

प्रोफ़ेसर गीडीज़के बातचीत करनेका ढंग अद्भुत था। मेंडककी तरह एक विषयसे दूसरेपर कूदना उनके लिए बड़ा आसान था, पर इससे उनके श्रोता लोग बड़े चक्करमें पड़ जाते थे। यद्यपि वे कोई अप्रासंगिक बात नहीं करते थे और जिन विषयोंपर उनका प्रवचन होता था वे मूलमें परस्पर सम्बद्ध भी होते थे, पर अल्पज्ञ श्रोताओंके लिए यह दिमाग़ी कसरत थकानेवाली हो जाती थी। दूसरोंको स्फूर्ति और प्रोत्साहन देना तो मानों उन्हींके हिस्सेमें आया था। एक लेखकने लिखा था, "गीडीज़के कार्यका प्रभाव सबसे अधिक इस बातमें है कि उन्होंने न जाने कितने व्यक्तियोंको कार्य करनेके लिए प्रोत्साहित किया है। उनसे पहले पहल बातचीत करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों आकाशसे वज्रपात हुआ ! उनका सम्भाषण पहले तो धक्का देता है और फिर उनके धाराप्रवाह विचारोंमें इतनी तेज़ी

और ताजगी होती है कि सुननेवाला बह जाता है। आपके विचारोंको--आपके सिद्धान्तोंको---वे आपकी आँखोंके सामने ही खण्ड-खण्ड कर डालेंगे और फिर उनपर अपने विचारोंका खोल चढ़ाकर इस ढंगसे उपस्थित करेंगे कि वे बिल्कुल नवीन सिद्धान्त प्रतीत होने लगें। अपने विचारोंकी इस कायापलटसे स्वयं आपको आश्चर्य हुए बिना न रहेगा।"

उनकी जीवनचरित लेखिकाने उनके कई प्रवचनोंका सारांश उद्धृत किया है, जिससे उनकी अद्भुत सम्भाषण-शक्तिका अनुमान हो सकता है।

एक बार बातचीत करते हुए उन्होंने कहा था :

"हमारी वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति बड़ी खर्चीली है। यह पद्धति विद्यार्थियोकी स्वतन्त्र भावनाओंको कुचल डालती है, विचारोंको दबोच देती है और उसके परिणाम होते हैं प्रमाद, रोग तथा मृत्यु। लोग खेती करते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि हम विचारोंकी खेती करें, विचारोंको मौक़ा दें। छोटे-छोटे बच्चोंका मस्तिष्क विचारोंसे परिपूर्ण रहता है। उगनेका यदि हम कुशल मालीकी तरह यथोचित काट-छाँट करके उनको अवांछनीय दिशामें जानेसे रोकें, पर साथ ही स्वाधीन विचार-प्रवृतिको बराबर प्रोत्साहन देते रहें तो शिक्षा-जगत्में कैसी क्रान्ति हो जाय!"

यह सुनकर लेखिकाने कहा, "सुना है कि अब्राहम लिंकनको कुछ शिक्षा नहीं मिली थी।"

इसपर प्रोफ़ेसर गीडीज़ बोले, "यह बिल्कुल बेतुकी बात है। लिंकनने जीवनके विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त की थी। कार्यके स्कूलमें, स्थानके मदरसेमें, सर्वसाधारण-रूपी पाठशालामें लिंकनने देखा था कि स्थानका प्रभाव कार्यपर पड़ता है, सर्वसाधारणपर कार्य तथा स्थान दोनोंका प्रभाव पड़ता है और सर्वसाधारणके द्वारा स्थान तथा कार्य दोनों ही प्रभावित होते हैं। संभवत: लिंकनने कमलोंको रामभरोसे पुष्पित होते देखा था। कौन कहता है कि लिंकनने शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। ग़लत बात है। कार्य करते-करते लिंकनने बहुत कुछ सीखा था। अपने कर्तव्यका

उन्होंने विधिवत् पालन किया था, अपना फ़र्ज़ बड़ी ख़ूबीसे निबाहा था। जानती हो, सफलता किसे कहते हैं! अपने प्रिय कार्यको यथासम्भव **अनुकूल परिस्थितिमें करना और इस प्रकार अपने जीवनको काव्य बना लेना।**"

प्रोफ़ेसर गीडीज़ कट्टर आदमी नहीं थे और न वे अपने विचारोंको दूसरोंपर लादना चाहते थे। उन्होंने एक बार कहा था :

"अपने विचारोंको दूसरोंपर जबरदस्ती मत लादो। स्थानीय परिस्थितियों और स्थानीय विचारोंका ख़्याल रखो। सब लोगोंकी आत्माओंको अपने बनाये हुए बक्सों या सन्दूक़ोंमें बन्द मत करो। **जहाँ तुम सबसे अधिक प्रभावशाली ढंगपर काम कर सको, वहीं करो।** कार्यकर्ताओंको मेरी यही सलाह है।"

निस्सन्देह भिन्न-भिन्न स्थानोंमें अपनी रुचिका कार्य करते हुए उन्होंने अपने जीवनको काव्य बना लिया था। कभी वे स्काटलैण्डमें एडिनबराके Outlook tower का निर्माण करते थे, तो कभी पैलिस्टाइनमें वहाँके विश्वविद्यालयका ढाँचा तैयार करते थे, कभी बम्बई-विश्वविद्यालयमें समाज-शास्त्रका अध्यापन करते थे तो कभी इन्दौरके नव-निर्माणपर ग्रन्थ तैयार करते थे! आज अमरीकामें भाषण दे रहे हैं तो कल फ्रांसमें एक अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालयकी नींव डाल रहे हैं। कभी शान्तिनिकेतनके नक़्शेमें लगे हुए हैं तो कभी उस्मानिया यूनीवर्सिटीके निर्माण-चित्रमें व्यस्त हैं। आज किसी वैज्ञानिकके साथ कोई ग्रन्थ लिख रहे हैं तो कल अपने किसी शिष्यको किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थके लिए प्रेरणा दे रहे हैं। एक जगह जमकर वे नहीं बैठते थे। जहाँ-जहाँ उत्तम विचार मिलते थे वहाँ-वहाँसे वे उन्हें निस्संकोच ग्रहण कर लेते थे। वे विचारोंकी चोरीको चोरी नहीं मानते थे। मज़ाक़-मज़ाक़में वे कहा करते थे, "मेरा पेशा चोरी है। अपने साथियोंके विचारोंको मैं उड़ा लिया करता हूँ। कभी इस विश्वविद्यालयसे कोई विचार लेता हूँ तो कभी उससे कोई दूसरा।

दिल्लगी यह है कि मेरे साथी-संगियोंको इस चोरीका पता भी नहीं लग पाता। विचारोंपर किसीकी बपौती थोड़े ही है। उनपर तो सबका अधिकार है। असली साम्यवाद यही है।"

यद्यपि वे जनपदीय संगठनके प्रवर्तक थे तथापि उनका दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक था। आचार्य जगदीशचन्द्र वसुका उन्होंने जीवन-चरित लिखा था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उनके जीवनचरितकी भूमिका लिखते हुए लिखा था :

"जब भारतवर्षमें मेरा परिचय प्रोफ़ेसर पैट्रिक गीडीज़से हुआ तो मुझे सबसे अधिक आकर्षित उनकी वैज्ञानिक सफलताओंने नहीं किया, बल्कि उनकी व्यक्तित्वकी सम्पूर्णताने, क्योंकि उनका व्यक्तित्व उनके विज्ञानसे कहीं ऊँचा था। जिस किसी विषयका उन्होंने अध्ययन किया वह उनकी मानवताके साथ सजीव रूपसे घुल-मिल गया। प्रोफ़ेसर गीडीज़में वैज्ञानिकोंकी निश्चयात्मक बुद्धि है और ऋषियों या सिद्धों जैसी दूरदर्शिता और साथ ही कलाकारोंकी वह शक्ति, जिससे वे अपने विचारोंको साक्षात्-रूप भी दे सकते हैं। वे मानव-समाजके प्रेमी हैं और उसीसे उन्हे मानव सत्यको पहचाननेकी अन्तर्दृष्टि मिली है और साथ ही वह कल्पना-शक्ति भी प्राप्त हुई है जिसके द्वारा वे जीवनके कृत्रिम रूपोंको ही नहीं, उसके असीम रहस्योंको भी वास्तविक रूपमें देख सकते हैं।"

प्रोफ़ेसर गीडीज़ इस बातको भलीभाँति समझ गये थे कि संसारका प्रत्येक प्राणी अपनी विशेषता रखता है, अपना व्यक्तित्व रखता है। वे सबको यथोचित अवसर और सुविधाएँ प्रदान करनेके पक्षमें थे। प्रत्येक जनपद उनके लिए अलग स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता था। ज्ञान और विज्ञानकी समस्त शाखाओंको एक ही स्थानमें केन्द्रित करनेके वे प्रबल विरोधी थे। यदि वे भारतवर्षमें शिक्षा-विभागके अधिकारी बना दिये जाते तो न जाने कतने प्रकारके विश्वविद्यालय वे स्थापित कर देते। रूसी लेखक चेखवने लिखा था, "यदि प्रत्येक मनुष्य उस भूमिखंडको, ज़मीनके

उस टुकड़ेको, जो उसे मिला हुआ है सुन्दर बना दे तो दुनिया कितनी मनोहर बन जाय।" प्रोफ़ेसर गीडीज़के जीवनका यही मूल-मन्त्र था।

केन्द्रीय-शासन तथा स्वेच्छाचारके मुकाबलेमें वे अपना जनपदीय संगठनका सिद्धान्त प्रतिष्ठित करते थे और राजनैतिक, शिक्षा-सम्बन्धी तथा सांस्कृतिक झगड़ोंका हल वे जनपदीय संगठनमें ही देखते थे।

यहाँ उनके सिद्धान्तोंकी विवेचना करनेके लिए स्थान नहीं है, पर इतना तो अवश्य निश्चित ही है कि भावी संसारके निर्माणमें उनका भी गौरवपूर्ण हिस्सा रहेगा।

प्रयागमें गंगा-जमुनाके संगमपर हमने स्नान किये हैं और ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं जमड़ार नदीके तटपर। जमड़ार मिलती है जामनेरसे, जामनेरका बेतवासे मिलन हुआ है और बेतवा जमनाकी सहायक नदी है। इस प्रकार संगममें जमड़ारका भी जल विद्यमान है। जिन विभिन्न विचार-धाराओंके मिलनसे मानव-समाजका संगम होगा वे न सिर्फ़ मार्क्स-की होंगी, न केवल महात्माजीकी। वे असंख्य मस्तिष्कोंसे उद्भूत होंगी और उस संगममें स्काटलैण्डके उस तपस्वीकी प्रबल धारा भी होगी जो उस दिन इन्दौरमें महात्मा गांधीको नगर-निर्माणके नक़्शे दिखला रहा था। दो स्वप्न-दर्शियोंका वह मिलन—उनके वे संयुक्त दर्शन! खेद है कि तब हमारे पास केमरा नहीं था; पर हर्ष है कि नयनोंमें वह छवि अब भी विद्यमान है।

: १६ :

फक्कड़ थोरो

स्वाध्यायके विषयमें हमने एक नियम बना लिया है, वह यह कि केवल उन्हीं ग्रन्थकारोंकी रचनाएँ हम बार-बार पढ़ते है, जो हमें अत्यन्त प्रिय हैं और उनकी संख्यामें वृद्धि हम यथासम्भव कम ही करते है। हमारे प्रिय ग्रन्थकारोंमें तीन रूसी है--(१) प्रिंस क्रोपाटकिन, (२) तुर्गनेव, (३) टाल्सटाय; दो अमेरिकन--(४) एमर्सन, (५) थोरो; दो अंगरेज़--(६) एडवर्ड कार्पेन्टर, (७) ए० जी० गार्डिनर; और एक फरांसीसी--(८) रोमाँ रोलाँ। इनमें भी नं० १ और नं० ४ हमें सबसे अधिक प्रिय है और यदि हमें किसी एकान्त स्थानमें केवल इन दो ग्रन्थकारोंकी पुस्तकोंके साथ रहनका सौभाग्य प्राप्त हो तो हमें वह एकान्त अखरेगा नहीं। ए० जी० गार्डिनर हमें इसलिए पसन्द है कि वे छोटे-छोटे निबन्ध तथा स्केच लिखनेमें कुशल है। टाल्सटाय और रोमाँ रोलाँसे हमारा प्रेम नवीन ही है। पर यदि हमसे कोई पूछे कि यात्रा करनेके लिए अपना एक ही साथी चुन लो तो हम थोरोको ही चुनेंगे। उनके ग्रन्थ 'वाल्डेन'को हमने अनेक बार पढ़ा है और उससे हमारे मनमें यह धारणा दृढ़तापूर्वक बैठ गई कि जितने अंशोंमें भारतीयता थोरोमें पाई जाती है, उतने अंशोंमें शायद ही किसी अन्य पाश्चात्य लेखकमें पाई जाती हो। वे केवल मन-वचनसे ही नहीं, बल्कि कर्मसे भी भारतीय थे। अपरिग्रही तो अव्वल नम्बरके थे। एक बार एक महिलाने उन्हें एक चटाई भेंट की। आपने उससे कहा, "श्रीमतीजी, मेरे घरमें इतनी जगह नहीं है कि इस चटाईको रख सकूँ और न मेरे पास इतना वक़्त ही

है कि इसे झाड़कर साफ़ कर सकूँ।" और चटाई वापस कर दी। इस घटनाका ज़िक्र करते हुए अपनी पुस्तकमें आप लिखते हैं—

"It is best to avoid the beginnings of evil."—"बुराईकी जड़ प्रारम्भमें ही काट देनी चाहिए।"

आपकी डेस्कके ऊपर सफेद पत्थरके तीन टुकड़े थे। आपने देखा कि उनके पोंछनेमें समय लगता है, इसलिए आपने यह कहकर उन्हें खिड़कीके बाहर फेंक दिया कि अपने दिमागको झाड़-पोंछकर साफ़ करनेका काम-ही हमें कौन थोड़ा है, जो इस झल्लनको पालें!

थोरोका यह फक्कड़पन हमें बहुत पसन्द है और उनके ग्रन्थोंको पढ़ते हुए ऐसे फक्कड़पनके कितने ही दृष्टान्त हमें मिलते हैं। अपने लेखोंमें उन्होंने ऐसी-ऐसी चुटकियाँ ली हैं कि उन्हें पढ़कर तबीयत फड़क उठती है।

थोरो कभी डिनर-पार्टी या भोजोंमें शामिल नहीं होते थे। वे कहते थे—"They make their pride in making their dinner cost much; I make my pride in making my dinner cost little." अर्थात्—"वे इस बातमें अभिमान करते हैं कि उनके भोजनमें कितना अधिक व्यय होता है, और मुझे इस बातका घमंड है कि मेरे भोजनमें कितना कम खर्च होता है।" सिगरेट आपने ज़िन्दगीभर नहीं पी। एक जगह लिखा है—"मैंने कमलके डंठल सुलगाकर पिये थे और सो भी तब, जब मैं बालक था। उनसे बदतर और कोई भी चीज़ मैंने कभी नहीं पी।"

अन्यत्र आपने लिखा है—"मेरा विश्वास है कि बुद्धिमान आदमियोंके लिए एक ही पेय पदार्थ सर्वोत्तम है, यानी शुद्ध जल। शराब उतनी बढ़िया चीज़ नहीं है जितना पानी, और गरम काफ़ी पीकर प्रभातकी अथवा गरम चाय पीकर सन्ध्याकी आशाओंको चकनाचूर करनेके विषयमें कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं। जब कभी मैं काफ़ी या चायके प्रलोभनमें फँस गया हूँ, उस समय वस्तुतः मेरा पतन ही हुआ है।"

थोरो मांस खानेके भी विरुद्ध थे। उन्होंने लिखा है :

"I believe that every man who has ever been earnest to preserve his higher or poetic faculties in the best condition has been particularly inclined to abstain from animal food, and from much food of any kind."

अर्थात्—"मेरा यह विश्वास है, जो व्यक्ति अपने उच्च विचारोंको अथवा काव्यप्रेरणाको सर्वोत्तम दशामें रखना चाहता है, उसके हृदयमें मांस-भक्षण छोड़नेकी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, बल्कि उसे अपने हर प्रकारके भोजनमें कमी करनी पड़ती है।"

ब्रह्मचर्यके विषयमें थोरोके विचार पठनीय हैं। उन्होंने अपने 'हायर लाज़' (Higher Laws) नामक निबन्धमें लिखा है :

"उत्पादनशक्ति, जबकि हम दुश्चरित्र होते हैं, हमको कमज़ोर और गन्दा बना देती है, पर वही उत्पादन-शक्ति, जबकि हम ब्रह्मचारी होते हैं, हमें ताक़त देती है और स्फूर्ति प्रदान करती है। ब्रह्मचर्यका अर्थ है मनुष्यका पुष्पित होना, और जिसे हम प्रतिभा, वीरता, या पवित्रता इत्यादिके नामसे पुकारते हैं, वह ब्रह्मचर्य रूपी पुष्पके फलमात्र हैं, जो कि पुष्पके बाद आते हैं। जब पवित्रताका स्रोत खुला होता है, तब मनुष्य तुरन्त ईश्वरकी ओर प्रभावित होने लगता है। पवित्रता हमें प्रेरणा एवं स्फूर्ति देती है। वही धन्य है, जिसको नित्यप्रति यह अनुभव होता जाय कि उसमें पशुता रोज़-ब-रोज़ मर रही है और देवत्व स्थापित होता जा रहा है।"

"ब्रह्मचर्य अथवा सतीत्व है क्या चीज़ ? मनुष्यको कैसे पता लगे कि वह ब्रह्मचारी है ? उसे इसका कुछ ज्ञान ही न होगा। हमने भी इस गुणका नाम तो सुना है, पर उसे ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकते। हाँ, एक अफ़वाह हमने सुनी है, और उसे हम यहाँ लिखे देते हैं। परिश्रम करनेसे बुद्धिमत्ता आती है और पवित्रता भी और आलस्यसे अज्ञान

और विषयासक्ति। विद्यार्थीकी विषय-परायणताका मूल है उसके मस्तिष्कके आलस्यमें। गन्दा आदमी हमेशा आलसी ही हुआ करता है—जो चूल्हेके नज़दीक आलससे तापा करता है, जो सूर्योदय तक सोता रहता है और जो बिना थके सोता है। यदि तुम गन्दगीसे और दुनिया भरके पापोंसे बचना चाहते हो तो खूब दृढ़ता-पूर्वक काम करो, चाहे तुम्हारा काम अस्तबल साफ़ करना ही क्यों न हो। प्रकृतिपर विजय प्राप्त करना कठिन है; पर उसपर विजय प्राप्त करनी ही चाहिए।"

सर्वथा निर्द्वन्द रहना ही थोरोके जीवनका उद्देश्य था :

"I would say to my fellows, once for all, as long as possible live free and uncommitted. It makes but little difference whether you are committed to a farm or a country jail."

अर्थात्—"अपने सहयोगियोंसे मैं एक बात निश्चयपूर्वक कह देना चाहता हूँ, वह यह कि जहाँ तक सम्भव हो, बिल्कुल स्वतन्त्र और बन्धनमुक्त रहो। किसी खेतपर बँध जाने अथवा किसी जेलके बन्धनमें पड़ जानेमें कोई अन्तर नहीं।"

एक जगह आप लिखते हैं—"पहले मुझे इस बातकी फ़िक्र रहती थी कि ईमानदारीके साथ अपनी जीविका निर्वाह करते हुए भी इतना समय कैसे बचा पाऊँ, जिससे अपने प्रिय कार्योंको कर सकूँ; पर उन दिनों मैं एक लम्बा सन्दूक़ रेलकी सड़कके नज़दीक रखा हुआ देखा करता था, जिसमें मज़दूर लोग रातको अपने हथियार रख करके ताला बन्द कर दिया करते थे। उससे मेरे मनमें एक खयाल आया कि यदि किसी आदमीको आर्थिक संकट हो तो उसे तीन डालरमें इसी तरहका एक सन्दूक़ खरीद लेना चाहिए और उसमें हवाके आने-जानेके लिए छेद कर लेने चाहिए। पानी बरसनेपर वह आदमी उसमें घुसकर और भीतरसे ढक्कन देकर मज़ेमें अपनी रात बिता सकता है। इस प्रकार उसकी आत्मा स्वतन्त्र

रहेगी और वह स्वाधीनतापूर्वक अपने प्रिय विषयका अनुशीलन भी कर सकेगा। न किराएका झंझट है और न मालिक मकानके तक़ाज़ोंका। कितने ही आदमी दरअसल, इससे बड़े सन्दूक़ोंमें रहते हैं और किराया देते-देते मरते हैं!"

थोरोपर भारतीय ग्रन्थोंका काफ़ी प्रभाव पड़ा था। आप लिखते हैं:

'In the morning I bathe my intellect in the stupendous and cosmogonal philosophy of the Bhagvat Gita, since whose composition years of the gods have elapsed, and in comparision with which over modern world and its literature seem puny and trivial; and I doubt if that philosophy is not to be referred to a previous state of existence, so remote is its sublimity from our conceptions."

अर्थात्—प्रातःकालमें मैं भगवद्गीताकी महान और विश्वकी उत्पत्ति-से सम्बन्ध रखनेवाले दर्शनशास्त्रमें अपनी बुद्धि द्वारा स्नान करता हूँ। गीताको बने अनेक दैवी वर्ष व्यतीत हो गये और उसकी तुलनामें हमारा वर्तमान संसार तथा उसका साहित्य बिल्कुल क्षुद्र तथा तुच्छ प्रतीत होता है और कभी-कभी तो मुझे यह शक होने लगता है कि गीताकी फ़िलासफ़ी मानव-जीवनके वर्तमान अस्तित्वसे पहलेकी है, क्योंकि हमारे विचारोंके धरातलसे वह इतनी ऊँची नज़र आती है।"

प्रातःकालका वर्णन करते हुए आप लिखते हैं—"The Vedas say, 'all intelligence awake with the morning.'" अर्थात्—"वेद कहते हैं कि तमाम बुद्धियाँ प्रातःकालके साथ जाग्रत होती हैं।" फिर आप लिखते हैं—"हरिवंश पुराणमें लिखा है कि पक्षियोंके बिना मकान वैसा ही है, जैसे भोजन बिना मसालोंका; पर मेरा मकान

ऐसा नहीं था, क्योंकि मेरे निकट तो बहुत-सी चिड़ियाँ रहती थीं, यद्यपि मैंने एक भी चिड़ियाको पकड़कर पिंजड़ेमें बन्द नहीं किया था; बल्कि यों कहना उचित होगा कि मैंने चिड़ियोंके निकट एक पिंजड़ा बनाया था और उसमें मै स्वयं बन्द हो गया था !"

अपने निवास-स्थानका जिक्र करते हुए आप लिखते है—"वहाँ भी अपने अन्य निवास-स्थानोंकी तरह मैं एक ऐसे अतिथिकी प्रतीक्षा करता था, जो कभी नही आता। विष्णुपुराणमें एक जगह लिखा है—'गहस्थका कर्त्तव्य है कि वह सन्ध्या-समय कम-से-कम उतनी देर तक अतिथिकी प्रतीक्षा अवश्य करे, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है।' पर मैं तो उतने समय तक अपने अतिथिकी प्रतीक्षा करता रहता था, जितनेमें गायोंके झुंड-के-झुंड दुहे जा सकते थे और इस प्रकार आतिथ्य-धर्मका पालन करता रहता था; पर जाड़ेके दिनोंमें नगरसे कोई भी अतिथि मेरे निवास-स्थानपर आता ही न था !"

हितोपदेश, शकुन्तला, महाभारत तथा कबीरका जिक्र भी आपके ग्रंथोंमें आया है। दरअसल हिन्दू, चीनी तथा फारसी धर्म-ग्रंथोंसे जितना अच्छा आपका परिचय था, उतना बाइबिलसे नहीं और अपनी पुस्तक "A week on concord and Merrimace rivers" में आपने यह बात स्वीकार भी की है। मनुस्मृतिकी प्रशंसामें तो आपने अपनी उपर्युक्त पुस्तकके कितने ही पृष्ठ भर दिये हैं। थोरोके ग्रंथोंमें सदुपदेशोके रत्न छिटके हुए पड़े हैं। उदाहरणार्थ :

"मालूम होता है कि मर्दुमशुमारी करनेवालोंने बड़ी भूल की है। इस देशमें मर्द आदमी हैं कितने ? हज़ार वर्गमीलमें कितने मर्द होंगे ? इधर-से-उधर ढुलकनेवाले सिद्धान्तहीन आदमियोंकी गणना मैं मर्दोंमें नहीं करता।"

"जो आदमी अपने सैकड़ों साथियोंकी अपेक्षा सत्यके अधिक निकट है, उसीका बहुमत है, क्योंकि एक वोट तो उसका ज्यादा है ही !"

"यदि तुम किसी आदमीको विश्वास दिलाना चाहते हो कि वह ग़लत रास्ते पर है तो उसका उपाय यही है कि तुम स्वयं ठीक मार्गका अनुसरण करो; पर उसे विश्वास दिलानेकी चिन्ता मत करो। आदमी जो चीज़ देखते हैं, उसीपर विश्वास करते हैं, उन्हें देखने दो।"

थोरोके ग्रंथोंमें उनकी विचित्र बुद्धिके इतने अधिक दृष्टान्त मिलते हैं कि उनमेंसे चुनाव करना मुश्किल हो जाता है। विभिन्न विषयोंपर उनके कुछ विचार यहाँ उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे पाठक उनकी मनोवृत्तिका अनुमान कर सकते हैं :

"आदमियोंका यह ख़याल है कि हमारे राष्ट्रके लिए व्यापारकी ज़रूरत है, बर्फ़ बाहर भेजनेकी आवश्यकता है, तार द्वारा बातचीत करना ज़रूरी है और कम-से-कम तीस मील फ़ी घंटेकी चालसे तो यात्रा भी करनी चाहिए; पर इस प्रश्नपर कोई ध्यान नहीं देता कि हमें मनुष्योंकी तरह रहना चाहिए या जंगली बन्दरोंकी तरह! लोग कहते हैं कि अगर हम स्लीपर न बनावें, रेलकी लाइन न डालें और दिनरात इसके लिए परिश्रम करनेके बजाय अपनी ज़िन्दगी बनानेमें ही समय व्यतीत करते रहें तो भला फिर रेलवे लाइन कौन बनावेगा? और अगर रेलवे लाइन न बनी तो फिर हम समयके भीतर स्वर्ग कैसे पहुँच सकेंगे? इन भले आदमियोंसे कोई यह पूछे कि अगर हम घर बैठकर अपना काम करें तो फिर रेलकी ज़रूरत ही किसे पड़ेगी? हम रेलोंपर थोड़े ही चढ़ते हैं, रेलें हमपर चढ़ती हैं। कभी आपने यह भी ख़याल किया है कि रेलवे लाइनके नीचे जो Sleeper (स्लीपर, दूसरे अर्थमें सोनेवाले) बिछे हुए हैं, वे कौन हैं? उनमेंसे कोई आइरिश है तो कोई अमरीकन। रेलें उनपर बिछी हुई हैं और मृतशरीर मिट्टीसे ढके हुए हैं, जिनपर मज़ेसे गाड़ियाँ चलती हैं। वे बड़े Sound Sleepers (मजबूत स्लीपर, दूसरे अर्थमें घोर निद्रामें सोनेवाले) हैं, इतना विश्वास मैं आपको दिला सकता हूँ, और कितने ही आदमी इन रेलोंसे कट जाते हैं। इस प्रकार कुछ

आदमियोंको तो रेल-गाड़ियोंमें चढ़नेका सौभाग्य प्राप्त होता है और कितनों ही पर रेलगाड़ी खुद चढ़ जाती है !"

अखबारों और अखबार पढ़नेवालोंपर थोरोने बड़े मज़ेकी चुटकियाँ ली है :

"भोजनके बाद आदमी आध घंटे भी न सोता होगा कि सोनेसे उठकर तुरन्त ही पूछता है, 'अरे भई, क्या ख़बर है ?' मानों सारा संसार उसकी चौकीदारी कर रहा हो और इस चिन्तामें व्यस्त हो कि ये हज़रत ज्योंही सोकर उठें, उन्हें खबर सुनाई जानी चाहिए ! रात बीत जानेके बाद ख़बर उतनी ही ज़रूरी समझी जाती है, जितना ज़रूरी कलेवा । 'अरे भाई, कोई ताज़ी ख़बर सुनाओ । दुनियाके किसी हिस्सेमें किसी आदमीको कुछ हुआ हो तो उसका समाचार बतलाओ ।' और काफ़ी या चाय पीते हुए पढ़ता है कि किसी आदमीकी आँखें अमुक नदीके किनारे किसी धूर्तने निकाल ली । इन भलेमानसको कौन बतलावे कि हज़रत, आप तो अन्धकारमें रहते हैं और आपके दो आँखें तो क्या, आँखका एक टुकड़ा भी सही-सलामत नहीं है ! रही मेरी बात, सो मेरा काम तो डाकखानेके बिना बड़ी आसानीसे चल सकता है । मैं तो समझता हूँ कि डाकखाने द्वारा जो समाचार आते है, उनमें महत्वपूर्ण बहुत ही कम होते हैं । यदि आलोचककी दृष्टिसे कहूँ, तो मुझे कहना पड़ेगा कि ज़िन्दगी भरमें जितनी चिट्ठियाँ मुझे मिली है, उनमे सिर्फ़ एक या दो ऐसी थीं जिनका मूल्य उनपर लगे पोस्टजके बराबर था । एक पेनीमें जो चिट्ठी जाती है, उसमें लोग बस एक पेनीके मूल्यके विचार भेजते रहते हैं, और यह सारी दिल्लगी गम्भीरतापूर्वक की जाती है ! मैं तो निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मैंने किसी अखबारमें कोई स्मरणीय ख़बर नहीं पढ़ी ।

"यदि हमने किसी अख़बारमें पढ़ लिया कि कोई आदमी लूट लिया गया, मार डाला गया अथवा किसी दुर्घटनासे मर गया, या यों कहिए कि कोई मकान जल गया, कोई नाव टूट गई, जहाज़ फट गया, कोई गाय

रेलकी पटरीपर कट गई, कोई पागल कुत्ता मार डाला गया, तो इस प्रकार-की ख़बरोंका एक दृष्टान्त ही काफ़ी है। इनके बार-बार पढ़नेकी क्या ज़रूरत है? यदि किसी चीज़का मूल सिद्धान्त आपको ज्ञात हो जाय तो फिर उसके लाखों दृष्टान्त या उदाहरण लेकर आप क्या करेंगे?"

इस सिलसिलेमें एक बात याद आती है। थोरोके पिता पेंसिल बनानेका व्यवसाय करते थे; पर थोरोने पहले अध्यापन-कार्य अपने लिए चुना; किन्तु वह उन्हें पसन्द नहीं आया। फिर आपने पेंसिल बनाना सीखा। प्रयोग करके आपने एक ऐसी पेंसिल बनाई जो लन्दनकी सर्वोत्तम पेंसिलोंका मुक़ाबला करती थी। बोस्टनकी प्रदर्शिनीमें उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और थोरोके मित्रोंने समझा कि बस, अब थोरोके भाग्य खुल गये। पेंसिलोंके व्यापारसे उनके धनाढ्य बननेमें देर न लगेगी! थोरोसे जब कहा गया कि इस व्यापारको बढ़ाओ, तो उन्होंने उत्तर दिया—"Why should I? I would not do again what I have done once." अर्थात्—"मैं अब पेंसिल क्यों बनाऊँ? जो काम मैंने एक बार कर दिखलाया, उसे बार-बार क्यों करूँ?" पेंसिलके कामको छोड़-छाड़कर आपने मस्तीके साथ इधर-उधर वन-उपवनोंकी सैर करनी शुरू की! प्रकृति-निरीक्षण ही उनका पेशा था।

समाचार-पत्रोंके विषयमें थोरोने लिखा था—"किसी फ़िलासफ़रके लिए तमाम समाचार जो पत्रोंमें छपा करते हैं, बिल्कुल गप हैं और जो लोग उन्हें पढ़ते या उनका सम्पादन करते हैं, तो सब चाय पी-पीकर गप्पें मारनेवाली बुड्ढी स्त्रियाँ हैं। कितनी ही खबरें तो ऐसी है कि कोई बुद्धिमान आदमी उन्हें साल-भर पहले—बल्कि बारह वर्ष पहले ही—लिखकर रख सकता है....इंगलैण्डसे इधर कई शताब्दियोंसे कोई महत्वपूर्ण ख़बर नहीं आई। पिछली ख़बर १६४९में आई थी, जो वहाँकी क्रान्तिकी थी।"

परोपकारके विषयमें थोरोने लिखा था—"As for doing good, that is one of the professions which are full." अर्थात्—"परोपकार एक ऐसा पेशा है, जिसमें बहुतसे आदमी घुस पड़े हैं !"

थोरो कहता है—"अपने निश्चित पथपर चले चलो। इसमें किसीका भला हो जाय तो अच्छी बात है। अगर मुझे पता लग जाय कि कोई भला आदमी मेरे घरपर जान-बूझकर मेरे साथ भलाई करनेके लिए आ रहा है तो मैं उससे उसी तरह भाग जाऊँगा, जैसे अफ्रीकन जंगलोंकी गर्म हवासे, जो मुँह, आँख, नाक, कानको धूलसे भर देती है और दम घोटकर प्राण ले लेती है। मैं यह नहीं कहता कि दूसरेकी भलाई करो। अगर मुझे उपदेश देना पड़े तो यही कहूँगा कि तुम खुद भले बनो। मान लीजिए कि सूर्यके सिरपर परोपकार करनेका खब्त सवार हो, तो वह अपने निश्चित पथको छोड़कर हर एक झोंपड़ीपर घूमना फिरेगा, हर एक पागलको स्फूर्ति देगा, मांसको पकावेगा और कोने-कोनेके अन्धकारको दूर करेगा ! पर इसके बजाय वह करता क्या है ? वह अपने प्रकाशको बढ़ाता हुआ निश्चित पथपर चलता रहता है और पृथिवी-भरकी भलाई करता है, बल्कि यों कहना चाहिए कि पृथिवी उसके चारों ओर घूमती हुई उससे अपनी भलाई करा लेती है ! एक पौराणिक कथा है। एक बार सूर्यके मित्र फेटनने एक दिन-भरके लिए उनका रथ उधार ले लिया था। वे हज़रत रथको निश्चित पथसे इधर-उधर ले गये। नतीजा यह हुआ कि स्वर्गके निम्न-भागके कितने ही मकान जल गये, पृथिवीतल झुलस गया, झरने सूख गये और सहाराका रेगिस्तान बन गया ! तब बृहस्पतिने यह दुर्घटना देख फेटनपर वज्र प्रहार किया और उन्हें सूर्यके रथसे ज़मीनपर ला पटका। इससे सूर्य भगवानने साल-भर मातमपुर्सी की और साल-भर तक उदय नहीं हुए !"

थोरोके फक्कड़पनके बीसियों उदाहरण दिये जा सकते हैं; पर उनके

इस फक्कड़पनके पीछे एक फ़िलासफ़ी थी, एक नीति थी। थोरो मानवजीवनकी महत्ताको ख़ूब समझता था। आश्चर्य तो इस बातका है कि अमेरिका-जैसे देशमें थोरो उत्पन्न कैसे हुए, अथवा एमर्सनकी भाँति थोरोको भी "परमात्माकी एक भौगोलिक भूल" मानना पड़ेगा। थोरो एक स्वाधीनचेता पुरुषपुंगव थे। उनका सन्देश उत्साह और आशाका सन्देश है। एक जगह आपने लिखा है :

"लोग कहते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य बड़ी भारी और बड़ी प्रतिष्ठित चीज़ है और संयुक्त-राज्य अमरीका भी प्रथम कोटिकी शक्तियोंमें माना जाता है; पर हम लोग इस बातपर विश्वास न करेंगे कि प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क-रूपी समुद्रमें विचारोंकी ऐसी लहर उठा और गिरा करती है कि यदि कहीं वह उसे धारण कर सके तो ब्रिटिश-साम्राज्य उसके विचार-सागरमें लकड़ीके टुकड़ेकी तरह तैरता फिरेगा।"

थोरोके भक्त महात्माजीने (यह बात शायद बहुतसे लोगोंको न मालूम होगी कि महात्माजी थोरोकी रचनाओंको बहुत पसन्द करते हैं) उपर्युक्त वाक्यकी सत्यता किस प्रकार प्रमाणित की, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं।

जैसा कि हम कह चुके हैं, थोरो टहलनेका बड़ा शौक़ीन था। पर कौन टहल सकता है, इस विषयमें थोरोने बड़े पतेकी बात लिखी है—"अगर तुम माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-बच्चे और मित्र सबको छोड़नेके लिए और फिर कभी उन्हें न देखनेके लिए तैयार हो; अगर तुमने अपना कर्ज़ चुका दिया है और अपनी वसीयत लिख दी है; अपने सब झगड़ोंका फ़ैसला कर दिया है और बिलकुल स्वतन्त्र हो, तब समझना चाहिए कि तुममें टहलनेकी योग्यता है"।

थोरोसे एक बार कुछ आदमियोंने कहा—"क्या आप कृपा कर हमारे साथ टहलनेके लिए चलेंगे?" थोरोने जवाब दिया—"कह

नहीं सकता। मेरे लिए भ्रमण सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज़ है और भ्रमणका समय मेरे पास इतना फ़ालतू नहीं है कि मैं दूसरोंको अपने साथ ले सकूं।"

समाचारपत्रोंके विषयमें आपने एक चिट्ठीमें लिखा था :

"Blessed are they who never read a newspaper, for they shall see Nature, and through her God."—"धन्य हैं वे, जो कभी समाचारपत्र नहीं पढ़ते, क्योंकि उन्हें प्रकृतिके दर्शन होंगे और प्रकृतिके द्वारा ईश्वरके।"

अपने एक मित्रको पत्र लिखते हुए आपने लिखा था—"मैंने कभी आपसे यह वायदा नहीं किया था कि मैं आपको चिट्ठी लिखूंगा, इसलिए जब अब लिख रहा हूँ तो इसके मानी यह हैं कि मैं अपने वादेसे अधिक ही कर रहा हूँ।"

थोरोका कहना था कि आजकल छः दिन काम होता है और एक दिन रविवारकी छुट्टी, यह क्रम बदल देना चाहिए। छः दिन छुट्टी होनी चाहिए और एक दिन काम!

मुर्ग़के विषयमें थोरोने बड़ी मौलिक बात कही है। आपके शब्द सुन लीजिए—"यदि हम अपने प्रत्येक खेतपर, जो हमें अपने क्षितिजके भीतर दीख पड़ता है, प्रातःकालके समय मुर्ग़की आवाज़ नहीं सुनते तो समझ लेना चाहिए कि हमारी फिलासफी और विचारशैली पुरानी पड़ गई। मुर्ग़की आवाज़ प्रायः हमें यह याद दिलाती है कि हमारी कार्य-प्रवृत्तियोंमें जंग लग गया है और हमारी विचारशैली दकियानूसी हो गई है। मुर्ग़की बोलीसे जो भाव जाग्रत होते हैं, उन्हें हम नवीन बाइबिल कह सकते हैं—वर्तमान क्षणके उपयुक्त बाइबिल। मुर्ग़की बोलीसे प्रकट होता है कि प्रकृति कितनी तन्दुरुस्त और हृष्टपुष्ट है। मुर्ग़की आवाज़में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें कोई शिकायतका माद्दा नहीं।

ऐसे गायक तो बहुत मिल सकते हैं, जो हमें अपने गानसे रुला दें, या हँसा दें; पर कहाँ हैं वे गायक, जो अपनी ध्वनिसे हमारे हृदयमें प्रातःकालके पवित्र आनन्दका उद्रेक कर दें ?"

उल्लुओंके विषयमें भी आपके विचार पठनीय है—"जब कि दूसरी चिड़ियाँ शान्त रहती हैं, खूसट बोलना शुरू कर देते हैं, मानों औरतें स्यापा कर रही हों ! उनकी आवाज़में खास तौरसे दुःखकी ध्वनि प्रतीत होती है।...ऐसा मालूम होता है कि मानों ये पतित आत्माएँ हैं, जिन्होंने अपने पूर्वजन्ममें रात्रिके अन्धकार में पाप-कार्य किये थे और अब खूसटोंका जन्म लेकर ये उन पापोंका प्रायश्चित्त कर रही है। तालाबके एक किनारेसे मानों एक खूसट बोलता है—"ओ-ओ ! हम पैदा न होते !" दूसरा उधरसे कहता है—"ओ-ओ ! हम पैदा न होते !"

लेखकोंके लिए थोरोने अत्यन्त महत्वपूर्ण उपदेश दिया है—

"Moreover I, on my side, require of every writer, first or last, a simple and sincere account of his own life, and not, merely what he has heard of other men's lives; some such account as he would send to his kindred, from a distant land; for if he has lived sincerely, it must have been a distant land to me."

अर्थात्—"इसके सिवा मैं प्रत्येक लेखकसे यह आशा करता हूँ कि वह अपने जीवनका सीधा-सादा सच्चा वृत्तान्त लिखे, न कि सिर्फ़ वे बातें, जो दूसरे आदमियोंके जीवनके विषयमें उसने सुन रखी हैं। जैसे वह अपने किसी कुटुम्बीको किसी दूरस्थ स्थानसे चिठ्ठी भेज रहा हो, वैसा ही वृत्तान्त उसे लिखना चाहिए। और यदि आदमीने सचाईके साथ ज़िन्दगी व्यतीत की है तो मेरे लिए उसका जीवन वृत्तान्त वैसा ही मनोरंजक होगा, जैसा किसी दूरदेशका हाल।"

थोरोका कथन था, "The artist and his work are not to be separated" अर्थात्--"कलाकार और उसका कार्य अलग-अलग नहीं किये जा सकते ।"

थोरो "आत्मानं विद्धि" (खुदको पहचानो) फिलासफीका कायल था। इस बातको उसने बार-बार अपने ग्रन्थोंमें लिखा है। थोरोने दो-ढाई वर्ष वनके निकट 'वाल्डन' नामक तालाबके किनारे बिताये थे। अपने इस प्रयोगके विषयमें उन्होंने इसी नामकी पुस्तकमें लिखा है-- "मैंने अपने प्रयोगसे कम-से-कम एक बात सीखी, वह यह कि यदि आदमी दृढ़ विश्वासके साथ अपने स्वप्नोंकी दिशामें आगे बढ़ता रहे और जिस जीवनकी उसने कल्पना कर रखी है, तदनुसार रहनेका प्रयत्न करता रहे तो उसे आशातीत सफलता मिलेगी, कितनी ही चीज़ोंको वह पीछे छोड़ता हुआ बढ़ जायगा और अभी जो सीमाएँ अदृश्य हैं, उन्हें वह पार कर जायगा। नवीन, विश्वव्यापी और अधिक स्वतंत्रतायुक्त नियम उसके हृदयमें और उसके चारों ओर स्थापित होने शुरू हो जायंगे। पुराने नियमोंका उसके लिए विस्तार हो जायगा, अथवा वे उसके पक्षमें घटित होने लगेंगे। और उसे उच्च कोटिके मनुष्योंकी भांति जीवन-निर्वाह करनेकी स्वाधीनता मिल जायगी। ज्यों-ज्यों वह अपने जीवनको अधिकाधिक सादा बनाता जायगा त्यों-त्यों संसारके नियम और विधानोंकी उलझनें उसके लिये सुलझती जायेंगी। तब उसके लिए एकान्त एकान्त न रहेगा, ग़रीबी ग़रीबी न रहेगी, निर्बलता निर्बलता न रहेगी। यदि तुमने हवाई किले बनाए हैं तो कोई परवाह नहीं। किले तो हवामें ही बनने चाहिए, अब नीचेसे उनकी नींव रखना शुरू कर दो।"

इस युगमें जबकि अधिकाँश आदमियोंके सिरपर जीवनको 'सफल' बनानेकी धुन सवार है, जब जल्दी-से-जल्दी धनवान बननेकी आकांक्षाने लाखों आदमियोंकी नींद हराम कर दी है, जब लोग वर्षोंका काम महीनेमें, और महीनोंका घंटोंमें कर डालनेकी फिक्रमें हैं, थोरो जैसे फक्कड़

आदमीका जीवन एक खास सन्देश रखता है। जब दुनियामें अपने चारों ओर असंख्य तेलीके बैल दीख पड़ रहे हैं, उस समय थोरोंकी तरहके अपनी मस्त चालसे विचरण करने वाले निर्द्वन्द वृषभके जीवन-क्रमको पढ़कर ईर्ष्या होती है। एक अपरिग्रही आदमी अपने जीवनको कितना आनन्दमय तथा स्फूर्तिप्रद बना सकता है, थोरोका जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टांत है।

जुलाई १९३५]

: १७ :

अमर कलाकार 'ए० ई०'

"दूसरोंकी भाँति मेरा भी यही विश्वास है कि यह अखिल विश्व आत्माओंके असंख्य समूहोंसे व्याप्त है। वे इस ब्रह्माण्डमें निवास करती है और फिर उस अज्ञेय सर्वव्यापी ब्रह्ममें लीन हो जाती हैं। हम लोगोंने अपनी कल्पनामें अपनेको क्षुद्रता, अन्धकार तथा अज्ञानसे घेर लिया है और अब हमें अपनी कल्पना द्वारा ज्योतिमें वापस आना है। मुमकिन है कि मै अपने दार्शनिक सिद्धान्तोंका दुरुपयोग करता होऊँ और सम्भवत: ऐसे लाखों उत्तमतर मार्ग होंगे, जिनका मुझे ज्ञान नहीं है, पर जिनके द्वारा सिद्धान्तोंका सदुपयोग हो सकता है। किन्तु मैंने जो कुछ लिखा है, वह उस भावनाके समयमें लिखा है जबकि मेरी अन्तरात्मा थोड़े समयके लिए ज्योतिसे प्रकाशित हो गई थी। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं कोई महान् अग्नि प्रज्वलित कर सकूं। मैं तो प्रकाशकी एक क्षीण रेखा ही दे सकता हूँ; लेकिन उसीसे अपने मार्गको ज्योतिर्मय बनाना, बक़ौल भारतीयोंके मेरा धर्म है। भारतीयोंका यह विश्वास है कि हर-एकके लिए एक विशेष कर्तव्य होता है और भले ही वह कर्तव्य महान न दीख पड़े, उस व्यक्तिके लिए वही सर्वोत्तम है। 'परधर्मो भयावह:'—इसका अर्थ यही है कि मैं यदि किसी दूसरेके कर्तव्यको महान समझकर अपना कर्तव्य छोड़ दूं और दूसरेका कर्तव्य करने लगूं तो मैं अपने जीवनके लक्ष्यको खो बैठूंगा। मैं उन लोगोंको, जिनका मार्ग मुझसे भिन्न है, दोष नहीं देता। प्रत्येक व्यक्तिकी स्वाधीनतामें मेरा दृढ़ विश्वास है और यदि मैं किसी दूसरेकी निन्दा करने लगूं तो इसके

मानी यह हुए कि मैं उन्हें स्वाधीनता नहीं देना चाहता और इस प्रकार मैं उनके प्रति अन्याय करता हूँ। प्रकाशके सहस्रों मार्ग हैं, जिन पर दूसरे लोग यात्रा कर रहे हैं. . .।"

यह है आयर्लेण्डके सुप्रसिद्ध साहित्यिक स्वर्गीय जार्ज रसेल (उपनाम 'ए० ई०') के एक पत्रका अंश। इससे उस रहस्यवादी महान् कलाकार और कर्मयोगी पुरुषकी मनोवृत्तिपर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। यह पत्र उनकी स्वभावगत विनम्रता, स्वाधीनता—प्रेम (केवल अपने लिए ही नहीं, दूसरोंके लिए भी) और उनकी आध्यात्मिक भावनाका परिचायक है। एमर्सन, एडवर्ड कार्पेटर और एण्ड्रूजकी तरह 'ए० ई०' भी 'परमात्माकी एक भौगोलिक भूल' थे और उनका जन्म तो आयर्लेण्डके बजाय भारतमें होना चाहिए था।

'ए० ई०' वास्तवमें एक आदर्श साहित्य-सेवी थे। उनमें कई विशेषताओंका एक अद्भुत सम्मेलन हुआ था। वे उच्चकोटिके रहस्यवादी कवि थे, कृषि-सम्बन्धी अर्थशास्त्रके अद्वितीय ज्ञाता और साथ-ही-साथ एक प्रतिभाशाली चित्रकार भी! सम्भाषण-कला और सम्पादन-कला इन दोनोंके भी आचार्य थे और इनमें सबसे बड़ी बात यह थी कि उन्होंने कभी अपनी मानसिक स्वाधीनताको बेचा नहीं।

२९ मई सन् १९३४ को उन्होंने अपने एक मित्रको चिट्ठी लिखी थी, जिससे हम उनके आदर्शों तथा आकाँक्षाओंका अनुमान कर सकते हैं—

"आपने अपनी पुस्तकमें एक बात बड़े मार्केकी लिखी है और वह मुझे सत्य, कल्याणकारी और बुद्धिमत्तापूर्ण जँची, यानी आपने कलाकारों और कवियोको यह आदेश दिया है कि वे स्वेच्छापूर्वक निर्धनताका व्रत ग्रहण कर लें। आयर्लैण्डमें हम सभी ग़रीब हैं और इससे हममें से किसीका कुछ नुक़सान नहीं हुआ। मेरे जीवनके सबसे अधिक आनन्ददायक दिन वे थे, जब मैं ५० पौण्ड प्रतिवर्ष (५५-५६ रुपये महीने) से भी कम पर गुज़र करता था और भोग-विलासकी किसी चीज़को ख़रीदनेके लिए मेरे

पास पैसा ही नहीं था, पर निर्धनताके उन दिनोंमें हम दिन-दिन भर और लम्बी रात तक पृथ्वी और स्वर्गके न जाने कितने विषयोंपर वार्तालाप किया करते थे और जो कुछ पढ़ते, उसका मनन करते रहते थे। अब भी मैं बड़ी किफ़ायतशारीके साथ रहता हूँ। मेरी निश्चित आमदनी एक सौ पौण्ड प्रतिवर्ष (११० या ११५ रु० प्रतिमास) है।

"क्या इससे मेरा जीवन कुछ दुःखी है? नहीं जनाब, बिल्कुल नहीं।..कितने ही कलाकारोंकी यह आकाँक्षा रहती है कि हमारे पास मोटरकार चढ़नेके लिए हो, बँगला रहनेके लिए और खूब पैसा मौज करने तथा मित्रोंको पार्टियाँ देनेके लिए। नतीजा यह होता है कि वे अपनी प्रतिभाको दूसरेके हाथ दामोंपर बेच देते हैं। उन्हें दरअसल निर्धनताका व्रत ग्रहण करना चाहिए। यह व्रत आन्तरिक व्रत है, अन्तरात्मासे सम्बन्ध रखता है। इसके मानी यह नहीं है कि यदि कोई धनाढ्य उनके लिए दस लाख रुपया छोड़ मरे तो उसे उन्हें अस्वीकार कर देना चाहिए, बल्कि इसका मतलब यही है कि यदि धन-वैभव उनकी आत्माके मार्गमें बाधक होता है तो उस धन-वैभवको तिलांजलि देनेके लिए उन्हें सदा तैयार रहना चाहिए। मेरे पिताजीने मेरे लिए एक अच्छी नौकरी तलाश कर दी थी, पर मैंने उसे छोड़ दिया; क्योंकि वह नैतिक सिद्धान्तोंके विरुद्ध थी और उसके बाद मुझे छः वर्ष तक ३३ रुपयेसे लेकर ६६ रु० महीने तकके वेतनपर अपनी गुज़र करनी पड़ी और मैं उन दिनो के जीवनको अत्यन्त आनन्दप्रद मानता हूँ। यीट्स (आयरिश कवि) को बहुत दिनों तक ग़रीबीमें गुज़र करनी पड़ी, पर उन्होने अपनी प्रतिभाको कभी बेचा नहीं। स्टीफेन्सने जिन दिनों अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ और प्रारम्भिक कविताएँ लिखी थीं, उन दिनों उन्हें सिर्फ़ एक पौण्ड प्रति सप्ताहपर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ता था.. निर्धन होना बिल्कुल आसान है। एमर्सनने कहा है कि जीवनकी आवश्यकताओंकी जितनी कल्पना अधिकांश मनुष्य करते हैं, उससे वे कहीं कम हैं। दो चीज़ें ख़ासतौर पर ज़रूरी हैं—

एक तो सम्भाषण करनेके अवसर और दूसरी एकान्त, जहाँ कि आदमी ध्यान कर सके और गम्भीर चिन्तन भी। इस एकाकी जगहपर भी जहाँ कोई नगर नहीं है, सिर्फ झोपड़ियाँ ही हैं, सम्भाषणके मौक़े मिल ही जाते हैं..हाँ, आप कलाकारोंको निर्धनताका उपदेश देते रहिये। स्वेच्छा-पूर्वक ग्रहण की हुई निर्धनता उस ग़रीबीसे, जो ज़बर्दस्ती सिरपर लाद दी जाती है—जैसा कि आपके देश अमरीकामें हो रहा है— कहीं अच्छी चीज़ है।"

'ए० ई०' का जन्म १० अप्रैल सन् १८६७ को हुआ था और मृत्यु १८ जुलाई सन् १९३५ को हुई। इस प्रकार वे ६८ वर्ष जीवित रहे। उनके जीवनकी क्रमवद्ध कहानी सुनाना इस लेखका उद्देश्य नहीं है। एक साधारण हिन्दी लेखककी दृष्टिसे हमें उनके जीवनके जो अंश पसन्द आए और उनके जिन विचारोंने हमें प्रभावित किया, उन्हीका हम यहाँ संक्षेपमें वर्णन करेंगे।

पहली वात जो 'ए० ई०' के जीवन-चरितको और विचारोंको पढ़ते हुए तुरन्त ही पाठकके मनको सूझती है वह यह है कि उनपर भारतीय संस्कृतिका ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था। वे श्रीमद्भगवद्गीता और उपनिषदोंके बड़े प्रेमी थे और अपने एक पत्रमें उन्होंने लिखा था—

"इन महान् ग्रन्थोंमें इतनी गम्भीर दैवी बुद्धिमत्ता पाई जाती है कि मेरा विश्वास है कि इनके रचयिता अवश्य ही अपने सैकड़ों-सहस्रों पूर्व जन्मोंकी उत्कट वासनाओं और घोर द्वन्द्वोंको शान्तिपूर्वक स्मरण करनेकी शक्ति रखते होंगे, नहीं तो वे इतने दृढ़ निश्चयपूर्वक न लिख सकते। जब आत्माको पूर्ण विश्वास हो जाता है तभी वह ऐसे निश्चय-पूर्वक लिख सकती है।"

'ए० ई०' का निम्नलिखित वाक्य कितना महत्वपूर्ण है :

"Race hatred is the cheapest and basest of all national passions, and it is the nature of hatred, as it

is the nature of love, to change us into the likeness of that which we contemplate. We grow nobly like what we adore and ignobly like what we hate."

अर्थात्—"राष्ट्रीय मनोविकारोंमें जातीय विद्वेष सबसे सस्ता और सबसे अधम कोटिका विकार है और जिस प्रकार प्रेमका यह स्वभाव होता है कि जिससे हम प्रेम करते हैं, तदनुरूप ही बन जाते हैं, उसी प्रकार विद्वेषका भी यही स्वभाव है कि जिससे हम विद्वेष करते हैं वैसे ही बन जाते हैं। जिसकी हम पूजा करते हैं, उच्चतापूर्वक हम वैसे ही बन जाते हैं और जिससे हम घृणा करते हैं, नीचता-पूर्वक हम उसी जैसा बन जाते हैं।"

इसकी तुलना कीजिए श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके निम्न-लिखित श्लोकोंसे :

यत्र-यत्र मनोदेही धारयेत्सकलं धिया।
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम्।
कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः
याति तत्साम्यतां राजन्पूर्वरूपमसन्त्यजन्।

अर्थात्—"देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे जिस किसीमें भी सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है, अन्तमें वह तद्रूप हो जाता है, जिस प्रकार भृगीं कीट द्वारा अपने बिलमें बन्द किया हुआ कीड़ा, भयसे उसीका ध्यान करते-करते अन्तमें अपने पूर्व रूपको छोड़कर उसीके समान रूप वाला हो जाता है।"

वर्तमान साहित्यकी त्रुटियोंका जिक्र करते हुए 'ए० ई०' ने अपनी पुस्तक ('National Being') 'राष्ट्रकी आत्मा' में लिखा था—"हमारे प्राचीन गायक और कवि जिस प्रकार के महान् आदर्शोंका निर्माण किया करते थे, वैसा आधुनिक कवि नहीं कर रहे। प्राचीन आयरिश-

कवियोंने कुचूलेन और ओस्करकी महिमा गाई थी, प्राचीन यूनानी लेखकों-ने हेक्टर और ट्रायका यशोगान किया था और प्राचीन भारतीयोंने युधिष्ठिर, राम और अर्जुनकी कीर्तिका बखान करके जनताको उनके गुणोंके अनुकरण करनेकी प्रेरणा की थी। हमारे आधुनिक साहित्यकी यह बड़ी भारी त्रुटि है कि उसमें इस प्रकारके महान् आदर्शोंका अब निर्माण नहीं होता।....हमारे कवि उस दैवी जत्थेसे स्वयं भटक गये हैं और वे किसीको महान बननेकी स्फूर्ति नहीं देते और जब साधारण जनता अपने साहित्यमें सच्चे महत्त्वपूर्ण आदर्शकी ओर प्रेरित करनेवाले किसी स्तम्भका नामोनिशान नहीं पाती तो वह दूकानसे उठा कर दूकानदारको, शराबख़ाने से उठाकर शराबीको, कम्पनीसे उठाकर, कम्पनी बनानेवाले डाइरेक्टरको और कचहरीसे उठाकर वकीलको अपना प्रतिनिधि चुन भेजती है।"

'ए० ई०' के सम्पूर्ण व्यक्तित्वपर प्रकाश डालना और उसके साथ न्याय करना आसान काम नहीं है। हमें अभी उनकी केवल चार रचनाएँ पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है—(१) National Being, (२) Interpreters (३) The Candle of Vision और (४) उनके लेखोंका संग्रह 'लिविङ्ग टॉर्च'। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, 'ए० ई०' रहस्यवादी कवि थे। इसलिए उनकी रहस्यवाद सम्बन्धी कविताओं तथा लेखोंको समझनेके लिए आध्यात्मिक प्रवृत्तिकी ज़रूरत है और यह हमारी शक्तिसे बाहरकी चीज़ है। 'ए० ई०' के जीवनका जो पहलू हमें सबसे अधिक पसन्द है, वह यह है कि कल्पनाशीलता और व्यावहारिकताका उनमें विचित्र सम्मिश्रण था और वे सच्चे अर्थोंमें सजीव साहित्यिक थे। वे कोरमकोर विचारक ही नहीं थे, कर्मयोगी भी थे। उन्होंने अपनी मातृभूमि आयरलैण्डमें सैकड़ों कृषि-सम्बन्धी सहयोग-समितियाँ क़ायम की थीं और गाँव-गाँवमें घूमे थे। गाँववालोंके सामने उन्होंने सैकड़ों ही व्याख्यान दिये थे।

'ए० ई०' के जीवनमें वह दिन वास्तवमें अत्यन्त महत्वपूर्ण था, जब उनको सर हॉरेस प्लंकेट नामक सज्जनने अपने यहाँ कृषि-सम्बन्धी सहयोग समितियोंके काम पर लगा लिया। प्लंकेट साहब आयरिश कृषि-समिति (Irish Agricultural Organisation) के संस्थापक थे। उन्हें एक कल्पनाशील युवककी आवश्यकता थी। वे चाहते थे कि आयरलैण्डके निवासियोंमें कृषिके प्रति आकर्षण पैदा हो जाय और इसका तरीका उनकी समझमें यह था कि आइरिश युवक अपने स्वदेशी साहित्यको पढ़ें और ग्राम-गीत तथा ग्राम-साहित्यका अध्ययन करें। राजनीतिसे वे आयरिश युवकोंको अभी अलग ही रखना चाहते थे। वस्तुत: यह उनकी भूल थी; क्योंकि मनुष्यके जीवनको हम भिन्न-भिन्न विभागोंमें बाँट कर अलग-अलग नही कर सकते। 'ए० ई०' ने प्लकेट साहबके यहाँ काम करना प्रारम्भ किया। इससे उनको एक बड़ा भारी लाभ यह हुआ कि वे साधारण जनताके खूब सम्पर्कमें आये। नाना प्रकारके लोगोंसे—पादरियोंसे, व्यापारियोंसे, किसानोंसे, मज़दूरोंसे, ग़रीबोंसे, अमीरोंसे—उन्हें वाद-विवाद करना पड़ता था। इस प्रकार उनमें अपनी बातको स्पष्टतया समझानेकी योग्यता आ गई, जो आगे चलकर लेखक-जीवनमें उनके बहुत काम आई।

'ए० ई०' का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'राष्ट्रकी आत्मा' ('National Being') है। सुना है कि जब महात्मा गान्धीजी गोलमेज़ कान्फरेन्समें विलायत गये तो उन्होंने इस ग्रन्थके लेखकसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी और मीरा बहनके हाथ तार भी भिजवाया था, पर उन दिनों 'ए० ई०' की धर्मपत्नी बीमार थीं। इसलिए वे लन्दन आ नही सके। कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी 'ए० ई०' के इस ग्रन्थके बड़े प्रशंसक रहे थे। अमरीकामें यह ग्रन्थ इतना अधिक पसन्द किया गया था कि उसकी दस हज़ार प्रतियाँ वहाँ सरकार द्वारा बँटवाई गई थीं! इस महत्वपूर्ण पुस्तको हम स्वाध्यायके रूपमें वर्षोंसे पढ़ते रहे हैं और हमारा दृढ़ विश्वास

है कि यदि इसका अनुवाद प्रकाशित कर दिया जाय तो उससे साधारण जनताका ही नही, हिन्दी-लेखकोका भी बहुत हित हो सकता है और वर्तमान युगमें तो इसका अधिक-से-अधिक प्रचार अत्यन्त लाभदायक होगा। क्योंकि यह सर्वोदयके विचारों से ओतप्रोत है।

अपने इस ग्रन्थमें 'ए० ई०' ने एक सुन्दर विचार आयरिश जनताके सामने रक्खा था, वह यह कि जिस तरह अन्य देशोंमें सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाती है, उसी तरह उसकी जगह आयरलैण्डमें समाज-सेवाके लिए प्रत्येक नवयुवकको दो वर्ष काम करना अनिवार्य कर देना चाहिए और इन नवयुवकोंकी शक्तिका उपयोग सार्वजनिक भवनोंके निर्माणमें, नगरोंके सुन्दर बनानेमें, व्यर्थ पड़ी हुई भूमिके सदुपयोगमें, जंगलोंके लगानेमें तथा ऐसे ही जनोपयोगी कामोंमें होना चाहिए। युद्धके बाद बलगेरियाके एक मन्त्रीने इस विचारको अपने देशमें कार्यरूपमें परिणत करनेका प्रयत्न किया था और लीग आव नेशन्सने इसकी रिपोर्ट भी अपने यहाँ छापी थी। कुछ समय पूर्व श्री जवाहरलालजी नेहरूने भी अपने एक भाषणमें साल भरके लिए समाज-सेवा अनिवार्य कर देनेकी चर्चा की थी।

ग्राम संस्कृतिकी रचना सम्बन्धी जो अध्याय इस ग्रन्थमें है, वे वास्तवमें अत्यन्त स्फूर्तिप्रद है। 'ए० ई०' निस्संदेह द्रष्टा महापुरुष थे। नागरिक सभ्यताके दुष्परिणामोंको उन्होंने खूब अच्छी तरह देख लिया था। उन्होंने लिखा था—

"क्या भूमि हम सब लोगोंकी माता नही है? क्या हम सब मिट्टीके पुतले नहीं है? क्या हम प्रकृतिसे अपना जीवन ग्रहण नही करते? क्या हम विना प्रकाश और ताज़ी हवाके जीवित रह सकते हैं? अगर हमें पाँच मिनट भी हवा न मिले तो हमारी ज़िन्दगीका खात्मा हो जाय। नगरोंमें दिन-प्रतिदिन हमारे जीवनमें विषका प्रवेश हो रहा है। अगर

कोई सौन्दर्य-प्रेमी मनुष्य लन्दनकी या किसी भी बड़े नगरकी सड़कों पर से गुजरे और दस हजार आदमियोंके चेहरे देखे तो उसे एक भी चेहरा सुन्दर नहीं दीख पड़ेगा। क्या यह महान विचार कि मनुष्य फिर भूमिके निकट अधिक क़ुदरती तरीकेपर रहने लगें, हमारे लिए स्फूर्तिप्रद नहीं है? क्या मानव-समाजको इससे प्रेरणा नहीं मिलती? क्या हरे-भरे वृक्षोंकी छायामें, लहलहाते हुए खेतोंके निकट, बिना धुआँवाले स्वच्छ आकाशके नीचे सभ्यताके निर्माणका विचार मनोमोहक नहीं है? कौन कहता है कि ग्रामीण संस्कृतिमें बौद्धिक जीवन न होगा? जहाँ हमारे चारों ओर रहस्यमय प्राकृतिक शक्ति हो और क़ुदरत अपने करिश्मे दिखा रही हो, वहाँ यदि बौद्धिक जीवन न होगा तो और कहाँ होगा?...क्या छोटे-से बीजमें से महान् वृक्षकी उत्पत्ति हमारे मस्तिष्कके लिए उतनी ही स्फूर्तिप्रद नहीं, जितने स्कूलोंमे पढ़ाए जानेवाले विषय? क्या प्रकृतिकी रहस्यमयी शक्तियोंपर विचार करना अखबारोंकी अकलमन्दियोंसे अधिक मनोरञ्जक नहीं है?...हमारी सभ्यता वास्तवमें एक भयंकर स्वप्न है। वर्तमान नगरोंके चारो ओर मीलों लम्बी ग़रीबोंकी जो गन्दी गलियाँ पाई जाती है, क्या उनसे अधिक हृदय-वेधक दृश्य कोई दूसरा हो सकता है? शहरी बच्चोंको पक्की सड़कोंके किनारे खेलते हुए देखकर हृदयको धक्का लगता है। जनताकी जीवन-शक्ति नष्ट होती जाती है और वे आस-पासकी चमकीली-भड़कीली दूकानोंसे उत्तेजक मादक द्रव्य लेकर पीते रहते है! मृत्युके पंजेकी छाया मानो इन लोगोंपर छाई हुई है और इन नगरोंसे थोड़ी ही दूर पर बादल अपनी पुरानी छटा दिखला रहे है। कहीं बर्फ़ पड़ रही है, कहीं सूर्य चमक रहा है, शीतल मन्द सुगन्ध पवन बह रही है, हरे-हरे खेत लहलहा रहे है और वनोंकी पत्ती-पत्ती एक-दूसरेसे मानों चुपके-चुपके काना-फूंसी कर रही है! पर इन शहरी ग़रीबोंको ईश्वरके इस जादूका कुछ पता नहीं! वर्त्तमान युगकी सबसे बड़ी आवश्यकता है ग्रामीण संस्कृतिका निर्माण।"

फ़ैङ्क हैरिसने, जो मानवस्वभावके बहुत अच्छे ज्ञाता थे और रेखा-चित्रोंके खींचनेमें विशेषज्ञ, अपने एक लेखमें लिखा था—
"अयर्लैण्डमें जो जीवित महापुरुष विद्यमान हैं उनमें 'ए० ई०'को मैं सबसे अधिक बुद्धिमान मानता हूँ। वर्तमान संसारमें मैं किसी ऐसे दूसरे व्यक्तिको नहीं जानता जिसके विचार इतने व्यापक हों और जो अपने निर्णयोंमें सज्जनता, उदारता तथा प्रेमपूर्ण सद्भावनापर इतना ज़ोर देता हो।....मूर, बर्नर्ड शा, आस्कर वाइल्ड और 'ए० ई०' इन चारोंमें 'ए० ई०'में ही सबसे अधिक आयरिश भावना पाई जाती है। और आयर्लैण्डकी स्वाधीनताके लिये जिस उत्कट भावनाके साथ उन्होंने लिखा है उतना अन्य किसीने नहीं। कविवर यीट्सकी अपेक्षा उन्होंने कहीं अधिक इस बातको समझा है कि आयर्लैण्डके अपनी निजी आत्मा है, अपना निजी स्वभाव है।"

एक बार फ़ैङ्क हैरिसने आयर्लैण्डके बारेमें 'ए० ई०'से एक लेख मँगाया। उन्होंने लिख भेजा। उस लेखको पढ़कर हैरिसकी तबीयत फड़क गई और उन्होंने बर्नर्ड शाको लिखा—"सम्पादकी करते-करते मुझे चालीस वर्ष बीत गये; पर इससे अधिक मौलिक और सत्यका उद्घाटन करनेवाला लेख मुझे आजतक नहीं मिला!" इसपर बर्नर्ड शा ने जवाब दिया—

"मुझे इस बातसे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ कि फ़ैङ्क हैरिसकी सम्मतिमें 'ए० ई०'का आयर्लैण्ड-विषयक लेख उनके जीवनका सर्वोत्तम लेख है। पर 'ए० ई०' तो जो लेख भी लिखते हैं सर्वोत्तम ही लिखते हैं—('A. E.' s article always is the best.)।"